(३) संघ के विषयों को छोड़ कर शासन के सब अधिकार तथा अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों के हाथ में रहेंगे।

(४) संघ को जो शासन अधिकार दिये जायँगे, उनके सिवाय अन्य सब अधिकार राज्यों के हाथ में रहेंगे।

(५) कुछ प्रान्त मिलकर एक समूह या संघ बना सकते हैं। इनके लिये एक कार्यकारिणी और एक विधान सभा होगी। प्रत्येक समूह यह निश्चित कर सकता था कि उसके लिये कौन-कौन से विषयों का शासन समूह के अधीन रहेगा और कौन विषय प्रान्त अपने हाथ में रखेंगे।

(६) संघ के विधान में तथा समूह के विधान में एक शर्त यह रहेगी कि दस वर्ष के अन्त में यदि कोई प्रान्त चाहे तो अपनी विधान सभा के बहुमत के आधार पर विधान की धाराओं पर फिर से विचार कर सकता था। उसके बाद प्रति दस वर्ष के बाद भी उसे यह अधिकार प्राप्त रहेगा।

शासन या संविधान बनाने वाली विधान परिषद् के सम्बन्ध में वक्तव्य में यह कहा गया था कि प्रान्तों की धारा सभाएं या विधान सभाएं विधान परिषद् के सदस्य चुनेंगी। प्रति दस लाख व्यक्तियों के पीछे एक प्रतिनिधि चुना जायगा। मुसलमान तथा सिख भी अपने प्रतिनिधि जनसंख्या के उसी आधार पर चुनेंगे। इन दोनों जातियों को छोड़ कर शेष जनसंख्या बाकी प्रतिनिधि चुनेगी। प्रान्तों के प्रतिनिधियों का चुनाव आपस के समझौते द्वारा होगा। वक्तव्य में यह कहा गया कि जब इस प्रकार प्रतिनिधियों का चुनाव हो जायगा तब वे अ, ब, स तीन विभागों में बांट दिये जायँगे। अ विभाग में मद्रास, बम्बई, उत्तर-प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश शामिल रहेंगे। ब विभाग में पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और सिन्ध शामिल होंगे। स विभाग में बंगाल और आसाम शामिल रहेंगे। ये विभाग अपने प्रत्येक प्रान्त का शासन विधान निर्धारित करेंगे। वे यह भी निश्चय करेंगे कि कुछ प्रान्तों के लिये सामूहिक शासन विधान होना चाहिये या नहीं। यदि सामूहिक शासन हो तो उसके हाथ में प्रान्तों के कौन-कौन से विषय होंगे। इसके बाद इन विभागों के प्रतिनिधि तथा देशी रियासतों के

हिन्दी संस्करण की भूमिका

मेरी अंग्रेजी की पुस्तक भारत का संविधान The Constitution of India को विद्यार्थियों ने तथा जनसाधारण ने इतना अपनाया कि चन्द महीनों के अन्दर ही बाध्य होकर इसके तीन संस्करण करने पड़े। इतना ही नहीं, साथ ही उत्तर-प्रदेश के अनेक भागों से पुस्तक का हिन्दी संस्करण प्रकाशित करने की मांग पर मांग आने लगी। फलतः प्रेमियों के स्वागतार्थ हिन्दी का प्रथम संस्करण लेकर उपस्थित हो रहा हूं। आशा है यह हिन्दी का संस्करण अंग्रेजी की अपेक्षा विशेष उपयोगी सिद्ध होगा और पाठक तथा विद्यार्थीगण विशेषरूप में इसे अपनाकर इसके अगले संस्करणों के लिये प्रोत्साहित करेंगे।

'अमृत पत्रिका' प्रयाग के सहायक सम्पादक श्रीपन्नालालजी श्रीवास्तव एम० ए० ने पुस्तक के अनुवाद में जो अपना अमूल्य समय देकर तथा अथक परिश्रम करके पुस्तक को उपयोगी बनाने में सहयोग दिया है, उसके लिये उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

साधारण निर्वाचन के पूर्व ही पुस्तक प्रकाशित हो गई होती, किन्तु कतिपय कारणों से पांडुलिपि प्रेस में ही पड़ी रह गई और कुछ विलम्ब होगया। इस बीच में संविधान में अनेकों परिवर्तन हो गये, कि निम्नलिखित हैं—

सन् १९५१-५२ ई० के जाड़ों में विधानानुसार पहला साधारण चुनाव हुआ और केन्द्र तथा प्रान्तों की विधानमंडल को पुन: संगठित किया गया। संविधान की स्थायी व्यवस्था के अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को पुनः संगठित किया जा चुका है।

निम्न सदन की प्रतिनिधि सभा और लोक-सभा में कुल मिलाकर सदस्यों की संख्या ४९९ है। इनमें से ४९० सदस्य निम्न प्रान्तों और राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं (एक नियुक्त सदस्य आसाम के भाग ख जाति का प्रतिनिधित्व करता है) और राष्ट्रपति द्वारा दो सदस्य एंग्लो इंडियन जाति का प्रतिनिधित्व करने के लिये नियुक्त किये गये हैं। लोकसभा के ४९९ सदस्यों में से ४८९ निर्वाचित तथा

चौथा अध्याय

भारत के संविधान की विशेषताएं
(The General Features of the Constitution of Free India)

स्वतन्त्र भारत के संविधान का रूप संघ शासन का है। इसमें एक संघ शासन स्थापित करने की योजना है, जिसके अनुसार एक केन्द्रीय सरकार और कई प्रान्तीय अथवा राज्य सरकारें होंगी। भारतीय संघ शासन के सम्बन्ध में एक बात विशेषरूप से ध्यान में रखने योग्य है। वह यह कि साधारणतः कई स्वतन्त्र राज्यों को मिलाकर संघ शासन बनाया जाता है। परन्तु हमारे देश में एक केन्द्रीय सरकार के अधिकार राज्यों को देकर संघ शासन बनाया गया है। अर्थात् एकात्मक शासन से संघात्मक शासन का विकास हुआ है।

यद्यपि हमारा विधान संघात्मक है, परन्तु संघ शब्द का उपयोग संविधान में कहीं नहीं पाया जाता। संविधान निर्माण समिति (Drafting Committee) ने विधान सभा के सभापति को अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए कहा था कि "नाम का विशेषरूप से कोई महत्व नहीं है। समिति ने सन् १८६७ के ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट की भाषा का अनुकरण करके भारत को यूनियन (Union of India) कहना पसन्द किया। यद्यपि उसका संविधान संघात्मक होगा।" इससे यह तात्पर्य निकाला जा सकता है कि समिति का उद्देश्य यह था कि संविधान की भाषा में भी भारत की मौलिक एकता पर ही अधिक जोर दिया जाय।

संविधान में एक मज़बूत केन्द्रीय सरकार स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है और इसी आशय से केन्द्रीय विधानमंडल को जिसे संसद कहते हैं, कानून बनाने के अवशिष्ट अधिकार (Residual Powers) दिये गये हैं। अपने-अपने [illegible] में संसद तथा राज्यों के विधानमंडल पूर्णरूप से स्वतन्त्र हैं। संविधान में [illegible] विषय सूचियां दी गई हैं, अर्थात् संघ-सूची (Unior

शेष १० नामजद किये हुए हैं [नामजद किये हुए सदस्यों में दो एंग्लो इंडियन, एक अंडमान और नीकोबार द्वीपों का, एक सदस्य आसाम में भाग-ख की जाति का और ६ सदस्य काश्मीर का प्रतिनिधित्व करते हैं]।

राज्य-परिषद् के कुल सदस्यों की संख्या २१६ है, जिसमें से १२ नामजद हैं। [ये नामजद सदस्य साहित्य, कला, विज्ञान और सामाजिक सेवा के विशेषज्ञ माने जाते हैं।]

भाग ख प्रान्तों में मैसूर केन्द्र के अधिकार से मुक्त कर दिया गया है। मैसूर का वैधानिक स्थान अब प्रायः भाग क प्रान्तों के समान ही है। कुछ अधिकारियों द्वारा ज्ञात हुआ है कि इस वर्ग के कुछ दूसरे प्रान्तों को भी निकट भविष्य में ही केन्द्रीय नियंत्रण से मुक्त कर दिया जायगा।

काश्मीर की संविधान सभा जो वयस्क मताधिकार के अन्तर्गत निर्वाचित की गई है, वह ३१ अक्टूबर सन् १९५१ ई० को प्रतिष्ठित कर दी गई। लिखित प्रवेश-पत्र द्वारा (Instrument of Accession) काश्मीर ने रक्षा, विदेशी मामलों और यातायात का भार केन्द्रीय सरकार को सौंप दिया है। अब यह निश्चय विधान सभा करेगी कि किन दूसरे विभागों को केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत दिया जाय।

ता० ३१-५-५२

अमर नन्दी

आठवाँ अध्याय

मूल अधिकार

(Fundamental Rights)

मूल-अधिकार—प्रत्येक प्रजातन्त्र शासन में नागरिकों को कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त होते हैं, जिन्हें मूल अधिकार कहते हैं। उन्हें मूल अधिकार इसलिये कहते हैं, क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि व्यक्ति के पूर्ण नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिये वे आवश्यक माने जाते हैं। उन अधिकारों के बिना मनुष्य के नैतिक और आध्यात्मिक जीवन का विकास नहीं हो सकता। यह स्वीकार किया जाता है कि व्यक्ति चाहे बहुसंख्यक दल का हो चाहे अल्पसंख्यक दल का, उसे उन अधिकारों का उपभोग प्राप्त होना चाहिये। अर्थात् मूल अधिकारों का उपभोग सबको समान रूप से प्राप्त होना चाहिये। प्रजातन्त्र में प्रायः हमेशा बहुमत वाले दल का ही शासन होता है। परन्तु मूल अधिकार दोनों दलों के लोगों को समान रूप से प्राप्त होने चाहिये। बहुमतवाले दल को अल्पमतवालों को उन अधिकारों से वंचित नहीं करना चाहिये। इस सिद्धान्त की रक्षा के लिये और इन अधिकारों की महत्ता प्रदर्शित करने के लिये मूल अधिकार प्रायः देश के संविधान के अंग बना दिये जाते हैं। साधारणतः लिखित संविधान में परिवर्तन करना आसान नहीं होना। इसलिये जब महत्त्वपूर्ण मूल अधिकार, जैसे कि जीवित रहने का अधिकार, अपना मत प्रदर्शित करने का अधिकार, धार्मिक कर्म करने का अधिकार, कानून की दृष्टि में समता का अधिकार, मनचाहे तरीके से कैद और सजा से मुक्त रहने का अधिकार, इत्यादि जब संविधान के अंग बना दिये जाते हैं, तो उन्हें सत्तारूढ़ बहुसंख्यक दल मन चाहे तरीके से आसानी से नहीं बदल सकता।

प्रायः सभी लिखित संविधानों में कुछ मूल अधिकारों का वर्णन रहता है। अमेरिका के संविधान में 'अधिकार घोषणा' नामक अध्याय में कुछ मूल अधिकारों

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय		पृष्ठ

पहला अध्याय

दो महायुद्ध और उसके बाद
(Between The Two Wars & After)

युद्ध का एक परिणाम यह होता है कि ऐतिहासिक घटनाओं और सामाजिक परिवर्तनों का क्रम बड़ी तेजी से चलने लगता है। विगत दो महायुद्धों के फल-स्वरूप भारत में राष्ट्रीय भावनाओं की जागृति बड़ी तेजी से फैली और ब्रिटिश राज का अन्त करने के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति भी खूब हुई। प्रथम महायुद्ध के अन्त होते ही भारत में ब्रिटिश राज के विरुद्ध पहिला देशव्यापी जन आन्दोलन आरम्भ हुआ और द्वितीय महायुद्ध के अन्त होने पर भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया। इन दो महायुद्धों के बीच के वर्ष विश्व के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण हैं। हमारे देश के इतिहास में भी ये वर्ष बहुत उत्तेजनापूर्ण रहे हैं। इन वर्षों में वे आन्दोलन चले, वे प्रवृत्तियाँ जागृत हुईं, और उन भावनाओं ने मजबूती पकड़ी जिनके फलस्वरूप अन्त में देश की गुलामी की जंजीरें टूटीं और देश के नागरिक अपने देश का संविधान बना सके। इन वर्षों की घटनाओं और आन्दोलनों का संक्षिप्त वर्णन इस काल की विचारधारा को समझायेगा और स्वतन्त्र भारत के संविधान के अध्ययन की पृष्ठभूमि होगा।

सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ। इस युद्ध में भारत ने ब्रिटेन को तन, मन और धन से सहायता की। भारतीय सैनिक अंग्रेजों के साथ कंधा लगाकर फ्लेंडर्स, फ्रान्स, पैलेस्टाइन, मिस्र और मेसोपोटामिया इत्यादि कई युद्ध-क्षेत्रों में लड़े।

1915

फिर युद्ध में अरबों रुपये का खर्च होता है। इससे सरकारों पर बड़े-बड़े ऋण हो जाते हैं। भारत ने इस युद्ध ऋण का एक बड़ा भाग अपने सिर पर ले लिया। भारत के लोगों का विश्वास था कि ब्रिटेन इन सेवाओं को नहीं भूलेगा और इनके बदले युद्ध के बाद काफी बड़ी मात्रा में वास्तविक स्वराज्य दे देगा। इसी आशा से देश में स्वराज्य आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन की प्रधान संचालक राष्ट्रीय कांग्रेस (Indian National Congress) थी। ब्रिटिश सरकार ने इस बात को महसूस किया कि इस समय भारतीयों के सामने एक विश्वासदायक घोषणा करना उचित होगा कि युद्ध के बाद भारत में क्रमशः जिम्मेदार सरकार की स्थापना की जावेगी।

२० अगस्त सन् १९१७ में तत्कालीन भारत सचिव श्री मांटेग्यू ने एक महत्वपूर्ण घोषणा की कि ब्रिटिश सम्राट् की भारत सरकार की नीति यह है कि भारत के शासन-प्रबन्ध में भारतवासियों को अधिकाधिक भाग मिले, जिससे क्रमशः जिम्मेदार सरकार प्राप्त हो सके और साथ ही भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अंग भी बना रहे।

सन् १९१७ में कलकत्ता में राष्ट्रीय कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसमें भारत सचिव की इस घोषणा का स्वागत किया गया। परन्तु साथ ही कांग्रेस ने इस बात की मांग की कि इस सम्बन्ध में एक कानून बनाया जाय जिससे पूर्ण जिम्मेदार सरकार स्थापित करने की तिथि निश्चित कर दी जाय और जिम्मेदार सरकार स्थापित करने के लिये पहला कदम यह उठाया जाय कि कांग्रेस और लीग की सुधारों की जो योजना थी, उसे लागू किया जाय।

गांधीजी और असहयोग आन्दोलन—सन् १९१५ में महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रिका से भारत आये। उन्होंने सन् १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया। लेकिन महायुद्ध के अन्त तक उन्होंने भारत की राजनीति में कोई प्रमुख भाग नहीं लिया।

जब युद्ध समाप्त हुआ और शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर हुए तब अमेरिका के राष्ट्रपति प्रेसिडेन्ट विल्सन, ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री लायड जार्ज तथा अन्य प्रमुख राजनीतिज्ञों की घोषणाओं के आधार पर कांग्रेस ने यह मांग की कि आत्मनिर्णय

(Self-determination) के सिद्धान्त पर अमल करने का अधिकार भारत को भी मिलना चाहिये। लेकिन इस मांग के उत्तर में ब्रिटिश सरकार ने भारत को रौलट विधेयक (Rowlatt Bill) दिया। इस विधेयक में ज़रा-ज़रा सी बात पर बहुत ही कड़ी सजा के नियम रखे गये थे। बिना न्यायालय द्वारा विचार किये लोगों को कैद में डाला जा सकता था अथवा नाम मात्र के न्याय विचार द्वारा ही लोगों को कड़ी सजा दी जा सकती थी। यद्यपि युद्धजनित संकट काल समाप्त हो चुका था, फिर भी ये कड़े नियम उपस्थित किये गये। यह विधेयक मार्च सन् १९१९ में कानून बन गया। इस कानून के विरोध में गांधीजी के आदेशानुसार ६ मार्च सन् १९१९ को सारे देश में हड़ताल मनायी गई। गांधीजी के इस आदेश पर लोगों ने अपूर्व उत्साह दिखाया और उस हड़ताल को अभूतपूर्व तथा देशव्यापी सफलता मिली। उसके बाद अमृतसर में जलियानवाला बाग की अमानुषिक घटना हुई। १३ अप्रैल को उस बाग में एक सार्वजनिक सभा के लिये काफी बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई। यह बाग चारों तरफ से ऊँची दीवारों से घिरा हुआ था। जनरल डायर सैनिकों की एक बड़ी संख्या लेकर उस बाग में आया और बिना किसी प्रकार की चेतावनी दिये हुए सैनिकों को उस जन-समूह पर गोली बरसाने की आज्ञा दे दी। लोग वहां इस तरह फंस गये जैसे पिंजड़े में चूहे फंस जाते हैं। जनरल डायर ने स्वीकार किया था कि १६०० बार गोली चलाई गयी और सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ३७९ व्यक्ति मारे गये और १२०० व्यक्ति घायल हुए। इस भीषण दुर्घटना के साथ कांग्रेस की स्वतन्त्रता की लड़ाई का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ।

दिसम्बर सन् १९१९ में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और उसमें मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड शासन-सुधारों योजना की निन्दा की गई। इस योजना की घोषणा जून सन् १९१८ में की गई थी। कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा गया कि ये सुधार "अनुपयुक्त, असन्तोषजनक और निराशापूर्ण थे।" सितम्बर सन् १९२० में कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ और उसमें महात्मा गांधी का असहयोग का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।' इसके पहिले असहयोग का प्रस्ताव खिलाफत कमेटी द्वारा स्वीकृत हो चुका था।' जून सन् १९२० में खिलाफत

कमेटी ने वाइसराय को लिखा था कि तुर्की के खलीफा के साथ जो अन्याय किये गये थे, यदि उन्हें दूर नहीं किया गया तो कमेटी असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर देगी। गांधीजी ने खिलाफत आन्दोलन को पूरा समर्थन दिया था। इसलिये असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव में यह कहा गया था कि पंजाब तथा खिलाफ़त सम्बन्धी अन्यायों को दूर करने के लिये तथा स्वराज्य प्राप्त करने के लिये कांग्रेस को असहयोग के सिद्धान्त को अवश्य स्वीकार करना चाहिये। दिसम्बर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ और उसमें असहयोग का कार्यक्रम निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया गया। इस अधिवेशन में गांधीजी ने कांग्रेस के उद्देश्य में भी परिवर्तन करा दिया। कांग्रेस का उद्देश्य अब 'साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य' प्राप्त करना न रहा। अब उसका उद्देश्य "भारतवर्ष के लोगों का सब प्रकार के उचित तथा शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना" हो गया। इस अधिवेशन में यह भी निश्चित किया गया कि कांग्रेस की सदस्यता की फीस चार आना होगी। महात्माजी ने एक वर्ष के भीतर स्वराज्य प्राप्त करने का आश्वासन दिया। गांधीजी ने कहा कि "यदि ब्रिटिश राज हमारे प्रति न्याय नहीं करता, तो साम्राज्य का अन्त करना प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य होगा।"

असहयोग आन्दोलन ने देश में अभूतपूर्व उत्साह पैदा कर दिया। देश की जनता में इतनी अधिक उत्तेजना पहिले कभी नहीं फैली थी। यह पहिला अवसर था जब कि देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई को जनता का इतना बड़ा आधार मिला था और जनता का एक बड़ा भारी भाग उसमें शामिल हुआ था। विद्यार्थियों ने अपने स्कूल और कालेज छोड़ दिये, वकीलों ने वकालतें छोड़ दीं और किसान हजारों की संख्या में उसमें कूद पड़े। हिन्दू और मुसलमान दोनों समान रूप से उसमें शामिल हुए। ब्रिटेन की बनी हुई वस्तुओं का बहिष्कार किया गया और बम्बई में उनकी बड़ी-बड़ी होलियां जलाई गईं।

नवम्बर के महीने में ब्रिटेन के युवराज भारत आये। जिस दिन वे बम्बई बन्दरगाह में उतरे, उस दिन देश भर में हड़ताल मनाई गई। उस वर्ष कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। उस अधिवेशन में भी प्रस्ताव पास किये गये जिनमें कांग्रेस ने अहिंसात्मक आंदोलन जारी रखने का निश्चय किया।

इस अधिवेशन में कांग्रेस ने गांधीजी को अपना एक मात्र संचालक नियुक्त किया।

सन् १९२१ के दिसम्बर मास के अन्त तक जेलों में राजनैतिक कैदियों की संख्या २०,००० हो गई और कुछ दिनों बाद वह ३०,००० तक पहुंच गई।

सन् १९२२ में फरवरी माह में गांधीजी देशव्यापी सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करना चाहते थे और इस आशय की चुनौती उन्होंने वाइसराय के पास लिखकर भेज दी। ४ फरवरी को उत्तर-प्रदेश में एक दुर्घटना हो गई, जिसे चौरीचौरा दुर्घटना के नाम से कहा जाता है। चौरीचौरा नामक स्थान पर उत्तेजित जनता ने २२ पुलिस कर्मचारियों को मार डाला था। इस घटना का समाचार सुनकर गांधीजी विचलित हो गये। १२ फरवरी को बारडोली में कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक हुई और उसने यह निश्चय किया कि सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर देना चाहिये। आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। १० मार्च सन् १९२२ को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें ६ वर्ष की सजा हो गई। लेकिन जेल में वे बीमार हो गये। अपेंडिसाइटिस के कारण उनके पेट का आपरेशन करना पड़ा और ५ फरवरी सन् १९२४ को वे छोड़ दिये गये।

स्वराज्य पार्टी—सन् १९२१ में नये शासन-सुधार लागू किये गये। सन् १९२२ में गया के कांग्रेस अधिवेशन में यह प्रयत्न किया गया कि कांग्रेस अपने सदस्यों को विधान मंडलों का सदस्य होने की अनुमति दे दे। परन्तु इसमें सफलता नहीं मिली। किन्तु १ जनवरी सन् १९२३ को पंडित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु सी० आर० दास, हकीम अजमल खां तथा अन्य लोगों ने मिलकर स्वराज्य दल की स्थापना की। इस दल का प्रभाव क्रमशः बढ़ने लगा। जो लोग विधान सभाओं में जाने के विरोधी थे, उनका प्रभाव कम होने लगा। निर्वाचन में स्वराज्य दल के काफी सदस्य चुनाव जीते। सितम्बर सन् १९२३ में दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। इसमें अधिवेशन के सभापति मौलाना मुहम्मद अली ने घोषणा की कि मुझे विश्वास है कि कांग्रेस ने अपने कार्यक्रम में जो तीन बहिष्कार रखे हैं और जिसमें विधान सभाओं का भी बहिष्कार शामिल है, उस कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन करने की गांधीजी की पूर्ण इच्छा है। परन्तु कांग्रेस के कोकोनाडा अधिवेशन में त्रिमुखी बहिष्कार का फिर समर्थन किया

गया। इसमें विधान सभाओं का वहिष्कार भी शामिल था। लेकिन स्वराज्य दल ने अपना मत निश्चित रखा और उसके सदस्य विधान सभाओं की कार्यवाही में भाग लेने लगे। सन् १९२४ के अन्त में गांधीजी और स्वराज्य दल में एक समझौता हो गया। जिसमें यह निश्चय हुआ कि असहयोग कार्यक्रम को निश्चित रूप से स्थगित कर दिया जाय और स्वराज्य दल विधान सभाओं में कांग्रेस का अंग रहकर कार्य करे। वेलगाम के कांग्रेस के अधिवेशन में इस समझौते को स्वीकार कर लिया गया। १ मई सन् १९२५ को गांधीजी ने कलकत्ता में एक महत्वपूर्ण भाषण दिया और उसमें कहा कि इस समय हमें रचनात्मक कार्यक्रम पर विशेषरूप से ध्यान देना चाहिये। इस कार्यक्रम में गांधीजी ने तीन वातें रखीं। (१) हिन्दू-मुसलिम एकता, (२) अस्पृश्यता निवारण और (३) चर्खा-प्रचार। सन् १९२५ में देशवन्धु दास की मृत्यु हो गई और उसके एक महीना वाद अर्थात् जुलाई के अन्त में कलकत्ता में कार्यसमिति की एक वैठक हुई। स्वराज्य दल के नेता भी उपस्थित थे। इस वैठक में गांधीजी ने कांग्रेस के संचालन का भार स्वराज्य दल के नेता पंडित मोतीलाल नेहरू को सौंप दिया और स्वयं कुछ दिनों के लिये राजनीति से विरक्त हो गये।

साइमन कमीशन और उसके वाद—साइमन कमीशन की घोषणा ८ नवम्वर सन् १९२७ में की गई। अन्य वातों के अलावा इस कमीशन का काम इस वात की सिफारिश करना भी था कि भारत में जिम्मेदार सरकार किस हद्तक स्थापित होनी चाहिये। अर्थात् शासन-सुधारों की मात्रा कितनी अधिक वढ़ाई जा सकती है। कांग्रेस ने इस कमीशन का वहिष्कार किया क्योंकि इसके सदस्य सवके सव अंग्रेज थे। इसमें एक भी भारतीय सदस्य नहीं रखा गया था। मि० जिन्ना और उनके कुछ अनुयायियों ने भी इस कमीशन का वहिष्कार किया। यह कमीशन २ फरवरी सन् १९२८ को भारत पहुंचा।

फरवरी सन् १९२८ में एक सर्वदल सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन ने एक कमेटी नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष पंडित मोतीलाल नेहरू थे। इसलिये इसे नेहरू कमेटी भी कहते हैं। इस कमेटी को भारत के लिये एक शासन विधान तैयार करने का काम सौंपा गया। नेहरू कमेटी ने एक रिपोर्ट तैयार की, जिसे

नेहरू रिपोर्ट भी कहते हैं। नेहरू रिपोर्ट वास्तव में लार्ड वरकनहेड की चुनौती का जवाव था। उन्होंने भारत के राजनीतिज्ञों को एक ऐसी रिपोर्ट तैयार करने की चुनौती दी थी जो सर्वमान्य हो सके। यह रिपोर्ट औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) के सिद्धान्त के आधार पर वनी थी। सन् १९२८ में कलकत्ता में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, उसमें औपनिवेशिक स्वराज्य को अस्वीकार करके पूर्ण स्वतन्त्रता का सिद्धान्त रखा गया। परन्तु वह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। इस अधिवेशन का एक महत्व यह भी है कि गांधीजी ने राजनीति में फिर से प्रवेश किया और इस अधिवेशन में भाग लिया। इस अधिवेशन में एक प्रस्ताव यह भी स्वीकार किया गया की यदि ३१ दिसम्वर सन् १९२९ तक ब्रिटिश सरकार ने औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं दिया तो फिर कांग्रेस अपनी इस मांग को रद्द करके अगला कदम उठावेगी।

३१ अक्टोवर सन् १९२९ को ब्रिटिश सरकार ने एक विशेप विज्ञप्ति प्रकाशित करके यह कहा कि सरकार का उद्देश्य भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देना था। यह घोपणा भी की गई कि साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने के वाद एक गोलमेज सभा वुलाई जायगी।

सन् १९२९ में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने गोलमेज सभा के प्रस्ताव को रद्द कर दिया, भारत का उद्देश्य पूर्ण स्वतन्त्रता निर्धारित किया और कांग्रेस सदस्यों को आदेश दिया कि वे केवल पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये काम करें। कांग्रेस ने महासमिति को यह आदेश भी दिया कि जव वह उचित समझे असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दे।

असहयोग आन्दोलन—१२ मार्च सन् १९३० को गांधीजी ने नमक कानून तोड़ने के लिये अपनी प्रसिद्ध डंडी यात्रा आरम्भ की। एक वार फिर से देशव्यापी आन्दोलन आरम्भ हो गया। इस आन्दोलन का कार्यक्रम स्वयं गांधीजी ने निर्धारित किया। इसमें स्वतन्त्रतापूर्वक नमक वनाना, शराव और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देना, चर्खा कातना, विदेशी कपड़े जलाना, सरकारी स्कूलों और कालेजों को छोड़ना तथा सरकारी नौकरी छोड़ना शामिल था।

देश ने महान उत्साह के साथ गांधीजी का साथ दिया। पुलिस ने बड़े जोर से दमन आरम्भ किया, परन्तु जनता का उत्साह भंग नहीं हुआ। देश के बहुत से भागों में सरकार का शासन समाप्त हो गया और बड़ी मुश्किल से फिर से स्थापित हो पाया। सैनिक शासन और अध्यादेशों (Ordinances) की भरमार हो गई। कई स्थानों पर पुलिस ने निहत्थे जनसमूहों पर गोलियां बरसाईं। आंधी की तरह देश भर में आन्दोलन छा गया। गांधीजी ५ मई को गिरफ्तार कर लिये गये और जून के महीने में कांग्रेस गैर कानूनी घोषित कर दी गई।

पहिली गोलमेज सभा का अधिवेशन लंडन में १२ नवम्बर सन् १९३० में आरम्भ हुआ। कांग्रेस ने इस अधिवेशन में भाग नहीं लिया। इस सभा के अधिवेशन का अन्त १९ जनवरी सन् १९३१ में हुआ।

सरकार इस बात को महसूस कर रही थी कि कांग्रेस के साथ किसी न किसी प्रकार का समझौता आवश्यक है। इसलिये गांधीजी तथा कार्यसमिति के सदस्य छोड़ दिये गये। कार्य समिति ने गांधीजी को वाइसराय के साथ समझौता सम्बन्धी बातचीत करने का अधिकार दिया। गांधीजी की वाइसराय के साथ बहुत लम्बी वार्त्ता कई दिनों तक चलती रही और अन्त में प्रसिद्ध गांधी-इरविन समझौता हुआ। समझौते में तीन शर्तें प्रधान थीं। एक तो कांग्रेस सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दे। दूसरे सब राजनैतिक बन्दी छोड़ दिये जायँ और तीसरे कांग्रेस गोलमेज सभा में भाग ले।

अगस्त सन् १९३१ के अन्त में गांधीजी गोलमेज सभा में भाग लेने के लिये इंग्लैंड गये और दिसम्बर के महीने में वहां से वापिस आये। गांधीजी के वापिस लौटने के पहिले ही भारत सरकार ने उत्तर-प्रदेश, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और बंगाल में दमन-नीति आरम्भ कर दी थी। इसलिये बाध्य होकर गांधीजी को फिर से सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करना पड़ा। जनवरी सन् १९३२ में वे फिर गिरफ्तार कर लिये गये।

अगस्त सन् १९३२ में ब्रिटिश सरकार ने "साम्प्रदायिक समझौते (Communal Award) की घोषणा की। इससे दुखी होकर गांधीजी ने आमरण

उपवास आरम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप "पूना का समझौता" हुआ। ७ अप्रैल सन् १९३४ में अवज्ञा आन्दोलन फिर स्थगित कर दिया गया और ६ जून को सरकार ने कांग्रेस संगठन पर से प्रतिबन्ध उठा लिया। फिर से कांग्रेस कानून के अनुसार मान्य संस्था हो गई।

सन् १९३५ में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट पास हुआ। दिसम्बर सन् १९३६ में फैज़पुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि सन् १९३५ के कानून के अनुसार जो विधान बनेगा उसका वह विरोध करेगी और उसे कार्यान्वित न होने देगी। अगस्त सन् १९३६ में कांग्रेस ने निर्वाचन के सम्बन्ध में अपना घोषणापत्र प्रकाशित किया कि विधान को खतम करने के लिये कांग्रेस अपने प्रतिनिधियों को विधानमंडलों में भेजेगी।

प्रान्तों की धारा सभाओं के निर्वाचन सन् १९३७ के फरवरी मास के अन्त तक हो गये। पहिले कांग्रेस ने छः प्रान्तों में मंत्रिमंडल बनाये और बाद में एक प्रान्त में और बनाया। सन् १९३८ में श्री सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। सन् १९३९ में वे फिर से चुने गये, परन्तु कार्यसमिति से मतभेद होने के कारण उन्होंने पदत्याग दिया।

सन् १९३५ के विधान कानून में दो भाग थे। एक का सम्बन्ध संघ शासन से था और दूसरा भाग प्रान्तीय शासन के सम्बन्ध में था। सन् १९३७ में केवल प्रान्तीय शासन सम्बन्धी भाग लागू किया गया। कई कारणों से संघ शासन सम्बन्धी भाग कार्यान्वित नहीं हो सका और जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तो उसे अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया गया।

सितम्बर सन् १९३९ में महायुद्ध शुरू हो गया। ब्रिटिश सरकार ने भारत के लोगों की राय लिये बिना ही उसे युद्ध में शामिल कर दिया। इस पर कांग्रेस की कार्यसमिति ने अपना रोष प्रकट किया। उसने कहा कि ब्रिटिश सरकार को साफ शब्दों में युद्ध के उद्देश्य घोषित करना चाहिये। उसने पूछा कि क्या ब्रिटिश सरकार अपने युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों में भारत की स्वतन्त्रता स्वीकार करने को तैयार है। यदि ब्रिटिश सरकार संसार की स्वतन्त्रता के लिये लड़ रही

है तो उसे भारत को भी एक स्वतन्त्र देश मान लेना चाहिये, जिसकी नीति भारतवासी ही निर्धारित करेंगे।

ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस को इस प्रकार के कोई आश्वासन नहीं दिये। उसने केवल कुछ अस्पष्ट बातें कहीं कि युद्ध के समाप्त होने पर वे भारत के विभिन्न वर्गों और स्वार्थों के मत जानने की कोशिश करेंगी और उनके अनुसार सन् १९३५ के विधान कानून में परिवर्तन करने का प्रयत्न करेगी। यह उत्तर पाने पर कांग्रेस ने प्रान्तों में अपने मंत्रिमंडलों को आदेश दिया कि वे पद-त्याग कर दें। उस समय आठ प्रान्तों में कांग्रेस सरकारें थीं और उन सबने पद-त्याग कर दिये। सिन्ध, पंजाब और बंगाल में कांग्रेस सरकारें नहीं थीं। इसलिये वहां मंत्रिमंडल रहे आये।

इस समय सारे देश में महान असन्तोष छाया हुआ था। कुछ लोगों ने इस अवसर से लाभ उठाकर गांधीजी से सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करने को कहा। इनमें श्री सुभाष चन्द्र बोस प्रमुख थे। परन्तु गांधीजी इनकी राय से सहमत नहीं हुए। गांधीजी ने व्यक्तिगत अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया। कुछ चुने हुए लोग इसमें भाग लेते थे। वे लोगों से कहते थे कि सरकार के युद्ध सम्बन्धी कार्यों में सहयोग नहीं देना चाहिये। यह काम करते हुए वे गिरफ्तार होने को तैयार रहेंगे।

सन् १९४१ के दिसम्बर मास में अमेरिका और इंग्लैंड के विरुद्ध जापान भी महायुद्ध में कूद पड़ा। दक्षिणी-पूर्वी एशिया में जापान ने बहुत जल्दी एक-एक करके कई देशों को रौंद डाला और वह बरमा और भारत की सीमा पर आ धमका। फरवरी सन् १९४२ में सिंगापुर जापानी सेना के कब्जे में चला गया और भारत में ब्रिटिश साम्राज्य एकाएक बड़े खतरे में पड़ गया। ब्रिटेन के लिये यह घोर संकट का समय था। ब्रिटेन ने सोचा कि एक बार फिर से भारतीय जनता का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। महायुद्ध में विजय पाने के लिये उसे भारतीय जनता का सच्चा सहयोग आवश्यक मालूम पड़ने लगा।

क्रिप्स प्रकरण—सन् १९४२ के ११ मार्च के यह घोषणा की गई कि भारतीय समस्या का हल करने के लिये सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत आवेंगे। २३

मार्च को सर स्टैफर्ड क्रिप्स दिल्ली आये। अपने साथ में वे समझौता सम्बन्धी कुछ प्रस्ताव लाये। ये प्रस्ताव दो भागों में बँटे हुए थे। एक भाग में दीर्घकालीन प्रस्ताव थे, जिनका सम्बन्ध भारत की स्वतन्त्रता से था और दूसरे भाग का सम्बन्ध तत्काल समझौता से था, जिनके अनुसार भारत और ब्रिटिश सरकार में तुरन्त समझौता होकर केन्द्र में भारतीय नेताओं द्वारा अन्तरिम सरकार बनाई जायगी। दीर्घकालीन प्रस्ताव में यह कहा गया था कि युद्ध के अन्त होने पर एक विधान सभा (Constituent Assembly) बनाई जायगी। इस सभा के सदस्य प्रान्तीय विधान सभाओं के निम्न सदनों के सदस्यों द्वारा चुने जायँगे। इस निर्वाचन के लिये सब प्रान्तों के निम्न सदनों के सदस्य एक निर्वाचक गण (Electoral College) की तरह काम करेंगे। विधान सभा के सदस्यों की संख्या निर्वाचक गण के सदस्यों की संख्या की लगभग $\frac{1}{10}$ होगी। रियासतों के सदस्य भी विधान सभा में शामिल होंगे और उनकी संख्या का अनुपात भी उतना ही रहेगा। अर्थात् प्रान्तों और रियासतों के सदस्यों की संख्या लगभग बराबर रहेगी। यह विधान सभा जो विधान बनावेगी उसे ब्रिटिश सरकार कार्यान्वित करेगी। परन्तु साथ ही ब्रिटिश सरकार निम्नलिखित शर्तों का भी पालन करेगी—

यदि कोई प्रान्त नया विधान स्वीकार करने को तैयार न हो तो उसमें पुराना विधान ही लागू रहेगा। ऐसे प्रान्तों के साथ ब्रिटिश सरकार अपने अलग या स्वतन्त्र वैधानिक समझौते कर सकती थी। ब्रिटिश सरकार और विधान सभा के बीच में एक सन्धि होगी। इस सन्धि में अल्पसंख्यक जातियों तथा अन्य बातों पर समझौता होगा। यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि भारतीय संघ ब्रिटिश राष्ट्रसंघ के साथ भविष्य में अपने सम्बन्ध निर्धारित करने के लिये स्वतन्त्र रहेगा। ब्रिटिश सरकार तथा देशी रियासतों के साथ जो सन्धियां या समझौते हुए थे, उनमें परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त परिवर्तन किये जायँगे।

अल्पकालीन प्रस्ताव में यह कहा गया था कि अन्तरिम सरकार युद्ध सम्बन्धी कार्यों में सहयोग देगी और उसके लिये देश की सेवा तथा साधनों का सुप्रबन्ध करेगी और देश के नैतिक बल को युद्ध में लगावेगी। देश की सुरक्षा की

जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार पर रहेगी और सेना पर भी ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण रहेगा।

सर स्टैफर्ड क्रिप्स बहुत दिनों तक कांग्रेस तथा मुसलिम लीग के नेताओं के साथ बातचीत करते रहे, परन्तु समझौते के सब प्रयत्न पूर्णरूप से विफल हुए। कांग्रेस को इन प्रस्तावों के सम्बन्ध में तीन प्रकार की आपत्तियां थीं। इन आपत्तियों को कांग्रेस की कार्य-समिति ने ११ अप्रैल सन् १९४२ के प्रस्ताव में अच्छी तरह दिखाया। उस प्रस्ताव में यह कहा गया कि देश में इस समय जैसी परिस्थिति है, उसके अनुसार सबसे बड़ा महत्व इस बात का है कि हमें इस समय क्या प्राप्त होता है। दीर्घकाल अथवा युद्ध के बाद क्या होता है, इसकी चिन्ता देश को अधिक नहीं है, यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने भारत के लिये आत्मनिर्णय का सिद्धान्त तो स्वीकार कर लिया, परन्तु स्वतन्त्रता का प्रश्न अनिश्चित भविष्य के लिये डाल दिया। इस समय दीर्घकालीन समस्या की अपेक्षा अल्पकालीन समझौता अधिक महत्वपूर्ण था और अल्पकालीन समझौते के अनुसार जो अन्तरिम सरकार बनती उसे वास्तव में कोई महत्वपूर्ण अधिकार नहीं दिये गये थे। कार्य-समिति का विश्वास था कि युद्धकाल में सुरक्षा की समस्या इतनी व्यापक हो जाती है कि उसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है। और जब अन्तरिम सरकार के हाथ में सुरक्षा ही न रहेगी तो वास्तव में उसके हाथ में शासन सम्बन्धी कोई शक्ति न रहेगी। दूसरी बात कार्य-समिति ने यह कही कि प्रान्तों को यह अधिकार दे दिया गया है कि कोई प्रान्त चाहे तो विधान सभा के बनाये हुए विधान को स्वीकार न करके संघ के बाहर रह सकता है। इससे भारतीय एकता की जड़ पर बहुत बड़ा आघात होगा। तीसरे विधान सभा में रियासतों के प्रतिनिधि बहुत बड़ी संख्या में रहेंगे, जिससे सभा की एकसूत्रता नष्ट हो जायगी। क्योंकि रियासतों के ये प्रतिनिधि जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं होंगे। ये राजाओं द्वारा नाम निर्देशित सदस्य होंगे। कार्य-समिति ने कहा कि इसका अर्थ यह होगा कि रियासतों की नौ करोड़ जनता की कोई आवाज ही नहीं है। वह राजाओं के हाथ में खिलौना है और ये राजा उसके साथ मनमानी खिलवाड़ कर सकते हैं। फिर समझौता सम्बन्धी बातचीत के सम्बन्ध

में यह भी स्पष्ट रूप से जाहिर हो गया कि अन्तरिम सरकार संसद् के प्रति जिम्मेदार मंत्रिमंडल की तरह काम न करेगी। वह केवल गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का थोड़ा सा परिवर्तित रूप होगी। इन सब कारणों के आधार पर कांग्रेस ने क्रिप्स महोदय के प्रस्तावों को ठुकरा दिया।

मुस्लिम लीग ने भी क्रिप्स के प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। लीग की अस्वीकृति के कारण कुछ दूसरे ही थे। उसके मतानुसार यद्यपि क्रिप्स के प्रस्तावों के अनुसार भारत में एक से अधिक संघ हो सकते थे, परन्तु उनमें भारत के विभाजन को साफ तौर से स्वीकार नहीं किया गया था। अर्थात् साम्प्रदायिकता के आधार पर बटवारे के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया था। दूसरी बात यह थी कि विधान सभा में मुसलमानों की संख्या केवल २५ प्रतिशत रहती, इससे उनका अल्प मत रहता। चूँकि विधान सभा में निर्णयों के लिये साधारण बहुमत की ही आवश्यकता थी, इसलिये मुसलमानों को यह डर था कि हिन्दुओं के सामने मुसलमानों की कुछ न चलेगी।

क्रिप्स के प्रस्तावों में परिवर्तन की सम्भावना न थी। इसलिये समझौते की बातचीत असफल रही और राजनैतिक अड़ंगा जैसे का तैसा बना रहा।

यहां यह याद रखना आवश्यक है कि सन् १९३० के बाद भारत में एक मुसलिम दल ने काफी प्रगति कर ली थी। यह दल मुसलिम लीग था। श्री जिन्ना के नेतृत्व में मुसलिम लीग ने सम्प्रदायवाद पर जोर देना शुरू किया। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर बनाने के लिये यह सबसे अच्छा उपाय था। मुसलिम लीग हिन्दू और मुसलमानों को दो अलग-अलग राष्ट्र मानने लगी और भारत के विभाजन की मांग करने लगी। सन् १९४० में लाहौर में मुसलिम लीग का जो अधिवेशन हुआ, उसमें पाकिस्तान सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया गया। उसमें कहा गया कि जब तक भारत के मुसलिम बहुमत वाले क्षेत्रों का एक स्वतन्त्र राज्य नहीं बनाया जायगा तब तक मुसलमानों को शासन सम्बन्धी कोई योजना स्वीकार नहीं होगी, इसके बाद मुसलिम लीग की राजनीति का आधार एक मात्र पाकिस्तान की मांग रह गई।

अगस्त की क्रान्ति—क्रिप्स वार्ता के असफल होने पर देश में चारों तरफ असंतोष का वातावरण फैल गया। ८ अगस्त सन् १९४२ में बम्बई में कांग्रेस की महासमिति की बैठक हुई, जिसमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ। इस प्रस्ताव में भारत में ब्रिटिश शासन के अन्त करने की मांग की गई। इसमें कहा गया कि अंग्रेजी शासन का तुरन्त अन्त हो जाना चाहिये। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये बड़े से बड़े पैमाने पर शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा जन आन्दोलन शुरू करने का आदेश दिया गया। इसका जवाब भी सरकार ने तुरन्त दिया। कार्य-समिति के सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया और गांधीजी भी पकड़ लिये गये। नेताओं के गिरफ्तार होते ही देश में चारों तरफ विद्रोह की आग लग गई। लोगों ने अपने आप क्रान्तिकारी कार्य शुरू कर दिये। सरकार ने भी अपनी दमन की मशीन पूरी शक्ति के साथ चालू कर दी। हजारों लोग निर्दयतापूर्वक गोली के शिकार बनाये गये। हजारों लोग जेलों में ठूंस दिये गये। उन पर न्यायालय में मुकद्दमा चलाने की बात ही न उठती थी। जेलों में लोगों को भरने की जगह ही न बची। प्रायः सभी राजनैतिक दलों ने इस क्रान्ति में भाग लिया। केवल कम्युनिस्ट पार्टी ने इस आन्दोलन में भाग नहीं लिया। कम्युनिस्ट पार्टी की नीति राष्ट्रीय हितों का ध्यान न रखकर सोवियट यूनियन की राजनीति के अनुसार ही अपनी राजनीति निर्धारित करती है। इस अवसर पर उसने न केवल इस आन्दोलन में कोई भाग लिया बल्कि सरकार के युद्ध सम्बन्धी कार्यों में सब प्रकार की सहायता की।

अगस्त क्रान्ति के बाद देश का वातावरण एक प्रकार से सुनसान और क्रियाहीन हो गया। लेकिन जब देश के भीतर नेतागण जलों में बन्द थे और चारों ओर निराशा का वातावरण फैल रहा था, उस समय देश के बाहर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण अध्याय लिखा जा रहा था। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में भारत की राष्ट्रीय सेना महत्वपूर्ण काम कर रही थी। नेताजी सन् १९४१ में देश छोड़कर गायब हो गये थे। २१ अक्टोबर सन् १९४३ में उन्होंने आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की, एक सेना तैयार की और बरमा में ब्रिटिश सेना से युद्ध में भिड़ गये। इस सेना में वे सब भारतीय थे, जो दक्षिणी-पूर्वी

एशिया में थे अथवा वे भारतीय सैनिक थे, जिन्हें युद्ध में जापानियों ने बन्दी बना लिया था। नेताजी का उद्देश्य इस सेना के साथ भारत में प्रवेश करके उसे विदेशी शासन की गुलामी से मुक्त करना था। इस भारतीय सेना ने बरमा से भारत की तरफ बढ़ना शुरू किया और एक स्थान में भारत पहुंच भी गई। परन्तु युद्ध सामग्री की कमी के कारण उसे पीछे हटना पड़ा और अन्त में आत्म-समर्पण करना पड़ा।

सन् १९४४ के मध्य में महात्मा गांधी जेल से मुक्त कर दिये गये। सन् १९४४ के सितम्बर महीने में महात्मा गांधी और मि० जिन्ना के बीच में साम्प्रदायिक समझौते की बातचीत आरम्भ हुई, जिससे कांग्रेस और मुसलिम लीग में सहयोग हो सके और भारत की राजनैतिक समस्या का हल हो सके। समझौते की इस बातचीत का आधार श्रीराजगोपालाचारी का एक प्रस्ताव था। परन्तु अन्त में कोई समझौता न हो सका। मि० जिन्ना चाहते थे कि महात्मा गांधी इस बात को स्वीकार कर लें कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग राष्ट्र हैं और इस कारण गांधीजी को पाकिस्तान की मांग स्वीकार कर लेनी चाहिये। पहिली मांग गांधीजी को स्वीकार नहीं थी और भारत के विभाजन के सम्बन्ध में उनका कहना था कि जनमत संग्रह (plebiscite) द्वारा यह निश्चय कर लिया जाय कि क्या वास्तव में लोग विभाजन चाहते हैं या नहीं। यदि जनमत विभाजन के पक्ष में हो तो विभाजन किया जाय। मि० जिन्ना को यह मांग स्वीकार नहीं थी।

वेवेल योजना—१४ जून सन् १९४५ को तत्कालीन भारत मंत्री मि० लियोपोल्ड एमरी ने ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाउस ऑफ कॉमन्स में एक घोषणा की जिसमें भारत की समस्या हल करने के लिये कुछ प्रस्ताव रखे गये। इस घोषणा में यह कहा गया कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों की राजनैतिक समस्या सुलझाने और एक वैधानिक समझौता करने में सहायता करने के लिये चिन्तित थी और इसके लिये सन् १९४२ के क्रिप्स के प्रस्तावों का उपयोग अब भी किया जा सकता था। उस घोषणा में यह आशा की गई थी कि भारत के नेता आपस में एक समझौता करने में समर्थ होंगे, जिससे भारत के लिये शासन का एक स्थायी रूप निश्चित हो सके। यदि भारत के राजनैतिक दल ब्रिटिश सरकार के सुझाव मानें तो सरकार उनकी

सहायता करने को तैयार थी। परन्तु साथ में यह भी शर्त थी कि पहिले भारत जापान को परास्त करने में सहायता दे। भारत में शासन सम्बन्धी परिवर्तन महायुद्ध में ब्रिटेन की अन्तिम विजय के बाद किये जायँगे। घोषणा में यह कहा गया कि फिलहाल इतना हो सकता है कि वाइसराय अपनी कार्यकारिणी के सदस्यों का निर्वाचन इस प्रकार करेगा कि प्रमुख राजनैतिक दलों को उसमें उचित प्रतिनिधित्व मिलेगा। साथ ही हिन्दुओं और मुसलमानों को बराबर प्रतिनिधित्व मिल सकेगा। यही सिद्धान्त प्रान्तों के सम्बन्ध में भी लागू किया जायगा।

अपनी कार्यकारिणी का पुनर्संगठन करने के लिये लार्ड वेवेल ने महात्मा गांधी, मि० जिन्ना तथा केन्द्र और प्रान्तों के अन्य प्रमुख व्यक्तियों के पास निमंत्रण भेजे। लगभग एक महीने तक समझौते की बातचीत चलती रही, परन्तु अन्त में वह इस कारण असफल रही कि कांग्रेस और मुसलिम लीग में सदस्यों की संख्या के सम्बन्ध में कोई समझौता न हो सका। मि० जिन्ना ने कहा कि मैंने लार्ड वेवेल का प्रस्ताव इसलिये अस्वीकार कर दिया कि उसे स्वीकार करने से कार्यकारिणी में लीग के सदस्यों की संख्या केवल एक तिहाई रह जाती। उनकी यह भी शिकायत थी कि वाइसराय कार्यकारिणी में कुछ ऐसे मुसलमानों को भी रखना चाहते थे, जो लीग के प्रतिनिधि न होकर या तो कांग्रेस के प्रतिनिधि थे या पंजाब के उस दल के प्रतिनिधि थे जिसके प्रधान नेता पंजाब के प्रधान मंत्री मलिक खिज़िर हयात खां थे। जब समझौते की बातचीत असफल रही, तब कांग्रेस के अध्यक्ष ने लीग की परवाह न करके वाइसराय से अगला कदम उठाने को कहा, परन्तु लार्ड वेवेल ने ऐसा करने से इनकार कर दिया।

सन् १९४५ में १४ अगस्त की आधी रात को जापान के साथ युद्ध समाप्त हो गया। इसके कुछ ही महीनों बाद इंग्लैंड में पार्लियामेंट के निर्वाचन हुए, जिसमें मजदूर दल की जीत हुई और मि० एटली प्रधान मंत्री हुए। मजदूर सरकार ने आरम्भ से ही यह निश्चय कर लिया कि वह शासन शक्ति भारत को दे देगी।

सन् १९४५ के अन्त में और सन् १९४६ के आरम्भ में भारत में केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं के निर्वाचन हुए।

ब्रिटिश मंत्रिमंडल का शिष्टमंडल और उसका कार्य—(The Cabinet Mission) १९ फरवरी सन् १९४६ को ब्रिटिश मंत्रिमंडल के नये भारत सचिव ने हाउस ऑफ लार्ड्स में यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार ने यह निर्णय किया है कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल के कुछ सदस्य एक शिष्टमंडल के रूप में भारत इस उद्देश्य से जायगा कि वह शासन सम्बन्धी समस्या को हल करने में लार्ड वेवेल की सहायता कर सके। यह शिष्टमंडल २४ मार्च को नई दिल्ली पहुंचा। लार्ड पेटिक लॉरेंस, बोर्ड ऑफ ट्रेड के अध्यक्ष सर स्टेफर्ड क्रिप्स और नौ सेना के मंत्री सर ए० वी० एलेक्ज़ेंडर थे।

इन तीनों मंत्रियों ने लार्ड वेवेल को साथ लेकर तुरन्त भारतीय नेताओं के समझौते की बातचीत आरम्भ कर दी। लेकिन भारत के दो प्रमुख दलों में मूल प्रश्नों पर कोई समझौता न हो सका और शिष्टमंडल ने समझौते की आशा छोड़ दी। उसे ऐसा लगने लगा कि उसके सब प्रयत्न विफल होंगे। तब शिष्टमंडल ने समस्या का हल करने के लिये अपने सुझाव रखे। ये प्रस्ताव शिष्टमंडल तथा वाइसराय के एक संयुक्त वक्तव्य में रखे गये थे। यह वक्तव्य १६ मई सन् १९४६ में प्रकाशित किया गया।

१६ मई के वक्तव्य में पहिले यह कहा गया कि पाकिस्तान की मांग ऐसी थी जो कार्यान्वित नहीं हो सकती। फिर उसमें भारतीय समस्या को हल करने के लिये निम्नलिखित सुझाव रखे गये थे—

(१) एक भारतीय संघ होना चाहिये। इसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतें शामिल होंगी। संघ परराष्ट्र सम्बन्धी कार्य, सुरक्षा तथा आवागमन और यातायात के साधनों का शासन करेगा। इन विभागों के शासन के लिये संघ को आवश्यक धन उपलब्ध करने के अधिकार प्राप्त होंगे।

(२) संघ की एक विधान सभा तथा एक कार्यकारिणी होगी, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधि रहेंगे। यदि विधान सभा में कभी कोई साम्प्रदायिक प्रश्न खड़ा हो तो उस पर दो प्रमुख सम्प्रदायों अर्थात् हिन्दू और मुसलमानों के उपस्थित प्रतिनिधियों का अलग-अलग बहुमत प्राप्त होना चाहिये। साथ ही सब उपस्थित सदस्यों का भी बहुमत प्राप्त होना चाहिये।

प्रतिनिधि मिलकर संघ का शासन विधान निश्चित करेंगे। विभिन्न विभागों प्रतिनिधियों की सूची इस प्रकार थी—

प्रतिनिधियों की सूची

अ विभाग

प्रान्त	साधारण	मुसलिम	कुल
मद्रास	४५	४	४९
वम्वई	१९	२	२१
उत्तर-प्रदेश	४७	८	५५
विहार	३१	५	३६
मध्य प्रदेश	१६	१	१७
उड़ीसा	९	०	९
जोड़	१६७	२०	१८७

व विभाग

प्रान्त	साधारण	मुसलिम	सिख	कुल
पंजाव	८	१६	४	२८
प० उ० सीमाप्रान्त	०	३	०	३
सिन्ध	१	३	०	४
जोड़	९	२२	४	३५

स विभाग

प्रान्त	साधारण	मुसलिम	कुल
वंगाल	२७	३३	६०
आसाम	७	३	१०
जोड़	३४	३६	७०

प्रान्तों को यह स्वतन्त्रता दी गई थी कि नये विधान के अन्तर्गत निर्वाचन द्वारा जो विधान सभाएं बनेंगी यदि वे बहुमत द्वारा निश्चय करें तो प्रान्त समूहों के बाहर जा सकते थे।

इस योजना के सिवाय उस घोषणा में एक अन्तरिम सरकार की योजना भी दी गई थी।

१२ मई को शिष्टमंडल ने एक अन्य वक्तव्य प्रकाशित किया था। उसका सम्बन्ध देशी रियासतों से था। उसमें कहा गया था कि विभिन्न समझौतों और सन्धियों के अनुसार ब्रिटिश सरकार को देशी रियासतों के ऊपर जो प्रभुत्व प्राप्त है उसे वह किसी भी परिस्थिति में किसी भी भारतीय सरकार को नहीं देगी। उस वक्तव्य में यह साफ तौर से कह दिया था कि भारत में स्वतन्त्र सरकार स्थापित होने पर ब्रिटिश सरकार रियासतों के प्रति अपने प्रभुत्व सम्बन्धी कर्त्तव्य पूरे नहीं कर सकेगी। परन्तु साथ ही वह उन्हें भारत सरकार को भी नहीं देगी। रियासतों ने जो प्रभुत्व अधिकार ब्रिटिश सरकार को दिये थे, वह उन्हें वापिस लौटा देगी। उस वक्तव्य के अन्त में कहा गया था कि, "एक तरफ देशी रियासतों और दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश भारत में जो राजनैतिक सम्बन्ध हैं, उनका अन्त हो जायगा। इसके बाद भारत में जो सरकार या सरकारें स्थापित होंगी, उनके साथ देशी रियासतें संघ शासन के अन्तर्गत सम्बन्ध स्थापित कर सकती हैं। अथवा वे जैसे चाहें वैसे विशेष सम्बन्ध पारस्परिक समझौते द्वारा स्थापित कर सकती हैं।"

६ जून को मुसलिम लीग की कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें पहिले तो १६ मई की योजना की आलोचना इसलिये की गई कि उसमें पाकिस्तान का सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया गया था। परन्तु साथ ही उस प्रस्ताव द्वारा उस योजना को पूर्णरूप से स्वीकार कर लिया गया। कांग्रेस की कार्यसमिति ने भी २६ जून को एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें उस योजना को केवल अंश-रूप में स्वीकार किया गया। कांग्रेस ने केवल उस अंश को स्वीकार किया, जिसका सम्बन्ध विधान सभा से था। १६ मई के वक्तव्य का कांग्रेस ने जो अर्थ समझा या जो अर्थ वह चाहती थी, उसे भी स्पष्ट कर दिया। इस अर्थ का सम्बन्ध

विशेष रूप से प्रान्तों के समूह या विभाग बनाने से था। कार्यसमिति का यह मत था कि प्रान्तों को किसी समूह या विभाग में रहने के लिये बाध्य नहीं करना चाहिये। यह कार्य प्रान्तीय स्वराज्य के सिद्धान्त के विरुद्ध था। कार्यसमिति ने अन्तरिम सरकार सम्बन्धी योजना एकदम ठुकरा दी। इस योजना का जो अर्थ उसे दिया गया था, वह उसे एकदम स्वीकार नहीं था।

सिक्खों ने भी शिष्टमंडल की योजना को पूर्णरूप से अस्वीकार कर दिया। उनको डर यह था कि प्रान्तों को समूहों में रखने से उनके हितों को भारी हानि पहुँचेगी।

जुलाई महीने में बम्बई में कांग्रेस की महासमिति की बैठक हुई। इस बैठक में कार्यसमिति के १६ जुलाई के निर्णय का समर्थन किया गया।

ये सब बातें चल ही रही थीं कि वाइसराय ने प्रान्तों के गवर्नरों के पास आदेश भेजे कि विधान सभा के सदस्यों के निर्वाचन के लिये उचित कार्यवाही होनी चाहिये। इस आदेश के अनुसार जुलाई में निर्वाचन हुए।

जब मंत्रिमंडल का शिष्टमंडल भारत से चलने लगा, तब उसने वाइसराय के साथ एक संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें यह कहा गया था कि वे लोग सन्तुष्ट और प्रसन्न थे कि अब संविधान निर्माण करने का कार्य प्रमुख दलों की सहायता से हो सकेगा। उन्हें इस बात का खेद था कि केन्द्र में संयुक्त अंतरिम सरकार बनाना सम्भव नहीं हो सका। परन्तु उन्होंने कहा कि विधान सभा के लिये निर्वाचन होने के बाद अन्तरिम सरकार बनाने के लिये फिर से प्रयत्न किये जायेंगे।

यद्यपि अन्तरिम सरकार का निर्माण थोड़े से ही समय के लिये टला था, परन्तु इससे मि० जिन्ना बहुत असंतुष्ट हुए। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और लार्ड वेवेल पर यह दोष लगाया कि उन्होंने अपने वचन भंग किया था। २९ जुलाई को मुसलिम लीग की कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पास किया, जिसके द्वारा उसने शिष्टमंडल की योजना को अस्वीकार कर दिया। इसके साथ-साथ उसने अपना प्रसिद्ध 'प्रत्यक्ष आन्दोलन' (Direct Action) सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास किया। इस प्रस्ताव में कहा गया कि कांग्रेस हठधर्मी कर रही थी और ब्रिटिश सरकार ने मुसलमानों के साथ विश्वासघात किया था, इसलिये

मुसलिम लीग को पाकिस्तान प्राप्त करने के लिये प्रत्यक्ष कार्य करना चाहिये। इस प्रस्ताव में लीग की कार्यसमिति से प्रत्यक्ष आन्दोलन का कार्यक्रम तैयार करने का आदेश दिया गया। १६ अगस्त को प्रत्यक्ष आन्दोलन दिवस मनाने का निश्चय किया गया।

१६ अगस्त को कलकत्ता में भयंकर हिन्दू-मुसलिम दंगे आरम्भ हो गये। इन दंगों में दोनों सम्प्रदायों के हजारों लोगों की जानें गईं।

इस समय पंडित नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष थे। १२ अगस्त को वाइसराय ने उन्हें अन्तरिम सरकार बनाने का निमंत्रण दिया। पंडित नेहरू ने अंतरिम मंत्रिमंडल बनाया और २ सितम्बर को उसने पद ग्रहण किया। मुसलिम लीग इस मंत्रिमंडल में शामिल नहीं हुई। अंतरिम मंत्रिमंडल में निम्नलिखित सदस्य थे—पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री राजेन्द्रप्रसाद, श्री आसफ अली, श्री सी० राजगोपालाचारी, श्री शरतचन्द्र बोस, डा० जान-मठाई, सरदार बलदेव सिंह, सर शफात अहमद खान, श्री जगजीवन राम, सैयद अली जहीर और श्री सी० एच० भाभा।

इसके बाद १३ अक्टोबर को मुसलिम लीग की कार्यसमिति ने भी अन्तरिम सरकार में शामिल होना स्वीकार कर लिया। १५ अक्टोबर को मुसलिम लीग के पाँच प्रतिनिधि अन्तरिम सरकार में शामिल हो गये। इन पांच सदस्यों के नाम ये थे—मि० लियाकत अली खां, मि० आई० आई० चुन्द्रीगर, मि० अब्दुल रब निश्तर, मि० गजनफर अली खां, श्री योगेन्द्रनाथ मंडल। इन सदस्यों को उपयुक्त पद देने के लिये श्री शरतचन्द्र बोस, सर शफ़ात अहमद खान और सैयद अली जहीर ने अपने पद त्याग दिये।

विधान सभा की पहिली बैठक नई दिल्ली में ९ दिसम्बर सन् १९४६ को हुई। मुसलिम लीग ने इसमें भाग नहीं लिया। मुसलिम लीग इसमें इसलिये शामिल नहीं हुई कि कांग्रेस ने शिष्टमंडल की १६ मई की योजना का जो अर्थ लगाया था, विशेषकर समूह सम्बन्धी धाराओं का, उससे वह सहमत नहीं थी।

२० फरवरी को मि० एटली ने अपनी भारत छोड़ने की प्रसिद्ध घोषणा की। उसमें कहा गया था कि भारत में एक अनिश्चित और संदिग्ध

वातावरण छाया हुआ है। यह वातावरण बहुत खतरनाक है। "ब्रिटिश सरकार इस बात को स्पष्ट कर देना चाहती है कि उसका यह दृढ़ निश्चय है कि जून सन् १९४८ तक वह जिम्मेदार भारतीयों के हाथ में शासन शक्ति सौंप देगी और इसके लिये उचित कार्यवाही आरम्भ कर देगी।" इस घोषणा में यह भी कहा गया कि पूर्ण प्रतिनिधि विधान सभा में भारत के लिये जो विधान शिष्टमंडल की योजना के आधार पर तैयार किया जायगा, उसे स्वीकार करने के लिये पार्लियामेंट से सिफ़ारिश की जायगी। लेकिन यदि ऐसा विधान पूर्ण प्रतिनिधि विधान सभा द्वारा जून सन् १९४८ के पहिले नहीं बन सका तो फिर ब्रिटिश सरकार इस बात को सोचेगी कि ब्रिटिश भारत की शासन शक्ति किसको देना चाहिये। पूर्ण शक्ति किसी एक केन्द्रीय सरकार को देना चाहिये अथवा कुछ क्षेत्रों में प्रान्तीय सरकारों को भी देना चाहिये। भारत के लोगों के हित में ब्रिटिश सरकार को जो तरीका सबसे अच्छा दिखेगा उसे ही ग्रहण किया जायगा।" रियासतों के सम्बन्ध में यह कहा गया कि "प्रभुत्व (Paramountcy) के अन्तर्गत ब्रिटिश सरकार को जो अधिकार और कर्त्तव्य प्राप्त थे, उन्हें वह ब्रिटिश भारत की किसी भी उत्तराधिकारी सरकार को न देगी।"

इसी घोषणा में यह भी कहा गया कि युद्धकाल में लार्ड वेवेल भारत के वाइसराय नियुक्त किये गये थे। अब उनकी जगह लार्ड माउन्टबेटन नियुक्त किये जाते हैं। "भारत में ब्रिटिश शासन के अन्तिम चरण और स्वतन्त्र भारत के प्रथम चरण में यह आवश्यक है।"

२४ मार्च सन् १९४७ में लार्ड माउन्टबेटन दिल्ली आये। भारत में आते ही उन्होंने यह घोषणा की कि भारतीय समस्या अगले कुछ महीनों में अवश्य सुलभ जानी चाहिये। उन्होंने आते ही भारतीय नेताओं के साथ परामर्श आरम्भ कर दिया। इसके बाद मई के मध्य में परामर्श के लिये वे लंडन गये और उस माह के अन्त में लौटे। इसी बीच में पंजाब और बंगाल के विभाजन के लिये आन्दोलन बढ़ता जा रहा था और यह स्पष्ट हो गया था कि भारतीय समस्या का हल ब्रिटिश सरकार देश के विभाजन द्वारा ही करेगी।

माउन्टबेटन योजना—३ जून को ब्रिटिश सरकार ने एक नई योजना की घोषणा की, जिसमें भारतीय समस्या का एक नया हल पेश किया गया था। पहिले उसमें यह कहा गया कि सरकार शासन शक्ति भारतीय लोगों के हाथ में सौंपना चाहती है। दूसरी बात यह कही गई कि वर्तमान विधान सभा के काम में विघ्न डालने की सरकार की मंशा नहीं है। लेकिन इस सभा का बनाया हुआ विधान देश के जो भाग स्वीकार न करना चाहें, उन पर वह न लादा जायगा। यह जानने के लिये कि कौन से भाग उसे स्वीकार न करेंगे निम्नलिखित रीति निर्धारित की गई। बंगाल और पंजाब की प्रान्तीय धारा सभाओं को दो भागों में बांट दिया जायगा। एक भाग में मुसलिम बहुमत जिलों के प्रतिनिधि बैठेंगे और दूसरे में शेष जिलों के प्रतिनिधि बैठेंगे। योरोपियन सदस्य इन बैठकों में भाग न लेंगे। इस प्रकार इन दो प्रान्तों में से प्रत्येक की धारा सभा दो भागों में बंट जायगी। प्रत्येक भाग की बैठक अलग-अलग होगी और सदस्य इस प्रश्न पर मत दान करेंगे की प्रान्त का विभाजन होना चाहिये या नहीं। यदि दो में से किसी एक भाग ने भी विभाजन के पक्ष में बहुमत दिया तो प्रान्त का विभाजन होगा और उसके लिये प्रबन्ध किया जायगा। विभाजन के पक्ष में बहुमत प्रदर्शित होने पर प्रत्येक भाग यह निर्णय करेगा कि वह वर्तमान विधान सभा में शामिल होगा या नई विधान सभा बनावेगा। सिंध की प्रान्तीय धारा सभा इस सम्बन्ध में अपना निर्णय करेगी। पश्चिम-उत्तर सीमाप्रान्त में जनमत संग्रह (referendum) द्वारा यह बात निश्चित की जायगी। सिलहट जिले में मुसलमानों की जनसंख्या अधिक थी। इसलिये जनमत संग्रह द्वारा वह निर्णय करेगी कि सिलहट जिला आसाम में रहेगा कि पूर्वी बंगाल में जायगा।

इस वक्तव्य में यह स्पष्टरूप से कह दिया गया कि देशी रियासतों के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति वही रहेगी जो ब्रिटिश शिष्टमंडल के १२ मई के घोषणापत्र में निर्धारित की गई थी। इस वक्तव्य में यह भी कहा गया कि यदि भारत का विभाजन हुआ तो दोनों देशों की सीमा निर्धारित करने के लिये एक सीमा आयोग (Boundary Commission) नियुक्त किया जायगा।

उस वक्तव्य के अन्त में कहा गया कि "इस घोषणा के आधार पर भारत में जो एक या दो सरकारें वनेंगी उनको औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर शासन सत्ता देने के लिये ब्रिटिश सरकार पार्लियामेंट के इसी अधिवेशन में कानून वनाना चाहती है। इसके वाद भी भारत में स्थित विधान परिषदों को यह निर्णय करने का अधिकार रहेगा कि उनके देश ब्रिटिश राष्ट्र मंडल में शामिल रहेंगे या नही।"

इस योजना को कांग्रेस की महासमिति ने १५ जून को और मुसलिम लीग की कौंसिल ने ९ जून को स्वीकार कर लिया।

३ जून की योजना के आधार के अनुसार कार्य किया गया और पंजाव तथा वंगाल का विभाजन निश्चित हो गया। २० जून को पश्चिम पंजाव ने और २३ जून को पूर्वी वंगाल ने नई विधान सभा में शामिल होने का निर्णय किया। पंजाव और वंगाल के विभाजन के लिये ३० जून को दो सीमा आयोगों की नियुक्ति की घोषणा की गई। १७ अगस्त को सीमा आयोगों के निर्णय प्रकाशित किये गये; सिंध और सीमाप्रान्त ने नई विधान सभा में शामिल होने का निर्णय किया। सिलहट ने पूर्व वंगाल में जाने का निर्णय किया।

४ जुलाई को ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारतीय स्वतन्त्रता विधेयक पेश किया गया और १८ जुलाई को वह कानून वन गया। इस कानून के अनुसार १५ अगस्त सन् १९४७ से भारत और पाकिस्तान दो देश वन गये।

सन् १९४७ में सारे भारतवर्ष में और विशेषकर पंजाव में इतने भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए जितने कि देश में पहिले कभी देखने में नहीं आये थे। पंजाव में ये दंगे फरवरी में आरम्भ हुए। लूटना, आग लगाना, कत्ले आम, स्त्रियों और वच्चों का अपहरण साधारण घटनाएं हो गईं। हजारों वेगुनाह जानें गईं और लाखों वेघर-वार और आश्रयविहीन हो गये। जव भारत और पाकिस्तान की दो सरकारें वनीं तव उनके सामने सवसे वड़ी समस्या यह थी कि एक देश के लाखों शरणार्थियों को दूसरे देश में कैसे पहुंचाया जाय।

देशी रियासतें—इस वात में वहुत कुछ तथ्य है कि जव अंग्रेजों ने भारत छोड़ा, तव उन्होंने उजाड़ने की नीति (political scorched earth

policy) से काम लिया। २० फरवरी सन् १९४७ के वक्तव्य में मि० एटली ने कहा था—

"देशी रियासतों के सम्बन्ध में शिष्टमंडल की योजना में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि देशी रियासतों के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार को प्रभुत्व के जो अधिकार और कर्त्तव्य प्राप्त हैं, वे ब्रिटिश भारत की किसी उत्तराधिकारी सरकार को नहीं दिये जावेंगे।" इस नीति के अनुसार देशी रियासतों को भारत सरकार के साथ अपने भविष्य के सम्बन्ध निर्धारित करने की स्वतन्त्रता थी। अंग्रेज देश के सैकड़ों टुकड़े करके छोड़ जाना चाहते थे। सन् १९४७ के भारतीय स्वतन्त्रता कानून की धारा ७ (१) (ब) में लिखा हुआ है कि—

"१५ अगस्त सन् १९४७ से भारतीय रियासतों पर ब्रिटिश सरकार का प्रभुत्व समाप्त हो जाता है और इस कानून के साथ-साथ वे सब सन्धियां, समझौते, अधिकार, कर्त्तव्य इत्यादि तथा तत्सम्बन्धी कार्य समाप्त हो जाते हैं, जो ब्रिटिश सरकार को देशी रियासतों से प्राप्त थे।"

जब विधान सभा स्थापित की गई तब उसके साथ ही साथ एक समझौता समिति (Negotiating Committee) भी स्थापित की गई थी। इस कमेटी का काम देशी रियासतों के साथ राजनैतिक सम्बन्ध निश्चित करना तथा उनका भारतीय संघ में शामिल होने का प्रश्न तय करना था। बहुत सी रियासतें तुरन्त भारतीय संघ में शामिल होने को तैयार हो गईं। कई रियासतों के प्रतिनिधियों ने १५ अगस्त सन् १९४७ के पहिले ही विधान सभा में स्थान ग्रहण कर लिये। भारतीय स्वतन्त्रता कानून पास होने के बाद पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त एजेन्सी, बलुचिस्तान एजेन्सी और पंजाब एजेन्सी की बहावलपुर और खैरपुर रियासतों को छोड़कर प्रायः सब रियासतें भारतीय संघ में शामिल हो गईं। इन रियासतों ने केवल तीन विषयों का शासन भारतीय संघ को दिया। एक सुरक्षा; दूसरा परराष्ट्र सम्बन्धी कार्य, तीसरा आवागमन के साधन। बाद में रियासतों ने अन्य कई विषय भी संघ को दे दिये और उनकी स्थिति प्रायः वही हो गई, जो प्रान्तों की है। हैदराबाद रियासत में बहुत जोर का भारत विरोधी साम्प्रदायिक आन्दोलन चल रहा था। इससे काफी दिनों तक वह रियासत भारतीय संघ में शामिल नहीं हो

सकी। अन्त में सेना की सहायता से भारत सरकार को वहां के आतंकवादी नेताओं के प्रभाव को समाप्त करना पड़ा।

भारत की विधान सभा (The Indian Constituent Assembly)—९ दिसम्बर सन् १९४६ को भारतीय विधान सभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। ११ दिसम्बर को डा० राजेन्द्रप्रसाद उसके स्थायी सभापति चुने गये। १३ दिसम्बर को पं० नेहरू ने 'सभा के उद्देश्य' सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया। वह प्रस्ताव निम्नलिखित था—

"विधान सभा का यह दृढ़ और निश्चित उद्देश्य है कि वह भारत को स्वतन्त्र और सर्व प्रभुत्वपूर्ण गणतन्त्र राज्य घोषित करके उसके भावी शासन का विधान निर्माण करेगी। भारत के जो क्षेत्र इस समय ब्रिटिश भारत के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा जो राज्य देशी रियासतों के नाम से प्रसिद्ध हैं, तथा जो राज्य ब्रिटिश भारत के और देशी रियासतों के बाहर हैं और अन्य ऐसे क्षेत्र जो भारत के बाहर हैं पर जो स्वतंत्र भारतीय संघ में शामिल होना चाहते हैं, वे सब उसमें शामिल होंगे। और,

"ऊपर कहे गये क्षेत्रों की जो सीमाएं हैं और विधान सभा उनकी जो सीमाएं निश्चित करे अथवा बाद में विधान के अनुसार उनको जो सीमाएं निश्चित की जायं, उन सीमाओं के अनुसार ये क्षेत्र शासन की स्वतन्त्र इकाइयां मानी जायँगी। संघ के पास शासन के जो अधिकार रहेंगे, उनको छोड़कर इन इकाइयों के पास शासन के सब अधिकार और कार्य रहेंगे। साथ ही अवशिष्ट अधिकार भी इन्हीं इकाइयों के पास रहेंगे। और,

"स्वतन्त्र और सर्वप्रभुत्वपूर्ण भारत की तथा उसकी इकाइयों और अंगों की शासन-शक्ति देश की जनता से प्राप्त होगी। और,

"भारत के सब लोगों को कानून की नज़रों में न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समानता तथा समान अवसर निश्चित रूप से प्राप्त होंगे। और कानून तथा सार्वजनिक नैतिकता के अन्तर्गत लोगों को विचार, भाषण, विश्वास, धार्मिक आचरण, संगठन तथा कार्यों सम्बन्धी स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। और,

"अल्पसंख्यक, पिछड़ी हुई जातियों, पिछड़ी हुई अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े हुए वर्गों को उपयुक्त संरक्षण प्राप्त होंगे। और,

"गणतन्त्र की सीमा तथा उसका प्रभुत्व स्थल, जल और आकाश में सभ्य देशों के कानून और न्याय के अनुसार सुरक्षित रखे जायेंगे। और ऐसे प्रयत्न तथा कार्य किये जायेंगे जिससे इस प्राचीन राष्ट्र का स्थान संसार में गौरवपूर्ण बना रहे और यह देश संसार में शान्ति स्थापन तथा मनुष्य मात्र के लिये कल्याणकारी कार्य कर सके।"

विधान सभा ने समय-समय पर कई समितियों की नियुक्ति की, जैसे कि संघ के विषय सम्बन्धी समिति, राज्यों या प्रान्तों के विधान सम्बन्धी समिति, तथा संघ की विधायनी समिति। इन समितियों की तथा विधान सभा की समय-समय पर बैठकें होती रहीं, जिनमें विधान के प्रधान सिद्धान्त स्वीकृत किये गये।

२९ अगस्त सन् १९४७ को विधान सभा ने एक समिति की नियुक्ति की, जिसको सभा द्वारा स्वीकार किये गये सिद्धान्तों के आधार पर संविधान तैयार करने का काम सौंपा गया। इस सभा के निम्नलिखित सदस्य थे—डा० बी० आर० आम्बेडकर (सभापति) श्री एन० गोपालास्वामी आयंगर, श्री अलादी कृष्णास्वामी अय्यर, श्री के० एम० मुंशी, सैयद मुहम्मद सादुल्ला, श्री एन० माधव राउ, श्री डी० पी० खेतान और सर बी० एल० मित्तर। इनमें से सर बी० एल० मित्तर ने थोड़े ही दिनों के बाद इस कमेटी की सदस्यता छोड़ दी।

इस कमेटी ने २१ फरवरी सन् १९४८ को अपनी रिपोर्ट पेश की।

५ नवम्बर को संविधान की यह रिपोर्ट विधान सभा में पेश की गई। पहिले तो सभा ने उस पर सरसरी तौर से विचार किया। फिर बाद में एक-एक धारा लेकर विवाद और विचार किया। विचार पूरा होने पर २६ नवम्बर सन् १९४९ को सभा ने भारत का संविधान स्वीकार किया। विधान की कुछ धाराएं तो तुरन्त अमल में कर दी गईं। पर सम्पूर्ण विधान २६ जनवरी सन् १९५० से लागू किया गया।

विधान सभा के ११ अधिवेशन हुए और कुल मिलाकर १६५ दिन उसकी बैठकें हुईं। इनमें से ११४ दिन विधान की रिपोर्ट पर विचार करने में बीते।

प्रस्तावित विधान की रिपोर्ट पर ७,६३५ संशोधन पेश किये गये, जिनमें से २४७३ संशोधनों पर विचार हुआ। विधान सभा में ३०७ सदस्य थे।

विधान सभा को अपना काम पूरा करने में २ वर्ष ११ महीने और १८ दिन लगे। यदि हम संसार की अन्य विधान सभाओं के साथ इसकी तुलना करें तो देखेंगे कि अमेरिका की सभा ने चार महीने में अपना काम पूरा किया, कनाडा की विधान सभा ने २ वर्ष ५ महीने में, आस्ट्रेलिया की विधान सभा ने ९ वर्ष में, और दक्षिण अफ्रिका की विधान सभा ने १ वर्ष में अपना काम पूरा किया।

दूसरा अध्याय

सन् १९१९ का शासन कानून

(The Government of India Act, 1919)

सन् १८३३ के पहिले भारत में कानून बनानेवाली धारा सभाएं नहीं थीं; परन्तु उनके लिये आन्दोलन हो रहा था। इस मांग के फलस्वरूप धारा सभाओं की स्थापना होने लगी। परन्तु इन सभाओं में सरकारी सदस्यों का बहुमत रहा करता था। लेकिन सन् १९०९ में जब मिंटो-मोरले कानून के अनुसार शासन सुधार हुए तब प्रान्तों में ऐसी धारा सभाएं स्थापित की गईं जिनमें गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत था। परन्तु केन्द्रीय धारा सभा में तब भी सरकारी सदस्यों का बहुमत रहा। सन् १९१९ में जो शासन-सुधार सम्बन्धी कानून बना उसके अन्तर्गत नाम निर्देशित सरकारी सदस्यों की संख्या घटा दी गई और निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई।

दोहरा शासन (Dyarchy)—सन् १९१९ के शासन कानून के अनुसार शासन की जो प्रणाली स्थापित हुई, उसे दोहरी सरकार कहते हैं। यह

दोहरा शासन केवल प्रान्तों में था, केन्द्र में नहीं। इस प्रणाली में प्रान्तीय सरकार के विषयों को दो भागों में बांट दिया गया था। एक भाग में हस्तान्तरित विषय (Transferred Subjects) थे और दूसरे में रक्षित विषय (Reserved Subjects) थे। रक्षित विषयों का शासन गवर्नर अपनी कार्य-कारिणी सभा की सहायता से किया करता था और हस्तान्तरित विषयों का शासन वह मंत्रियों की सहायता से किया करता था। कार्यकारिणी सभा के सदस्य गवर्नर द्वारा नाम निर्देशित किये जाते थे और मंत्रियों की नियुक्ति गवर्नर धारा सभा के सदस्यों में से करता था। रक्षित विषयों में निम्नलिखित विषय शामिल थे— न्याय, पुलिस, नहरें और सिंचाई, बांध, जलविद्युत्, भूमि-कर का प्रवन्ध, भूमि उन्नति तथा कृषि सम्बन्धी ऋण, अकाल निवारण, समाचार पत्रों, पुस्तकों तथा छापाखानों पर नियन्त्रण, जेल, ऋण लेना, जंगलों का प्रवन्ध (बम्बई और बरमा प्रान्तों को छोड़कर) कारखानों की देख-रेख, औद्योगिक झगड़ों का निवटारा औद्योगिक वीमा और मकानात। हस्तान्तरित विषयों में निम्नलिखित विषय शामिल थे—स्थानीय संस्थाओं का शासन। इनमें म्युनिसिपल वोर्ड और जिला वोर्ड शामिल थे। सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सा सम्बन्धी प्रवन्ध, इनमें अस्पतालों और पागलखानों का प्रवन्ध तथा चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा शामिल थी। भारतीय बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध, सार्वजनिक निर्माण कार्य जिसमें सड़कें, पुल बनवाना इत्यादि का काम शामिल था, परन्तु सिंचाई के साधन शामिल नहीं थे। कृषि तथा मछलीगाह, सहकारी समितियां, आवकारी, केवल बम्बई और बरमा में जंगल, उद्योगों की उन्नति जिसमें विशेष शिक्षा और अनुसन्धान शामिल थे।

इस कानून में यह भी स्पष्टरूप से वतला दिया गया कि केन्द्रीय सरकार के शासन में कौन-कौन से विषय रहेंगे। इस प्रकार केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन की निश्चित सीमाएं निर्धारित कर दी गईं। केन्द्रीय शासन के विषय निम्नलिखित थे—सेना तथा तत्सम्वन्धी सब कार्य, परराष्ट्र कार्य, देशी रियासतों सम्बन्धी सब कार्य, आयात और निर्यात कर, रेलें, डाक और तार, आयकर, मुद्रा, सार्वजनिक ऋण, व्यवसाय और जहाज़रानी, दंड और व्यवहार कानून, जनगणना और आंकड़े, लोक सेवायोग इत्यादि।

कानून बनाने के अवशिष्ट अधिकार केन्द्रीय सरकार के हाथ में थे।

आर्थिक क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार के आय के मुख्य साधन आयकर, रेलें, डाक और तार, आयात-निर्यात कर, नमक कर और अफीम पर कर थे। प्रान्तों की आय के मुख्य साधन भूमि कर, आबकारी, स्टाम्प कर, जंगल तथा सिंचाई थे।

गवर्नर-जनरल और उसकी कार्यकारिणी—(The Governor-General-in Council)—इस कानून के अन्तर्गत अपनी कार्यकारिणी सहित गवर्नर-जनरल को बहुत विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। कानून बनानेवाले विधान मंडल में दो सदस्य थे—विधान सभा (Legislative Assembly) और राज्य-परिषद् (Council of State)। यदि गवर्नर जनरल किसी विधेयक को कानून बनाने की सिफारिश करता था और फिर भी विधानमंडल उसे कानून नहीं बनाता था, तो अपना प्रमाणपत्र देकर गवर्नर-जनरल उस विधेयक को कानून बना सकता था। उसे केवल यह प्रमाणपत्र देना पड़ता था कि देश की शान्ति, सुरक्षा तथा उन्नति के हित में इस विधेयक का कानून होना आवश्यक है। रक्षित विषयों के लिये प्रान्तों के गवर्नर, गवर्नर-जनरल तथा भारत सचिव के प्रति जिम्मेदार थे।

भारत-सचिव (Secretary of State)—अपनी परिषद् सहित भारत-सचिव (Secretary of State in Council) को पूरा अधिकार था कि वह सरकार के सब कार्यों की देख-रेख करे और उसके कार्यों पर पूरा नियंत्रण रखे। भारत सरकार की आय और व्यय पर भी उसका पूरा नियंत्रण था।

केन्द्रीय विधान मंडल (The Central Legislature)—केन्द्रीय विधान मंडल में दो सदन थे। राज्य-परिषद् (Council of State) में ६० से अधिक सदस्य नहीं होते थे। इनमें से २० से अधिक सरकारी सदस्य नहीं हो सकते थे। निर्वाचित सदस्यों की संख्या ३३ थी। शेष सदस्य निर्वाचित होते थे। निम्न सभा या विधान सभा (Legislative Assembly) में १४० सदस्य होते थे। इनमें से १०३ निर्वाचित थे। शेष नाम निर्देशित होते थे। नाम निर्देशित सदस्यों में से २६ सरकारी सदस्य होते थे।

मतदान और मतदाता (Electorates)—सन् १९०९ के शासन कानून द्वारा साम्प्रदायिक मतदान की प्रणाली स्थापित कर दी गई थी। सन् १९१९ के कानून में भी मतदान साम्प्रदायिकता के आधार पर रखा गया था। इसलिये मुसलिम, गैर-मुसलिम , योरोपियन और एंग्लो-इंडियन निर्वाचन क्षेत्र थे। फिर विशेष हितों के लिये प्रतिनिधित्व और निर्वाचन क्षेत्र अलग-अलग रखे गये थे। इनमें विश्वविद्यालय, उद्योग और व्यवसाय तथा जमींदारों के निर्वाचन-क्षेत्र शामिल थे।

प्रान्तीय विधान मंडल (The Provincial Legislatures)—इस कानून के अनुसार प्रान्तीय धारा सभाओं अर्थात् विधान मंडलों के कम-से-कम ७० प्रतिशत प्रतिनिधि निर्वाचित होते थे। शेष प्रतिनिधि नाम निर्देशित होते थे। नाम निर्देशित प्रतिनिधियों में से २० प्रतिशत से अधिक सरकारी प्रतिनिधि नहीं हो सकते थे। गवर्नर को अर्थ विधेयकों को प्रमाणित कर देने के अधिकार प्राप्त थे। यदि विधान मंडल किसी बजट विधेयक को रद्द कर देता था अथवा उसमें कमी कर देता था तो गवर्नर अपने विशेष अधिकारों द्वारा उसे कानून बना सकता था। परन्तु हस्तान्तरित विषयों के सम्बन्ध में उसको इस प्रकार के विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे। अविश्वास का प्रस्ताव पास करके धारा सभा मंत्रिमंडल को पदच्युत कर सकती थी, परन्तु कार्यकारिणी सभा को पदच्युत नहीं कर सकती थी। कार्यकारिणी की नियुक्ति सम्राट् द्वारा एक निश्चित अवधि के लिये होती थी। धारा सभा को बजट की कुछ धाराओं पर विचार करने अथवा मत देने का अधिकार नहीं था।

दोहरे शासन के दोष (Defects of Dyarchy)—यह दोहरा शासन संतोषप्रद नहीं रहा। किसी शरीर की तरह सरकार भी एक संगठित इकाई रहती है। यदि उसके अंगों को विच्छेदित कर दिया जाय तो अंग-भंग शरीर की तरह उपयुक्त ढंग से काम नहीं करेगी। फिर हम यह बात आसानी से समझ सकते हैं कि किसी सरकार के विभागों को इस प्रकार अलग करना कि उनमें आपस में कोई सम्पर्क न रहे, असम्भव है। उदाहरण के लिये वित्त (Finance) सुरक्षित विषय था, परन्तु वास्तव में उसका सम्बन्ध प्रत्येक विभाग

से होता है। फल यह होता था कि अपने विभागों के लिये धन प्राप्त करने के लिये मंत्रीगण कार्यकारिणी सभा के सदस्यों का मुंह ताका करते थे। हमेशा यह शिकायत बनी रहती थी, और वह बहुत कुछ सत्य भी थी, कि प्रायः सब रुपया रक्षित विषयों पर खर्च हो जाता है और मंत्रियों के हाथ में राष्ट्र-कल्याण के जो काम रहते हैं, वे धन की कमी के कारण पनपने नहीं पाते। कांग्रेस ने दोहरे शासन का हमेशा विरोध किया। इस शासन प्रणाली में मंत्रियों की स्थिति बड़ी संकटपूर्ण थी। उन्हें धारा सभा में बहुमत प्राप्त करने के लिये प्रायः नाम-निर्देशित सदस्यों पर निर्भर रहना पड़ता था। इसलिये उन्हें सरकार का समर्थक या 'जी हुजूर' समझा जाता था।

तीसरा अध्याय

सन् १९३५ का शासन कानून (मूल)

(The Government of India Act, 1935 : Original)

गोलमेज सभाओं के फलस्वरूप तथा ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मि० रेमज़े मेकडानल्ड के दिये हुए साम्प्रदायिक निर्णय के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने भारत के लिये एक नये शासन विधान के प्रस्ताव तैयार किये और उन्हें एक श्वेत-पत्र के रूप में प्रकाशित किया। गोलमेज सभा में हिन्दू और मुसलमानों के प्रतिनिधि इस बात पर कोई आपसी समझौता न कर सके कि विधानमंडलों में उनके प्रतिनिधियों की संख्या किस अनुपात में होगी। इसलिये अन्त में ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने अपना निर्णय दिया। फिर उस निर्णय में हिन्दुओं और परिगणित जातियों को अलग-अलग करके हरिजनों को पृथक् प्रतिनिधित्व दिया गया। गांधीजी ने इसका कड़ा विरोध किया। उन्होंने कहा कि यह हिन्दू जाति को टुकड़े-टुकड़े करने का प्रयत्न था। उन्होंने कहा कि यदि परिगणित जातियों के

प्रतिनिधित्व सम्बन्धी धाराओं में उपयुक्त परिवर्तन नहीं किया गया तो मैं आमरण अनशन करूंगा। इस घोषणा के फलस्वरूप हिन्दुओं और परिगणित जातियों में एक समझौता हो गया। इसे 'पूना समझौता' के नाम से कहते हैं। ब्रिटिश सरकार ने इस समझौते को स्वीकार कर लिया। इस समझौते के आधार में हिन्दुओं और परिगणित जातियों के लिये संयुक्त निर्वाचन का सिद्धान्त था। सन् १९३५ के शासन विधान में इस सिद्धान्त का पालन किया गया।

श्वेतपत्र में विधान सम्बन्धी जो योजना रखी गई थी, उस पर पार्लियामेंट की एक संयुक्त प्रवर समिति (Joint Select Committee) ने विचार किया और सन् १९३४ में अपनी रिपोर्ट दी। इस रिपोर्ट के आधार पर एक विधेयक तैयार किया गया। यही विधेयक सन् १९३५ का भारतीय शासन कानून बना।

सन् १९३७ से १४ अगस्त सन् १९४७ तक यही कानून भारत का शासन विधान था। १५ अगस्त सन् १९४७ से इस कानून का परिवर्तित रूप शासन का आधार रहा। इस कानून की प्रधान धाराएं इस प्रकार थीं—

संघ-शासन (The Federation)—सन् १९३५ का जो मूल शासन कानून था, उसमें ब्रिटिश भारत के प्रान्त और देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ शासन की योजना रखी गई थी। उस कानून में यह कहा गया था कि यदि कुछ ऐसी देशी रियासतें संघ में शामिल हो जायँ, जिनकी कुल रियासतों की जनता की आधी संख्या उनमें हो तो ब्रिटिश सरकार एक संघ स्थापित कर देगी। इसके लिये ब्रिटिश पार्लियामेंट के प्रत्येक सदन में इस आशय का एक प्रस्ताव पास करना पड़ेगा और देशी रियासतों को संघ की विधान सभा के उच्च सदन में आधा प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। लेकिन एक तो रियासतों द्वारा यह शर्त पूरी न हो सकी और दूसरे ब्रिटिश भारत में कई ओर से इस योजना की कड़ी आलोचना की गई। इसलिये संघ शासन की स्थापना न हो सकी। परन्तु सन् १९३७ में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हो गई। संघ स्थापना की तिथि टलती गई और सन् १९३९ में १८ अक्टोबर को जब दूसरा महायुद्ध आरम्भ हो गया, तब यह योजना स्थगित कर दी गई। उस दिन भारत के गवर्नर-जनरल लार्ड लिनलिथगो

ने एक घोषणा की, जिसमें उन्होंने कहा कि "ब्रिटिश सरकार इस बात को महसूस करती है कि भविष्य में जब कभी भारत में संघ शासन की स्थापना पर विचार करना पड़ेगा, तब उस समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर यह बात सोचनी पड़ेगी कि सन् १९३५ की योजना में किन परिवर्तनों की आवश्यकता है।" इस प्रकार भविष्य में संघ शासन की योजना में परिवर्तन करने की गुंजाइश रख दी गई।

गवर्नर-जनरल (Governor General)—संघ शासन की योजना में गवर्नर जनरल प्रधान केन्द्र था। कानून के अन्तर्गत उसे विस्तृत अधिकार तथा कर्त्तव्य दिये गये थे। ब्रिटिश सरकार की तरफ से संघ शासन में उसे कार्यपालिका के अधिकार प्राप्त थे। संघ कार्यपालिका को उन सब विषयों पर अधिकार थे, जिन पर संघ का विधानमंडल कानून बना सकता था। साथ ही कार्यपालिका को सेना तथा पिछड़ी हुई जातियों के सम्बन्ध में भी अधिकार प्राप्त थे।

एक मंत्रि-परिषद् गवर्नर-जनरल को उसके कार्य संचालन में सहायता करती थी। परन्तु जहां गवर्नर-जनरल स्वयं अपनी जिम्मेदारी पर काम करना था, वहां मंत्रि-परिषद् को राय या सलाह देने की आवश्यकता नहीं थी। निम्नलिखित विषयों पर वह अपनी जिम्मेदारी पर काम करता था—सुरक्षा, धर्म सम्बन्धी कार्य और संघ तथा ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी भाग को छोड़कर परराष्ट्र सम्बन्धी कार्य। इतने विषयों पर मंत्रि-परिषद् अपनी सलाह नहीं दे सकती थी—गवर्नर-जनरल की बहुत सी ऐसी जिम्मेदारियां थीं, जिनके सम्बन्ध में वह अपनी राय के अनुसार काम करता था। वह मंत्रियों की राय ले सकता था, परन्तु उनकी सलाह मानना आवश्यक नहीं था। गवर्नर-जनरल की विशेष जिम्मेदारी निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में थी—

(१) भारत अथवा उसके किसी भाग में शान्तिपूर्ण वातावरण में किसी प्रकार का खतरा उत्पन्न न होने पावे।

(२) संघ सरकार की आर्थिक स्थिति तथा साख सुरक्षित बनी रहे।

(३) अल्पसंख्यक जातियों के हित सुरक्षित बने रहें।

(४) सरकारी कर्मचारियों तथा उनके आश्रितों के हित और अधिकार सुरक्षित रहें।

(५) व्यवसाय में किसी के पक्ष या विपक्ष में हानिकर रियायत न की जाय।

(६) ऐसे किसी भी कार्य को रोकना जिससे ग्रेट ब्रिटेन या बरमा में बने हुए जो सामान भारत में आवें, उनके विरुद्ध कोई पक्षपातपूर्ण अथवा हानिकारक कार्यवाही न की जाय।

(७) देशी रियासतों के अधिकारों की रक्षा करना तथा उनके शासकों के अधिकारों तथा मर्यादा की रक्षा करना।

(८) इस बात का विशेष ध्यान रखना कि जिन बातों के सम्बन्ध में उसे इस कानून के अनुसार अपनी जिम्मेदारी पर काम करना है, उसमें किसी कारण से किसी प्रकार की बाधा न आने पावे।

शासन कानून में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि जब गवर्नर-जनरल अपनी विशेष जिम्मेदारी के अनुसार कार्य करता था, तब वह भारत मंत्री के नियंत्रण में रहता था और भारत मंत्री जो आदेश समय-समय पर देता था, उनका पालन करता था। अपने इस कार्य में सहायता लेने के लिये वह सलाहकार नियुक्त कर सकता था, जिनकी संख्या तीन से अधिक नहीं हो सकती थी।

गवर्नर-जनरल को अध्यादेश जारी करने तथा कानून बनाने के बहुत विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। वह दो प्रकार के अध्यादेश जारी कर सकता था।

(१) एक तो वे जो गवर्नर-जनरल तब जारी कर सकता था, जब संघ के विधानमंडल की बैठक न होती हो।

(२) वे अध्यादेश जो गवर्नर-जनरल किसी भी समय जारी कर सकता था।

(१) यदि किसी समय संघ के विधानमंडल की बैठक न होती हो और गवर्नर-जनरल यह सोचे कि परिस्थितियां ऐसी हैं कि तत्काल कार्य करना आवश्यक है, तो वह परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त अध्यादेश जारी कर सकता था। ऐसे अध्यादेश पर उसे व्यक्तिगत जिम्मेदारी लेनी पड़ेगी, जो यदि विधेयक के रूप में विधानमंडल के सामने जाता तो उसे अपनी पूर्व सम्मति देनी पड़ती। इसी प्रकार यदि गवर्नर-जनरल किसी विधेयक पर ब्रिटिश सरकार की पूर्व सम्मति लेना

आवश्यक समझता तो उसे उस प्रकार का अध्यादेश जारी करते समय भी पहिले ब्रिटिश सरकार की पूर्व सम्मति लेनी पड़ेगी। अध्यादेशों को वही मान्यता प्राप्त होगी, जो संघ के विधानमंडल के कानूनों को होगी। ब्रिटिश सरकार अध्यादेशों को रद्द कर सकती थी अथवा स्वयं गवर्नर-जनरल उन्हें किसी भी समय वापिस ले सकता था।

ये सब अध्यादेश संघ के विधानमंडल के सामने पेश किये जाते थे। विधानमंडल की बैठक होने के छः हफ्ते बाद वे रद्द हो जाते थे और यदि इस अवधि के समाप्त होने के पहिले विधानमंडल के दोनों सदन अलग-अलग इनको रद्द करने के प्रस्ताव पास करें तो भी वे रद्द हो जाते थे।

(२) यदि गवर्नर-जनरल को यह विश्वास है कि इस समय ऐसी परिस्थितियां हैं कि अपनी विशेष जिम्मेदारी को अथवा अपने व्यक्तिगत निर्णय को वह बिना अध्यादेश जारी किये पूरा नहीं कर सकता तो वह अध्यादेश जारी कर सकता था। ऐसा अध्यादेश ६ महीने से अधिक जारी नहीं रह सकता था और आवश्यकता पड़ने पर दूसरी आज्ञा द्वारा उसकी अवधि ६ महीने के लिये और भी बढ़ाई जा सकती थी। इन अध्यादेशों की वही मान्यता रहती थी जो कि संघ के विधानमंडल के कानूनों को रहती थी और जिस प्रकार ब्रिटिश सरकार उस विधानमंडल के किसी भी कानून को रद्द कर सकती थी, उसी प्रकार उन अध्यादेशों को भी रद्द कर सकती थी। इन अध्यादेशों के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल सब काम अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर करता था।

कुछ विशेष परिस्थितियों में गवर्नर-जनरल अपने हाथ में असाधारण अधिकार ले सकता था। यदि किसी समय गवर्नर-जनरल यह सोचता था कि ऐसी परिस्थितियां उपस्थित हो गई हैं कि संघ शासन विधान कानून के अनुसार नहीं चल सकता तो वह एक घोषणा द्वारा यह कह सकता था कि वह शासन कार्य अमुक हद तक अपनी जिम्मेदारी पर अपनी इच्छानुसार करेगा। एक घोषणा द्वारा वह शासन के किसी भी अधिकारी या व्यक्ति के सब अधिकार अपने हाथ में ले सकता था। इस घोषणा की सूचना तुरन्त भारत मंत्री को देनी आवश्यक थी और भारत मंत्री उसे पार्लियामेंट में पेश करता था। इस प्रकार की किसी भी

घोषणा की अवधि ६ महीने थी। परन्तु पार्लियामेंट उस अवधि को बढ़ा सकती थी।

संघ का विधानमंडल (The Federal Legislature)—सन् १९३५ के मूल विधान कानून की धाराओं के अनुसार विधानमंडल में ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल और दो सदन होते थे। एक सदन को राज्य-परिषद् (Council of States) और दूसरे सदन को लोक-सभा या संघ-सभा (House of Assembly) कहते थे।

राज्य-परिषद् में ब्रिटिश भारत के १५६ प्रतिनिधि और देशी रियासतों के १०४ से अधिक प्रतिनिधि नहीं होते थे। ब्रिटिश भारत के १५६ पदों में से ६ पदों पर गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार सदस्य मनोनीत करता था। शेष १५० पदों का वितरण इस प्रकार होता था—साधारण ७५, मुसलिम ४९, सिख ४, परिगणित जातियां ६ और स्त्रियां ६। इन पदों के लिये निर्वाचन होता था और मतदाता ऐसे लोग होते थे, जिनके पास अधिक सम्पत्ति तथा अन्य विशेष गुण होते थे। इस सदन के लिये १ एंग्लो-इंडियन, ७ योरोपियन और २ भारतीय ईसाई प्रान्तीय विधानमंडलों में इन जातियों के प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाते थे।

लोक-सभा में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों की संख्या २५० थी और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या १२५ से अधिक नहीं थी। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के पदों का वितरण सम्प्रदाय या जाति के आधार पर था और वह इस प्रकार था—कुल साधारण पद १०५ थे। इनमें से १९ पद परिगणित जातियों, ८२ मुसलमानों, ६ सिखों, ४ एंग्लो इंडियनों, ८ योरोपियनों तथा ८ भारतीय ईसाइयों के लिये थे। साधारण, मुसलमान और सिखों के लिये जो पद थे, वे इन जातियों के प्रान्तीय विधानमंडलों में जो प्रतिनिधि थे, उनमें से भरे जायँगे। इसी प्रकार प्रान्तीय विधानमंडलों में योरोपियन, एंग्लो इंडियन, भारतीय ईसाई और स्त्रियों के जो प्रतिनिधि थे, उनके निर्वाचक गण (Electoral Colleges) बनाये जायँगे और वे अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि लोक-सभा के लिये चुनेंगे। कुछ पद उद्योग, व्यवसाय, जमींदारों और

मजदूर वर्ग को भी मिले थे और इनके प्रतिनिधि व्यवसाय संघ, जमींदारों और मजदूर संगठनों द्वारा चुने जाते थे।

देशी रियासतों को जो पद मिले थे, उनके प्रतिनिधि शासकों द्वारा नियुक्त किये जायँगे।

राज्य-परिषद् स्थायी संस्था थी और उसका विघटन नहीं हो सकता था। उसके सदस्य ९ वर्ष के लिये चुने जाते थे और उनमें से एक तिहाई प्रति तीसरे वर्ष अपने पद छोड़ देते थे। लोक-सभा की अवधि ५ वर्ष की थी। परन्तु उसका विघटन इस अवधि के पहिले भी हो सकता था। लोक-सभा का अधिवेशन प्रति वर्ष होना चाहिये। इसके सिवा गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार दोनों सदनों की बैठक जब चाहे बुला सकता था और जब चाहे स्थगित कर सकता था तथा जब चाहे वह लोक-सभा का विघटन कर सकता था।

वित्त विधेयक (Financial Bills) राज्य-परिषद् में पेश नहीं किये जा सकते थे। वे केवल लोक-सभा में पेश किये जा सकते थे और उसके लिये गवर्नर-जनरल की सिफारिश आवश्यक थी। अन्य सब विधेयक किसी भी सदन में पेश हो सकते थे। परन्तु वित्त विधेयक पर विचार करने और उसे पास करने के दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त थे। यदि दोनों सदनों में मतभेद होता था तो उनकी संयुक्त बैठक होती थी।

संघ के विधानमंडल का संघ-शासन के खर्च पर बहुत ही सीमित अधिकार था। निम्नलिखित खर्च संघ की आय में से किये जाते थे और उन पर संघ का विधानमंडल अपना मत नहीं दे सकता था—(१) गवर्नर-जनरल का वेतन और भत्ते तथा उसके कार्यालय का खर्च। इस खर्च की अनुमति भारत मंत्री अपनी कौंसिल सहित आज्ञा देता था। (२) वे कर्ज़ तथा कर्ज़ सम्बन्धी खर्च जिनके लिये संघ सरकार जिम्मेदार थी। इनमें व्याज ऋण परिशोध कोष (Sinking Fund) तथा कर्ज़ लेने और चुकाने के अन्य खर्च शामिल थे। (३) मंत्रियों, सलाहकारों, वित्तीय सलाहकार, एडवोकेट जनरल, चीफ कमिश्नरों तथा वित्तीय सलाहकार के कार्यालय के वेतन और भत्ते। (४) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते और पेंशन। (५) उन सब कार्यों

से सम्बन्ध रखनेवाले खर्च जिन्हें गवर्नर-जनरल अपनी विशेष जिम्मेदारी पर अपने निर्णय के अनुसार करता है। इनमें सेना और सुरक्षा, परराष्ट्र विभाग, धार्मिक कार्य तथा पिछड़ी हुई जातियों से सम्बन्ध रखनेवाले कार्य शामिल हैं। (६) वह रक़म जो विधान कानून के अनुसार भारतीय संघ की आय में से ब्रिटिश सरकार को देशी राज्यों से सम्बन्ध रखनेवाले काम करने के लिये दी जाती थी। (७) किसी प्रान्त में शासन के बाहर जो क्षेत्र (Excluded Areas) कर दिये गये हैं, उनके शासन सम्बन्धी खर्च। (८) किसी न्यायालय की आज्ञा या आदेश पालन के सम्बन्ध में जो खर्च हो। अन्य कोई भी खर्च जो विधान कानून द्वारा या संघ की संसद द्वारा इस वर्ग में रख दिया जाय।

विधान कानून में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि (१) और (६) नम्बर के खर्चों पर विधानमंडल अर्थात् संसद विवाद भी नहीं कर सकती। बाकी सब मदों पर विवाद हो सकता था, परन्तु मतदान नहीं। यहां यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि भारत सरकार की जो कुल आय होती थी उसका ८० प्रतिशत से अधिक इन्हीं मदों पर खर्च होता था। प्रजातन्त्र की एक प्रधान विशेषता यह होती है कि विधानमंडल या संसद का आय-व्याय पर नियंत्रण होता है। परन्तु इस कानून ने केन्द्रीय सरकार का ८० प्रतिशत से अधिक खर्च विधानमंडल के अधिकार के बाहर रख दिया। इसलिये इस विधान को किसी भी दृष्टि से प्रजातन्त्र विधान नहीं कहा जा सकता था। यह तो प्रजातन्त्र और जिम्मेदार सरकार का एक तमाशा या मज़ाक जैसा था। फिर जिन मदों पर लोक-सभा को मतदान का अधिकार था, उनके सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल को यह अधिकार था कि यदि लोक-सभा किसी अनुदान की मांग को अस्वीकार कर दे तो अपने विशेष अधिकारों द्वारा वह उसे मंजूर कर सकता था। इसी प्रकार उसकी विशेष जिम्मेदारी से सम्बन्ध रखनेवाली किसी मांग को यदि लोक-सभा कम कर दे तो गवर्नर-जनरल उसे पूर्ववत् बना सकता था। इस प्रकार गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकारों, विशेष जिम्मेदारियों तथा अन्य कानूनी सीमाओं ने लोक-सभा को एक शक्तिहीन संस्था बना दिया था। साथ ही विधान कानून में यह भी स्पष्ट लिखा था कि पार्लियामेंट ब्रिटिश भारत के लिये कानून बना सकती थी।

विश्वविद्यालयों के लिये पद	मजदूर वर्ग के प्रतिनिधियों के लिये पद	स्त्रियों के पद				
		साधारण	सिख	मुसलमान	एंग्लो इंडियन	भारतीय ईसाई
१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
१	६	६	...	१	...	१
१	७	५	....	१	...	...
२	८	२	...	२	१	...
१	३	४	...	२	...	...
१	३	१	१	२	...	...
१	३	२	...	१	...	...
१	२	२	...	...	...	...
...	४	१	....	...	...	...
...	...	....	...	...	...	...
...	१	२	....	...	...	...
...	१	१	...	१	...	...

विधान का संशोधन (The Amendment of the Constitution)—इस कानून के अनुसार संघ को वैधानिक परिवर्तन करने के कोई अधिकार नहीं थे। ये अधिकार ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ में थे। कुछ परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार की सलाहकार समिति थोड़े से छोटे-मोटे परिवर्तन कर सकती थी।

कानून बनाने के अधिकारों का वितरण (Distribution of Legislative Powers)—सन् १९३५ के मूल कानून में संघ सरकार और प्रान्तीय सरकार के कानून बनाने के क्षेत्र और अधिकार निश्चित रूप से अलग-अलग बाँट दिये गये। इस सम्बन्ध में विषयों की सूची भी दोनों सरकारों के लिये बना दी गई। इन सूचियों को संघ सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची कहते थे। साधारणतः यदि संघ और प्रान्तों के कानूनों में कोई विरोध होता था तो संघ के कानूनों को मान्यता प्राप्त होती थी। परन्तु कानून बनाने के अवशिष्ट अधिकार गवर्नर-जनरल के हाथ में थे। यदि किसी ऐसे विषय पर कानून बनाना होता था, जो किसी भी सूची में नहीं था, तो गवर्नर-जनरल एक सरकारी सूचना द्वारा उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्रान्तीय अथवा संघ सरकार को दे सकता था। संघ सरकार का विधानमंडल प्रान्तों के लिये केवल लिखित प्रवेश पत्र (Instrument of Accession) के आधार पर तथा उसमें दी हुई सीमाओं और शर्तों को ध्यान में रखकर कानून बना सकता था।

संघ विधान का असंतोषपूर्ण रूप (Unsatisfactory Character of Federal Scheme)—भारत के प्रायः प्रत्येक राजनैतिक दल और समूह ने संघ योजना का विरोध किया। कांग्रेस ने इस योजना का विरोध कई कारणों से किया। एक तो इस योजना से भारतवासियों को शासन के वास्तविक अधिकार नहीं मिलते थे। दूसरे संघ के विधानमंडल में देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के रूप में कुछ ऐसे प्रतिक्रियावादी तत्त्व रख दिये गये थे, जो प्रगतिशील कानूनों का हमेशा विरोध करते। वास्तव में शासन कानून की धाराओं (अनुच्छेद ५ [२]) का पालन करते हुए भी देशी रियासतें भारत की वैधानिक प्रगति में अड़ंगा लगा सकती थीं।

प्रान्तीय राज्य परिषदों में पदों की सूची

प्रान्त	कुल पदों की संख्या	साधारण पद	मुसलमानों के लिये पद	योरोपियनों के लिये पद	भारतीय ईसाइयों के लिये पद	विधान सभा द्वारा भरे जाने वाले पद	गवर्नर द्वारा निर्देशित पद
१	२	३	४	५	६	७	८
मद्रास	५४ से कम नहीं ५६ से अधिक नहीं	३५	७	१	३	...	८ से कम नहीं १० से अधिक नहीं
बम्बई	२९ से कम नहीं ३० से अधिक नहीं	२०	५	१	...	...	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं
बंगाल	६३ से कम नहीं ६५ से अधिक नहीं	१०	१७	३	...	२७	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं
उत्तर-प्रदेश	५८ से कम नहीं ६० से अधिक नहीं	३४	१७	१	...	...	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं
बिहार	२९ से कम नहीं ३० से अधिक नहीं	९	४	१	...	१२	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं
आसाम	२१ से कम नहीं २२ से अधिक नहीं	१०	६	२	...	...	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं

देशी रियासतों के शासकों ने भी संघ योजना का कई आधारों पर विरोध किया। उनका कहना था कि यदि वे एक बार संघ में शामिल हुए तो ऐसी कोई धारा नहीं थी, जिसके अनुसार फिर वे संघ से वाहर हो सकते। संघ सरकार के हाथ में उन पर अनुचित दवाव डालने के बहुत से अस्त्र थे। यह तो स्पष्ट था कि संघ की कार्यपालिका तथा विधानमंडल में ब्रिटिश भारत के निवासियों का प्रभाव अधिक रहेगा। इसलिये देशी नरेशों को भय यह था कि ये लोग वाइसराय से ऐसे काम करा सकते थे, जिनसे उनके पूर्ण प्रभुत्व पर आघात होगा।

प्रान्तीय स्वराज्य (Provincial Autonomy)– सन् १९३५ के मूल शासन कानून में प्रान्तीय स्वराज्य सम्बन्धी जो धाराएं थीं, वे १ अप्रैल सन् १९३७ से लागू हो गईं।

प्रान्तीय स्वराज्य से इन दो में से किसी एक अथवा दोनों बातों का बोध होता है। एक तो किसी प्रकार का वाहरी नियंत्रण न हो और दूसरे प्रान्त के भीतर जिम्मेदार सरकार हो। लेकिन सन् १९३५ के कानून के अनुसार जो प्रान्तीय स्वराज्य दिया गया था, न तो उसे वाहरी नियंत्रण से मुक्ति थी और न आन्तरिक शासन के सम्बन्ध में प्रान्तों को पूर्ण जिम्मेदार सरकार ही दी गई थी। गवर्नर, गवर्नर-जनरल तथा ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ में इतने अधिक अधिकार रख दिये गये थे कि उनसे प्रान्तीय स्वतन्त्रता लगभग समाप्त हो जाती थी।

गवर्नर (The Governor)—गवर्नर के पद, अधिकारों और कार्यों का वर्णन सन् १९३५ के शासन में इस प्रकार दिया गया है—

गवर्नर की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट् द्वारा होती है। ब्रिटिश सम्राट् की ओर से प्रान्त की कार्यपालिका शक्ति का उपयोग गवर्नर स्वयं अथवा अपने मातहतों द्वारा करता है। गवर्नर को शासन सम्बन्धी कार्यों में सलाह और सहायता देने के लिये एक मंत्रि-परिषद् होती है। परन्तु जब गवर्नर अपने निर्णय के अनुसार कार्य करना चाहता है, तब उसे मंत्रियों की सलाह और सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। गवर्नर के अधिकार बहुत कुछ गवर्नर-जनरल के अधिकारों की तरह हैं। गवर्नर-जनरल की तरह गवर्नर के हाथ में भी विशेष जिम्मेदारियां

और विशेष अधिकार रख दिये गये थे। निम्नलिखित बातों में गवर्नर अपने निर्णय के अनुसार काम करता था—

(१) मंत्रियों की नियुक्ति करना और उन्हें पदच्युत करना। विधानमंडल के सदनों की बैठकें बुलाना और उन्हें स्थगित करना। लोक-सभा का विघटन करना।

(२) सरकार को खतम करने के उद्देश्य से किये जानेवाले हिंसात्मक अपराधों को रोकना।

(३) विधानमंडल द्वारा पास किये क़ानूनों को स्वीकृति अथवा अस्वीकृति देना। अथवा उन्हें गवर्नर-जनरल द्वारा विचार किये जाने के लिये रोकना।

(४) अध्यादेश (Ordinance) जारी करना।

(५) कुछ विशेष परिस्थितियों में कानून बनाना।

(६) यदि प्रान्त में शासन विधान असफल हो जाय तो एक घोषणा द्वारा शासन अपने हाथ में ले लेना।

(७) कुछ विधेयकों को पूर्व स्वीकृति देना।

(८) सुरक्षा, परराष्ट्र विभाग, धार्मिक कार्य तथा पिछड़ी हुई जातियों के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल के एजेन्ट का काम करना।

गवर्नर को दो प्रकार के अध्यादेश जारी करने का अधिकार था। अपनी विशेष जिम्मेदारी तथा अपने निर्णय के अनुसार काम करने के सम्बन्ध में गवर्नर किसी भी समय अध्यादेश जारी कर सकता था। इस प्रकार के अध्यादेश की अवधि ६ महीने की होती थी। परन्तु दूसरे अध्यादेश द्वारा उसकी अवधि ६ महीने के लिये और भी बढ़ाई जा सकती थी किन्तु उससे अधिक नहीं। अन्य बातों के सम्बन्ध में गवर्नर तभी अध्यादेश जारी कर सकता था, जब विधानमंडल का अधिवेशन न हो रहा हो। ये अध्यादेश केवल मंत्रियों की सलाह से जारी किये जाते थे। विधानमंडल का अधिवेशन शुरू होते ही ये अध्यादेश उसके सामने पेश किये जाते थे। अन्यथा अधिवेशन आरम्भ होने के ६ हफ्ते बाद वे अपने आप समाप्त हो जाते थे, अथवा एक प्रस्ताव द्वारा विधानमंडल उन्हें रद्द कर सकता था।

गवर्नर की विशेष जिम्मेदारियां निम्नलिखित होती थीं—

(१) प्रान्त अथवा उसके किसी भाग की शान्ति और सुरक्षा को सब प्रकार के खतरों से बचाना। (२) अल्पसंख्यक वर्गों के कानूनी हितों की रक्षा करना। (३) विधान कानून के अनुसार सरकारी कर्मचारियों तथा उनके आश्रितों द्वारा प्राप्त उचित हितों को उपलब्ध कराना तथा उनकी रक्षा करना। (४) हानिकर व्यावसायिक पक्षपात को रोकना। (५) अंशरूप में शासन के बाहर (Partially Excluded Areas) रहनेवाले क्षेत्रों के उचित शासन तथा शान्ति का प्रबन्ध करना। (६) देशी रियासतों के अधिकारों की रक्षा करना तथा उनके शासकों की महत्ता की रक्षा करना। (७) विधान के अनुसार दी गई गवर्नर-जनरल की आज्ञाओं और आदेशों का पालन करना।

अपनी विशेष जिम्मेदारियों के सम्बन्ध में काम करते समय गवर्नर मंत्रियों से सलाह लेता था, परन्तु कार्य अपने निर्णय के अनुसार करता था। अर्थात् उसके लिये मंत्रियों की सलाह मानना आवश्यक नहीं था। जहां उसके स्वयं निर्णय करने का प्रश्न उठता था, वहां मंत्री उसे सलाह नहीं दे सकते थे। जहां तक गवर्नर को अपनी जिम्मेदारी तथा अपने निर्णय के अनुसार काम करना पड़ता था, वहां तक वह गवर्नर-जनरल के नियंत्रण में रहता था और वह जो आदेश देता था, उनका गवर्नर पालन करता था।

अध्यादेश जारी करने के सिवा गवर्नर को कानून बनाने के भी काफी अधिकार प्राप्त थे। वह किसी भी विधेयक को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकता था। बिना उसकी स्वीकृति के कोई भी विधेयक कानून नहीं हो सकता था। वह किसी भी विधेयक को गवर्नर-जनरल द्वारा विचार किये जाने के लिये रोक सकता था। वह किसी भी विधेयक को विधानमंडल में फिर से विचार करने के लिये वापिस कर सकता था। यदि विधानमंडल किसी विधेयक पर विवाद या विचार कर रहा हो तो वह उस विचार को अथवा उस पर किसी संशोधन को इस आधार पर रोक सकता था कि उससे गवर्नर की प्रान्त में शान्ति बनाये रखने की जिम्मेदारी में बाधा पड़ती थी। यदि गवर्नर उचित समझता

तो वह अपनी विशेष जिम्मेदारी को पूरा करने के लिये उपयुक्त कानून बना सकता था।

यदि किसी कारण से प्रान्त में शासन व्यवस्था चलनी असम्भव हो जाय तो गवर्नर पूरे शासन की बागडोर अपने हाथ में ले सकता था। अर्थात् प्रान्त के कोई भी अथवा सब सत्ताधारियों के अधिकार अपने हाथ में ले सकता था।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि गवर्नर के इन अधिकारों के सामने प्रान्तीय स्वराज्य एक तमाशा या दिखावे की चीज़ रह जाता था। उसके विशेष अधिकार और विशेष जिम्मेदारियां विधानमंडल और मंत्रिमंडल को शक्तिहीन बना देते थे। उसके कुछ विशेष अधिकारों और जिम्मेदारियों का वर्णन स्पष्टरूप से नहीं किया गया था, इसलिये उसका मनचाहा अर्थ लगाया जा सकता था। फिर इस बात का निर्णय केवल गवर्नर-जनरल करता था कि कोई बात उसके विशेष अधिकारों अथवा जिम्मेदारी के अन्तर्गत आती थी अथवा नहीं। इस प्रकार यदि गवर्नर चाहता तो वह प्रान्तीय शासन पूरा तानाशाह हो सकता था।

प्रान्तीय विधानमंडल (The Provincial Legislature)—सन् १९३५ के शासन विधान कानून के अनुसार ६ प्रान्तों अर्थात् मद्रास, बम्बई, बंगाल, उत्तर-प्रदेश, बिहार और आसाम में दो सदनों के विधानमंडल थे और शेष प्रान्तों में अर्थात् उड़ीसा, सिन्ध, पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और मध्यप्रदेश में एक सदन के विधानमंडल थे। विधानमंडल के उच्च सदनों को राज्य-परिषद् या विधान परिषद् (Legislative Council) कहते थे। विभिन्न राज्यों में राज्य-परिषदों का संगठन और सदस्यों की संख्या इस अध्याय की सूची में दी गई है। विधान के अनुसार राज्य-परिषद् के लिये गवर्नर कुछ सदस्य नाम-निर्देशित करता था। बिहार और बंगाल में राज्य-परिषद् के काफी सदस्य लोक-सभा के सदस्यों द्वारा चुने जाते थे। अन्य प्रान्तों के लिये ऐसी कोई धारा नहीं थी। उनमें नामनिर्देशित सदस्यों को छोड़कर शेष सब सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते थे। मतदाता होने के लिये काफ़ी सम्पत्ति अथवा उच्चगुण होना आवश्यक था। राज्य-परिषदें स्थायी संस्थाएं होती थीं। सदस्यों के पद की

अवधि ९ वर्ष होती थी और एक तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष अपना पद खाली कर देते थे।

दूसरा सदन लोक-सभा या विधान परिषद् (Legislative Assembly) होती थी। इसके सदस्यों का चुनाव साम्प्रदायिक मतदान के आधार पर होता था। निर्वाचन क्षेत्र प्रधानतः भूमिगत (Territorial) होते थे। इन सदनों में विभिन्न प्रान्तों में पदों की सूची भी इसी अध्याय में दी गई है।

वित्त विधेयक राज्य-परिषद् में पेश नहीं हो सकते थे। इसी तरह अनुदान देने में भी इस सदन का कोई अधिकार नहीं रहता था। इन शर्तों के अलावा अन्य कोई विधेयक दो में से किसी एक सदन में प्रारम्भ हो सकता था। वित्त विधेयक पेश करने के लिये अथवा उस पर विचार करने के लिये गवर्नर की पूर्ण स्वीकृति आवश्यक होती थी।

प्रान्त के आय और व्यय पर विधानमंडल का नियंत्रण बहुत सीमित था। प्रान्त की आय से होनेवाले निम्नलिखित खर्चों पर विधानमंडल को मतदान करने का अधिकार नहीं था—(१) गवर्नर का वेतन और भत्ते तथा उसके कार्यालय सम्बन्धी अन्य खर्च। (२) सरकारी ऋण सम्बन्धी खर्च। (३) मंत्रियों की तनख्वाहें और भत्ते तथा एडवोकेट जनरल की तनख्वाहें और भत्ते। (४) हाईकोर्ट के जजों की तनख्वाहें और भत्ते। (५) पिछड़े हुए क्षेत्रों (Excluded Areas) के शासन सम्बन्धी खर्च। (६) किसी भी न्यायालय का निर्णय या आज्ञापालन के सम्बन्ध में होनेवाला खर्च। (७) अन्य कोई भी खर्च जो इस कानून अथवा प्रान्तीय विधानमंडल द्वारा इस सूची में शामिल कर दिया जाय।

ऊपर दी गई सूची के पहिले मद पर तो विवाद भी नहीं हो सकता था। खर्च के जिन मदों पर विधानमंडल को मतदान का अधिकार था, उन पर भी गवर्नर का नियंत्रण था। यदि विधानमंडल किसी खर्च को अस्वीकार कर देता तो गवर्नर उसे यह कह कर स्वीकृति दे सकता था कि उसकी किसी विशेष जिम्मेदारी को पूरी करने के लिये वह खर्च आवश्यक था। इस प्रकार विधान सभा की अस्वीकृति रद्द हो जाती थी।

जब तक दोनों सदनों में पास नहीं हो जाता, तब तक कोई विधेयक पास नहीं समझा जाता था। यदि सभा अर्थात् असेम्बली किसी विधेयक को पास करके परिषद् या कौंसिल में भेजती और उसके १२ महीने के भीतर वह गवर्नर की स्वीकृति के लिये नहीं भेजा जाता था तो गवर्नर उस विधेयक पर विचार और मतदान करने के लिये विधानमंडल के दोनों सदनों की एक संयुक्त बैठक बुला सकता था। यदि विधेयक का सम्बन्ध वित्त अर्थात् आय-व्यय से होता था अथवा गवर्नर की किसी विशेष जिम्मेदारी से होता था तो संयुक्त बैठक और पहिले भी बुलाई जा सकती थी।

इन सब बातों से जाहिर हो जाता है कि प्रान्तीय विधानमंडल के अधिकार बहुत सीमित और संकुचित थे। साथ ही पदों का वितरण साम्प्रदायिक आधार पर होने के कारण ये विधानमंडल जनता के सच्चे प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते थे। फिर उच्च सदन अर्थात् विधान परिषदें जान-बूझकर प्रतिक्रियावादी संस्थाएं बनाई गई थीं।

सम्राट् और भारत-मंत्री (The Crown and the Secretary of State)—भारत मंत्री का पद सबसे पहिले सन् १८५८ में बनाया गया था। सन् १९१९ के शासन कानून में भारत मंत्री को यह अधिकार दिया गया था कि भारतीय शासन पर उसका पूरा नियंत्रण रहेगा। वास्तव में उस क़ानून के अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें भारत मंत्री की केवल एजेंट थीं। परन्तु सन् १९३५ के विधान कानून की स्थिति में परिवर्तन हुआ। इसके अन्तर्गत सम्राट् ने भारत के सब शासन अधिकार अपने हाथ में ले लिये और उनको संघ और इकाइयों के बीच में बांट दिया। सम्राट् के अधिकार दो प्रकार के थे—एक वैध (Statutory) और दूसरे अवैध या निहित (Prerogative)। सम्राट् के कुछ वैध अधिकारों का वर्णन किया जा चुका है, जैसे कि गवर्नर-जनरल और गवर्नर की नियुक्ति। सम्राट् के निहित अधिकारों में क्षमादान, उपाधिदान तथा युद्ध और सन्धि करने के अधिकार थे।

जैसा कि कहा जा चुका है, जब गवर्नर-जनरल अपने निर्णय के अनुसार और अपनी विशेष जिम्मेदारी पर काम करता था, तब भारत मंत्री के नियंत्रण में रहता

था। भारत मंत्री को भारतीय सिविल सर्विस, पुलिस सर्विस और मेडिकल सर्विस में नियुक्तियां करने का अधिकार था। इस प्रकार हम देखते हैं कि गवर्नर-जनरल तथा गवर्नर पर नियंत्रण रखकर भारत मंत्री भारतीय शासन लगभग पूर्णरूप से अपनी मुट्ठी में रख सकता था। भारत मंत्री ब्रिटिश पालियामेंट के प्रति जिम्मेदार होता था तथा वह उसका सदस्य भी होता था। भारत मंत्री के कार्यालय को भारत कार्यालय (India Office) कहते थे।

विधान कसौटी पर (The working of the Constitution)—सन् १९३५ के विधान के लागू होने के पहिले यह भय था कि गवर्नर को जो विशेषाधिकार और विशेष जिम्मेदारियाँ दी गई थीं, उनसे प्रान्तों में मन्त्रिमंडल लगभग शक्तिहीन रहेंगे। सन् १९३७ के चुनावों में कांग्रेस ने ६ प्रान्तों में बहुमत प्राप्त किया। इसलिये जब इन प्रान्तों में कांग्रेस से मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहा गया, तब कांग्रेस ने इस बात का आश्वासन मांगा कि गवर्नर शासन कार्य में दखल न देंगे। परन्तु गवर्नरों ने इस प्रकार का आश्वासन देने से इनकार कर दिया। इस पर कांग्रेस ने भी मंत्रिमंडल बनाने से इनकार कर दिया। इस प्रकार एक राजनैतिक अड़ंगा उत्पन्न हो गया। तब ब्रिटिश सरकार ने आश्वासन देकर इस अड़ंगे को हटाया। ब्रिटिश सरकार ने यह आश्वासन दिया कि जहां तक सम्भव होगा गवर्नर अपने विशेष अधिकारों का उपयोग करके शासन में दखल न देंगे। यद्यपि यह आश्वासन उतना निश्चित नहीं था, जितना कांग्रेस ने मांगा था, फिर भी कांग्रेस ने मंत्रिमंडल बनाना स्वीकार कर लिया।

विधान में प्रान्तीय मंत्रिमंडलों को जितने अधिकार दिये गये थे, वास्तव में उन्हें उससे कहीं अधिक शासन शक्ति मिली। व्यावहारिक रूप में उन्हें कार्य करने के लिये अधिक विस्तृत अधिकार क्षेत्र प्राप्त हुआ।

प्रान्तीय स्वराज्य के क्षेत्र में पहिला बड़ा संकट ८ अक्टोबर सन् १९३९ में उत्पन्न हुआ और ८ प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों ने इस्तीफा दे दिया। जिन परिस्थितियों में इस्तीफा दिया गया, उनका वर्णन पीछे किया जा चुका है। सन्

१९४६ में जब नये चुनाव हुए तब ७ प्रान्तों में फिर से कांग्रेस के मंत्रिमंडल बनें।

सन् १९३५ का विधान जैसा था, उससे जनता की पूर्ण स्वराज्य की मांग पूरी नहीं हो सकती थी। वास्तविक प्रान्तीय स्वराज्य पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद स्थापित हुआ और १५ अगस्त सन् १९४७ से प्रान्तीय स्वराज्य नये आधार पर चल रहा है।

१५ अगस्त सन् १९४७ के पहिले केन्द्रीय सरकार (The Central Govt. before August 15, 1947.) चूंकि देश में संघ शासन स्थापित नहीं हो सका, इसलिये १५ अगस्त सन् १९४७ तक केन्द्र में कार्यपालिका तथा विधानमंडल सन् १९१९ के शासन-सुधारों के आधार पर ही चलते रहे। परन्तु सन् १९३७ में जब प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हुई तब से प्रान्तों और केन्द्र में सन् १९३५ के शासन कानून के अनुसार सम्बन्ध स्थापित हुए और उसी आधार पर शासन अधिकारों का भी वितरण हुआ। युद्ध-काल में गवर्नर-जनरल की कार्यपालिका के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। सितम्बर सन् १९४६ में केन्द्र में अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई। जिस दिन स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, उस दिन केन्द्र में भी पूर्ण जिम्मेदार सरकार स्थापित की गई।

---

list), राज्य-सूची (State list) और समवर्ती-सूची (Concurrent list)। इसलिये हमारे संविधान में कानून बनाने के अधिकारों का वितरण बहुत कुछ कनाडा के संविधान की तरह है। दोनों में मुख्य अन्तर केवल इतना है कि कनाडा में समवर्ती-सूची में केवल दो विषय हैं, अर्थात् कृषि और आवास (immigration) जब कि हमारे संविधान की समवर्ती सूची में ४७ विषय हैं।

एक दृष्टि से हमारा संविधान संसार के अन्य सब संघात्मक संविधानों से भिन्न है। यद्यपि हमारा संविधान संघात्मक है, परन्तु वह इस प्रकार बनाया गया है कि संकटकाल में एकात्मक विधान (Unitary Constitution) की तरह काम कर सकता है। इसका कारण यह है कि केन्द्रीय कार्यपालिका को संकट-कालीन अधिकार दिये गये हैं। संकट या आपात काल में राष्ट्रपति अपने हाथ में विशेष अधिकार ले सकता है, जिनसे वास्तव में राज्यों की शासन स्वतन्त्रता स्थगित हो जाती है। इस तरह की धाराएं संसार के अन्य किसी संविधान में नहीं हैं। इस प्रकार भारतीय संविधान का उद्देश्य एक लचीला संघ (Flexible Federation) स्थापित करना है।

संविधान के अन्तर्गत सारे भारत के लिये नागरिकता एक सी रखी गई है। इस दृष्टि से हमारा संविधान संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से भिन्न है। अमेरिका में दोहरी नागरिकता है। एक सारे देश की नागरिकता और दूसरी राज्यों की नागरिकता। अमेरिका के कुछ राज्य कुछ राजनैतिक बातों में जैसे कि मताधिकार और नौकरियों के सम्बन्ध में, अपने नागरिकों को कुछ विशेष सुविधाएं दे सकती हैं। भारत में यह सम्भव नहीं हो सकता, क्योंकि पूरे देश के लिये केवल एक नागरिकता अर्थात् भारतीय नागरिकता रखी गई है।

भारत और अमेरिका के संविधानों में दूसरा महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि अमेरिका में केन्द्रीय कार्यपालिका राष्ट्रपति प्रधान (Presidential type) है, परन्तु भारत में वह संसद-प्रधान (Parliamentary type) है। अमेरिका में केन्द्रीय कार्यपालिका विधानमंडल के प्रति जिम्मेदार नहीं होती और उसके प्रतिकूल मतदान के कारण पदच्युत नहीं की जा सकती। परन्तु भारत में केन्द्रीय कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमंडल संसद के प्रति जिम्मेदार होती हैं और

संसद के प्रतिकूल मतदान के कारण पदच्युत हो सकती है। तीसरा अन्तर यह है कि भारत में केन्द्रीय शासन बहुत मज़बूत है, परन्तु अमेरिका में केन्द्रीय शासन मज़बूत नहीं है।

संविधान में वैधानिक अधिकार (Constituent Powers) केन्द्रीय विधानमंडल अर्थात् संसद को दिये गये हैं। केवल संसद संविधान में संशोधन कर सकती है। परन्तु संघ शासन के सिद्धान्तों का पालन करते हुए संविधान ने शासन अधिकारों का जो विभाजन किया है, उसे परिवर्तित करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को नहीं दिया है। यदि केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार प्राप्त होता तो हमारी शासन पद्धति वास्तव में संघ शासन की न होती, क्योंकि उस हालत में केन्द्रीय सरकार राज्यों के शासन अधिकार छीनकर उन्हें चाहे जब शक्तिहीन बना सकती है। अधिकार विभाजन तथा कुछ अन्य बातों में परिवर्तन करने के लिये संसद को कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों की पूर्व स्वीकृति चाहिये। राज्यों को संविधान में परिवर्तन करने के कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं। इस सम्बन्ध में यह याद रखना उचित होगा कि कनाडा तथा आस्ट्रेलिया में प्रान्त अर्थात् राज्य संघ शासन प्रणाली को ध्यान में रखते हुए अपने संविधानों में आवश्यक परिवर्तन कर सकते हैं। परन्तु भारत के संविधान निर्माताओं का इस सम्बन्ध में सम्भवतः यह विचार था कि इस प्रकार के अधिकार राज्यों को देना ठीक न होगा और साथ ही इससे केन्द्रीय सरकार दृढ़ न रह सकेगी।

भारत और ब्रिटेन के संविधानों में निम्नलिखित तीन प्रधान अन्तर हैं—पहला भारत का संविधान लिखित है, परन्तु इंग्लैंड का संविधान अलिखित है। दूसरा ब्रिटेन का संविधान एकात्मक है, परन्तु भारत का संविधान संघात्मक है। तीसरे ब्रिटेन के संविधान का मूल सिद्धान्त यह है कि पार्लियामेंट का प्रमुख सर्वोपरि है। उसकी सत्ता से परे अन्य कोई नहीं है। पार्लियामेंट के बनाये हुए किसी कानून को इंग्लैंड के न्यायालय अवैधानिक घोषित नहीं कर सकते। परन्तु भारत में संविधान ने न्यायालयों को यह अधिकार दिया है कि वे संसद तथा अन्य विधान-मंडलों के बनाये हुए कानूनों को विधान विरोधी होने के कारण अवैध और अमान्य घोषित कर सकते हैं

संघीय शासन प्रणाली में अधिकार विभाजन के साथ-साथ दो विशेषताएं और होती हैं—एक संविधान की सर्वोच्चता और दूसरी यह कि संघ-सरकार तथा राज्यों में आपस के जो झगड़े या विवाद हों, उन्हें उच्चतम न्यायालय तय करना है। भारत में भी संविधान ही देश का सर्वोच्च या सर्वोपरि कानून होगा। और संघ-सरकार तथा राज्यों के बीच में अधिकारों सम्बन्धी तथा अन्य जो झगड़े होंगे, उन्हें उच्चतम न्यायालय ही तय करेगा।

भारत का संविधान संसार के संविधानों में सबसे बड़ा और विस्तृत है। इसमें ३९८ अनुच्छेद (Articles) और ८ सूचियां हैं। अनुच्छेद ३९३ में लिखा है कि इस संविधान को 'भारत का संविधान' कहा जा सकता है।

सन् १९३५ के शासन कानून के साथ तुलना (Comparison with the Government of India Act, 1935.)—भारत का संविधान काफी अंशों में सन् १९३५ के शासन विधान कानून के आधार पर बनाया गया है। उसके आकार, प्रकार, विषयों के वितरण और उसकी भाषा से स्पष्ट हो जाता है कि संविधान पर सन् १९३५ के शासन कानून की गहरी छाप है। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि सन् १९३५ का विधान पराधीन भारत का विधान था और यह विधान स्वतन्त्र भारत का संविधान है। इसलिये दोनों में मौलिक अन्तर है। सन् १९३५ का विधान एक विदेशी पार्लियामेंट की रचना थी और वह भारतवासियों के ऊपर उनकी इच्छा के विरुद्ध विदेशी शासकों द्वारा लादा गया था, जो भारत पर शक्ति के बल पर राज्य करते थे। सन् १९३५ का विधान विदेशी शासकों द्वारा परतंत्र भारतवासियों को दिया गया सीमित स्वराज्य था, जो उन्हें शासकों ने बड़ी अनिच्छा से दिया था। इसके विपरीत भारत का संविधान एक स्वतन्त्र राष्ट्र द्वारा बनाया हुआ मौलिक कानून है, जिसके आधार पर वह राष्ट्र अपना राज्यतन्त्र चलाना चाहता है।

इस मौलिक सत्य को ध्यान में रखकर संविधान और सन् १९३५ के शासन विधान की तुलना करना अच्छा होगा।

(१) सन् १९३५ के कानून में संघ-शासन की व्यवस्था की गई थी। संविधान में भी भारत के लिये संघ-शासन की व्यवस्था दी गई है। भारतीय

संविधान की तरह सन् १९३५ के शासन विधान में भी केन्द्रीय कार्यपालिका को ऐसे अधिकार दिये गये थे कि संकटकाल में संघ को एकात्मक शासन किया जा सकता था। (सन् १९३५ के विधान में दी हुई संघ व्यवस्था कार्यान्वित नहीं हो सकी।)

(२) सन् १९३५ के शासन कानून के अनुसार देशी रियासतों की जनता को स्वायत्त शासन सम्बन्धी कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। जनता शासकों की निजी सम्पत्ति के समान थी। देशी रियासतों की जनता सारे भारत की जनता की एक चौथाई थी। फिर चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों की जनता को तथा पिछड़ी हुई जातियों की जनता को स्वायत्त शासन सम्बन्धी कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। परन्तु भारत के संविधान में भारत का नक्शा ही बदल गया है। कुछ रियासतों का प्रान्तों में विलयन हो गया है और कुछ प्रान्तों के समान हो गई हैं। अब पूरे भारत में प्रजातन्त्र के एक समान अधिकार प्रचलित हैं। पहिले ५०० से अधिक रियासतें थीं, जिनमें प्रजातन्त्र का नाम नहीं था। अब उनकी जगह केवल १५ रियासतें रह गई हैं और उनमें जनता को प्रजातन्त्र के पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। परन्तु कुछ राज्य संविधान द्वारा भाग ग के अन्तगत केन्द्रीय सरकार के शासन में रख दिये गये हैं। अण्डमान और निकोबार द्वीप तथा आसाम के सीमा के कुछ क्षेत्र भी जिनमें पिछड़ी हुई जातियों के लोग रहते हैं, केन्द्रीय सरकार के शासन के अन्तर्गत रख दिये गये हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में भी एक मौलिक बात ध्यान में रखनी चाहिये। वह यह कि अन्त में इन सब क्षेत्रों का शासन भी जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों की देख-रेख में होगा, विदेशी शासकों द्वारा नहीं। फिर सन् १९५१ में भारत सरकार ने भाग ग के राज्यों के सम्बन्ध में एक कानून पास किया है, जिसके अनुसार उन राज्यों में भी जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की सलाह से शासन होगा।

(३) सन् १९३५ के शासन कानून के अनुसार केन्द्र में एक मंत्रि-परिषद् होती थी, जिसका काम गवर्नर-जनरल को सलाह और सहायता देना था। स्वयं मंत्रि-परिषद् को बहुत कम अधिकार प्राप्त थे। गवर्नर-जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट् द्वारा होती थी और कुछ महत्त्वपूर्ण बातों में उसे स्वेच्छापूर्वक काम करने के अधिकार प्राप्त थे। इन बातों में मंत्रि-परिषद् गवर्नर-जनरल को राय या सलाह

नहीं दे सकती थी। फिर अन्य बहुत सी बातों में गवर्नर-जनरल को विशेष जिम्मेदारी रहती थी। इन बातों में मंत्रि-परिषद् गवर्नर-जनरल को सलाह दे सकती थी, परन्तु उस सलाह को मानना न मानना उसकी इच्छा पर निर्भर था। परन्तु भारत के संविधान में केन्द्रीय मंत्रि-परिषद् को एक जिम्मेदार संस्था बनाया गया है। मंत्रि-परिषद् संसद के प्रति जिम्मेदार है, विशेषकर संसद के दूसरे सदन के प्रति जिसे लोक सभा कहते हैं। राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान रहेगा, परन्तु उसकी स्थिति बहुत कुछ एक वैधानिक प्रधान की रहेगी। वह मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार काम करेगा। केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में वह मंत्रि-परिषद् की सलाह की उपेक्षा कर सकता है। परन्तु ऐसी परिस्थितियां बहुत कम होंगी।

(४) सन् १९३५ के विधान के अन्तर्गत गवर्नर-जनरल की तरह प्रान्तों के गवर्नरों को भी विशेष अधिकार और जिम्मेदारियां प्राप्त थीं। परन्तु संविधान के अन्तर्गत राज्यपाल अर्थात् गवर्नर और राजप्रमुख राज्यों के नाममात्र के प्रधान रहेंगे और उन्हें अपने मंत्रियों की सलाह के अनुसार कार्य करना पड़ेगा। अभी तक यह स्पष्टरूप से मालूम नहीं है कि वे विशेष परिस्थितियों में मंत्रियों की सलाह की उपेक्षा कर सकते हैं या नहीं।

(५) सन् १९३५ के विधान कानून के अनुसार भारत के विधानमंडल सर्व प्रभुत्वपूर्ण संस्थाएं नहीं थीं। गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को यह अधिकार था कि वे चाहें तो विधानमंडल द्वारा पास किये हुए विधेयकों को स्वीकृति दें अथवा न दें। और उनकी स्वीकृति के बिना वे विधेयक कानून नहीं बन सकते थे। अपनी विशेष जिम्मेदारियों और ऐच्छिक विषयों के सम्बन्ध में वे विधानमंडलों की उपेक्षा करके स्वयं कानून बना सकते थे। ब्रिटिश सम्राट् किसी भी प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय कानून को रद्द करता था। सन् १९३५ के कानून में स्पष्टरूप से कहा गया था कि कानून बनाने के सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेंट को ब्रिटिश भारत में पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त था और ब्रिटिश सम्राट् को सारे देश के सम्बन्ध में सब कुछ करने का अधिकार था। भारत के संविधान के अनुसार विधानमंडलों को पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त रहेगा। उन पर किसी बाहरी शक्ति का नियंत्रण नहीं रहेगा।

(६) संविधान में केन्द्र और राज्यों में शासन के अधिकारों और विषयों का जो विभाजन और वितरण किया गया है, वह बहुत कुछ सन् १९३५ के शासन कानून में दी गई व्यवस्था के समान है। दोनों में कानून बनाने के विषयों की तीन सूचियां हैं। अन्तर केवल इतना है कि सन् १९३५ के कानून ने अवशिष्ट अधिकार (Residuary Powers) गवर्नर-जनरल को दिये थे। इन अधिकारों के अनुसार गवर्नर-जनरल उन विषयों के सम्बन्ध में जो वैधानिक सूची में नहीं थे, कानून बनाने के अधिकार संघ अथवा प्रान्तों के विधानमंडलों को अपनी इच्छानुसार दे सकता था। परन्तु संविधान में अवशिष्ट अधिकार केन्द्र को अर्थात् संघ-सरकार को दिये गये हैं।

(७) सन् १९३५ के शासन कानून में परिवर्तन करने का अधिकार संघ अथवा प्रान्तीय किसी भी विधानसंडल को प्राप्त नहीं था। यह अधिकार केवल ब्रिटिश पार्लियामेंट को प्राप्त था। परन्तु अब भारत की संसद् को संविधान में संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है। केवल एक शर्त यह है कि कुछ धाराओं में संशोधन करने के लिये कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति आवश्यक है।

(८) सन् १९३५ के शासन कानून ने बहुत कम लोगों को मतदान का अधिकार दिया था। लेकिन भारत के संविधान में आमतौर से वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) दिया गया है। सन् १९३५ के शासन कानून ने मताधिकार पृथक् निर्वाचन के आधार पर दिया था। अर्थात् मतदान जाति, धर्म, सम्प्रदाय इत्यादि के आधार पर होता था। परन्तु संविधान में पूरे देश के लिये एक सी संयुक्त निर्वाचन प्रणाली रखी गई है। केवल परिगणित जातियों और पिछड़ी हुई परिगणित जातियों के लिये कुछ पद सुरक्षित रखे गये हैं। इसी प्रकार एंग्लो इंडियन जाति के लिये भी कुछ सुरक्षाएं रखी गई हैं। परन्तु ये सुरक्षाएं संविधान लागू होने के केवल १० वर्ष बाद तक ही रहेंगी, फिर समाप्त हो जायँगी।

(९) सन् १९३५ के शासन कानून में मूल अधिकारों की घोषणा नहीं थी। कानून में केवल २९८ और २९९ धाराएं ऐसी थीं, जिन्हें मूल अधिकार कहा जा

सकता था। परन्तु संविधान के भाग २ में नागरिकों तथा अनागरिकों के लिये केवल मूल अधिकारों का ही वर्णन किया गया है।

(१०) संविधान के अन्तर्गत न्यायालयों को सन् १९३५ के शासन विधान की अपेक्षा कहीं अधिक अधिकार प्राप्त हैं।

यहां इन बातों को संक्षिप्त रूप में बतलाया गया है। लेकिन उपयुक्त स्थानों में इनका वर्णन विस्तृत रूप से दिया गया है।

पांचवाँ अध्याय

शासन-शक्ति जनता से प्राप्त होती है

(Power Derived From the People)

संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृत्व के उच्चतम सिद्धान्तों का समावेश निम्नलिखित शब्दों में किया गया है—

"हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये, तथा उसके समस्त नागरिकों को :
सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की स्वतन्त्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त करने के लिये,
तथा उन सबमें
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की
एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता
बढ़ाने के लिये
दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में
आज तारीख २६ नवम्बर १९४९ ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छ विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अङ्गीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

प्रस्तावना की पहिली पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय गणतन्त्र में राजनैतिक शक्ति जनता से प्राप्त होती है। हमारे संविधान की प्रस्तावना बहुत कुछ अमेरिकन विधान की प्रस्तावना के समान है। अमेरिका के संविधान की प्रस्तावना में लिखा है कि "हम संयुक्त राज्य के लोग, एक सम्पूर्ण संघ बनाने के लिये, न्याय स्थापित करने के लिये, देश में शान्ति स्थापित करने के लिये, सबकी सुरक्षा का प्रबन्ध करने के लिये, सबकी कल्याण वृद्धि के लिये, अपनी तथा भावी संतान की स्वतन्त्रता के उपभोग के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका के इस शासन विधान को स्थापित तथा ग्रहण करते हैं।"

"सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोक तन्त्रात्मक गण राज्य" शब्द हमें ध्यान में रखना चाहिये। 'सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न' का अर्थ यह है कि भारत पर किसी बाहरी शक्ति का अधिकार या नियंत्रण नहीं रहेगा। साथ ही भारत एक 'गणराज्य' होगा। अर्थात् भारत में किसी राजवंश का शासन नहीं रहेगा। फिर देश में 'लोकतन्त्रात्मक' शासन होगा। अर्थात् देश का शासन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा चलेगा। दक्षिण अमेरिका के कुछ राज्यों में जिन्हें लोकतन्त्र कहा जाता है वास्तव में निर्वाचित तानाशाहों का शासन होता है। इसलिये उन्हें वास्तविक लोकतन्त्र नहीं कह सकते। परन्तु भारत में वास्तव में लोकतन्त्र होगा। संविधान में वयस्क-मताधिकार दिया गया है।

छठा अध्याय

भारतीय संघ और उसका शासन क्षेत्र

(The Union and its Territory)

भारत कई राज्यों का एक संघ (Union of States) होगा। विभिन्न राज्यों के नाम संविधान की प्रथम सूची के भाग क, ख और ग में दिये गये हैं, जो इस प्रकार है—

संविधान की प्रथम सूची

भाग क (राज्यों के नाम)	भाग ख (राज्यों के नाम)	भाग ग (राज्यों के नाम)	भाग घ (राज्यों के नाम)
१ आसाम	१ हैदराबाद	१ अजमेर	अंडमान और
२ बिहार	२ जम्मू और कश्मीर	२ भोपाल	निकोबार द्वीप
३ बम्बई	३ मध्य भारत	३ बिलासपुर	
४ मध्यप्रदेश	४ मैसूर	४ कूचबिहार (अब	
५ मद्रास	५ पटियाला और	पश्चिम बंगाल में	
६ उड़ीसा	पूर्वी पंजाब राज्य संघ	मिला दिया गया है)	
७ पंजाब	६ राजस्थान	५ कुर्ग	
८ उत्तर-प्रदेश	७ सौराष्ट्र	६ दिल्ली	
९ पश्चिम बंगाल	८ ट्रावनकोर-कोचीन	७ हिमाचल प्रदेश	
	९ विन्ध्य प्रदेश	८ कच्छ	
	(अब चीफ कमि-	९ मनीपुरा	
	श्नर का प्रान्त बना	१० त्रिपुरा	
	दिया गया है)		

भारत के क्षेत्रफल में सब राज्यों के क्षेत्र तथा अंडमान और निकोबार के द्वीप और वे सब क्षेत्र शामिल होंगे जो भविष्य में प्राप्त किये जायँ।

भाग क के राज्यों में वे सब राज्य शामिल हैं, जो पहिले प्रान्त कहलाते थे। भाग ख में पहिले की देशी रियासतों के ६ संघ और ३ रियासतें अर्थात् मैसूर, हैदराबाद, जम्मू और कश्मीर के राज्य शामिल हैं। (विन्ध्य प्रदेश का शासन अब केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है।) राज्यों के ये दो समूह आन्तरिक शासन में स्वतन्त्र होंगे और केन्द्रीय सरकार के साथ उनके सम्बन्ध एक समान होंगे। एक बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि संविधान लागू होने के समय से दस वर्ष तक भाग ख के राज्यों पर संघ सरकार का साधारण नियंत्रण और देख-रेख रहेगी। संसद को यह अधिकार दिया गया है कि नियंत्रण की इस अवधि को वह किसी राज्य विशेष के लिये घटा और बढ़ा सकती है।

भाग ग राज्यों की स्थिति भाग क और ख राज्यों से भिन्न है। भाग ग के राज्यों का शासन-प्रबन्ध केन्द्रीय अर्थात् संघ सरकार द्वारा किया जायगा। (कूचविहार पश्चिम बंगाल में शामिल कर दिया गया है।) भाग घ के क्षेत्रों अर्थात् अंडमान और निकोबार द्वीपों का शासन-प्रबन्ध भी केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जायगा।

संसद को इस प्रकार के कानून बनाने का अधिकार है, जिनके द्वारा नये राज्य बनाये जा सकते हैं अथवा राज्यों को संघ शासन का सदस्य बनाया जा सकता है। इसके लिये संसद अपनी इच्छानुसार शर्तें निश्चित करेगी। संसद को निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध में भी कानून बनाने के अधिकार हैं—(१) वह किसी राज्य के कुछ क्षेत्र को अलग करके एक नया राज्य बना सकती है। अथवा दो या अधिक राज्यों को मिलाकर अथवा उनके कुछ क्षेत्रों को मिलाकर एक नया राज्य बना सकती है। (२) किसी राज्य का क्षेत्रफल बढ़ा सकती है। (३) किसी राज्य का क्षेत्रफल घटा सकती है। (४) किसी राज्य की सीमा में परिवर्तन कर सकती है। (५) किसी राज्य का नाम बदल सकती है। इन परिवर्तनों के सम्बन्ध में संसद जब कोई विधेयक उपस्थित करना चाहे तब उस पर राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक होगी। साथ ही जब प्रस्तावित परिवर्तनों का प्रभाव

भाग क और ख के राज्य या राज्यों पर पड़ता हो, तब उस राज्य या राज्यों के विधानमंडलों का मत उस विधेयक के सम्बन्ध में जानना भी आवश्यक होगा और उस विधेयक के सम्बन्ध में राष्ट्रपति के विचार जानना भी आवश्यक होगा।

सातवाँ अध्याय

नागरिकता

(Citizenship)

संविधान में नागरिकता प्राप्त करने अथवा उसे समाप्त करने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। इसके लिये संसद को उपयुक्त कानून बनाने के अधिकार दिये गये हैं। संविधान में केवल वे शर्तें दी गईं हैं, जिनके अनुसार संविधान प्रारम्भ होने पर लोग भारत के नागरिक समझे जायँगे अथवा समझे जा सकते हैं।

संविधान प्रारम्भ होने पर भारत में निवास करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति भारत का नागरिक समझा जायगा, यदि वह निम्नलिखित शर्तें पूरी करता है—(१) उसका जन्म भारत में हुआ हो ; अथवा (२) उसके माता-पिता में से किसी एक का भी जन्म भारत में हुआ हो ; अथवा (३) संविधान प्रारम्भ होने से पहिले वह कम से कम ५ वर्ष से भारत में रह रहा हो।

इन व्यक्तियों के सिवा दो अन्य प्रकार के व्यक्तियों के लिये भी नागरिकता सम्बन्धी कुछ शर्तें रखी गई हैं। इस वर्ग के व्यक्तियों में एक तो वे व्यक्ति हैं, जो पाकिस्तान से भारत में आये हों। और दूसरे वे भारतीय जो भारत के बाहर रहते हों। पाकिस्तान से आनेवाले लोग दो वर्गों में रख दिये हैं ; यथा—(क) जो भारत में १९ जुलाई सन् १९४८ के पहिले आये, और (ख) जो भारत में

१९ जुलाई सन् १९४८ के बाद आये। जो व्यक्ति पाकिस्तान से भारत में १९ जुलाई सन् १९४८ के पहिले आया हो, वह संविधान प्रारम्भ होने पर भारत का नागरिक समझा जायगा, यदि वह निम्नलिखित शर्तें पूरी करता हो- (१) वह अथवा उसके माता-पिता में से कोई एक अथवा उसके पितामह या पितामही में से कोई एक अविभाजित भारत में पैदा हुए हों। (यहां अविभाजित भारत का अर्थ सन् १९३५ के गूल शासन कानून में दी गई परिभाषा के अनुसार होगा।) (२) भारत में आने के बाद वह साधारणतः इसी देश में रहा हो। जो व्यक्ति १९ जुलाई सन् १९४८ को अथवा उसके बाद भारत में आया हो, वह निम्नलिखिन शर्तें पूरी करने पर संविधान प्रारम्भ होने पर भारत का नागरिक समझा जायगा। (१) वह अथवा उसके माता-पिता में से कोई एक अथवा उसकी मातामही या पितामह में से कोई एक अविभाजित भारत में पैदा हुए हों। (इस सम्बन्ध में भारत का अर्थ सन् १९३५ के मूल शासन कानून की परिभाषा के अनुसार लिया जायगा) (२) संविधान प्रारम्भ होने के पहिले उसने एक निर्धारित फार्म पर भारत सरकार द्वारा नियुक्त एक आफीसर को अपना नाम रजिस्टर करने की एक दरख्वास्त दी हो और उसका नाम रजिस्टर हो चुका हो। इस सम्बन्ध में यह भी निर्धारित कर दिया गया है कि दरख्वास्त देने के समय वह व्यक्ति ६ महीने से भारत में न रहता आया हो तो उसके नाम की रजिस्ट्री न की जायगी। इसका अर्थ यह होता है कि जो व्यक्ति २५ जुलाई सन् १९४९ को अथवा उसके बाद भारत में आया हो, वह संविधान के अन्तर्गत भारत की नागरिकता प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि उसे नागरिकता देने के लिये संसद कोई विशेष कानून न बनाये।

जो लोग १ मार्च सन् १९४७ के पहिले भारत से उस क्षेत्र में चले गये, जो अब पाकिस्तान में शामिल है, वे भारत के नागरिक नहीं समझे जायँगे। परन्तु यह शर्त उन लोगों पर लागू नहीं होगी। जो एक बार जाकर कानूनी आज्ञा लेकर भारत में स्थायीरूप से रहने के लिये वापिस आ गये हैं। ऐसे लोगों के सम्बन्ध में यह समझा जायगा कि ये लोग १९ जुलाई सन् १९४८ के बाद भारत में आये हुए समझे जायँगे।

जो लोग भारत के बाहर रहते हैं, यदि वे निम्नलिखित दो शर्तों का पालन करते हैं, तो वे भारत के नागरिक समझे जायँगे—(१) वे अथवा उनके माता-पिता में से कोई एक अथवा उनके मातामही या पितामह में से कोई एक भारत में पैदा हुए हों। (२) जिस देश में वे रहते हैं, उस देश में स्थित भारत के राजनैतिक प्रतिनिधि के कार्यालय में उन्होंने अपनी रजिस्ट्री करा ली हो। यह रजिस्ट्री संविधान प्रारम्भ होने के बाद एक निर्धारित फार्म पर निर्धारित तरीके से होगी।

यदि किसी व्यक्ति ने स्वेच्छापूर्वक किसी अन्य देश की नागरिकता प्राप्त कर ली हो तो वह भारत का नागरिक नहीं हो सकता।

जिन व्यक्तियों ने ऊपर लिखी शर्तों का पालन करके भारत की नागरिकता प्राप्त कर ली हो तथा भविष्य में संसद नागरिकता के सम्बन्ध में जो नियम बनावे यदि वे उसका पालन करते रहेंगे तो वे भारत के नागरिक बने रहेंगे।

का वर्णन दिया गया है। आयर के संविधान में भी कई मूल अधिकार दिये गये हैं। प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मनी का जो प्रजातान्त्रिक संविधान बना था, उसके पूरे दूसरे भाग में जर्मन नागरिकों के मूल अधिकारों और कर्त्तव्यों का वर्णन दिया गया था। भारत के संविधान में भी मूल अधिकारों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण धाराएं दी गई हैं। ये सब धाराएं संविधान के भाग ३ में दी गई हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि संविधान के भाग ३ में जो अधिकार दिये गये हैं, उनके सिवा भारत के नागरिकों को अन्य अधिकार ही प्राप्त न होंगे। बहुत से अधिकार हैं, जिनकी संविधान में कहीं चर्चा तक नहीं है, परन्तु वे देश में प्रचलित बहुत से कानूनों और नियमों द्वारा प्राप्त होते हैं।

संविधान द्वारा जो मूल अधिकार दिये गये हैं, उनके सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखने योग्य है। वह यह कि कुछ मूल अधिकार तो केवल नागरिकों को प्राप्त हैं और कुछ प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हैं, चाहे वह भारत का नागरिक हो या न हो। उदाहरण के लिये मत प्रदर्शित करने की स्वतन्त्रता, संघ बनाने की स्वतन्त्रता, आवागमन की स्वतन्त्रता इत्यादि अधिकार केवल नागरिकों को प्राप्त हैं। परन्तु जीवन-रक्षा तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार सबको प्राप्त हैं, चाहे वह नागरिक हो या न हो। इसका अर्थ यह है कि वे अधिकार जो सबको प्राप्त हैं, उन अधिकारों से महत्वपूर्ण हैं, जो केवल नागरिकों को प्राप्त हैं।

यदि भारत के संविधान की सन् १९३५ के शासन विधान से तुलना की जाय तो मालूम होगा कि सन् १९३५ के शासन कानून में मूल अधिकारों की घोषणा नहीं की गई थी। केवल २९८ और २९९ धाराओं के अनुसार कुछ मूल अधिकार प्राप्त थे। २९८ धारा का उद्देश्य यह था कि सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में नागरिकों में भेद-भाव न किया जाय। इसी प्रकार ब्रिटिश भारत में जन्म, जाति अथवा धर्म के कारण व्यवसाय करने अथवा सम्पत्ति प्राप्त करने और रखने में भेद-भाव न किया जाय। २९९ धारा में अन्य बातों के सिवा यह भी लिखा हुआ था कि "ब्रिटिश भारत में किसी व्यक्ति की सम्पत्ति का अपहरण कानूनी तरीके को छोड़कर अन्य किसी तरीके से न हो सकेगा।"

इस सम्बन्ध में ब्रिटिश संविधान की एक बात ध्यान में रखने योग्य है। ब्रिटिश संविधान प्रधानतः अलिखित है और उसमें मूल अधिकारों की घोषणा नहीं की गई है। ब्रिटेन में नागरिकों के अधिकारों का निर्धारण केवल इसी आधार पर किया जा सकता है कि प्रचलित कानूनों के अनुसार जो कुछ गैर कानूनी नहीं है, वह कानूनी है। परन्तु ब्रिटेन में पार्लियामेंट कोई भी कानून बदल सकती है। इससे वह कोई भी अधिकार छीन सकती है। और यदि पार्लियामेंट कोई कानून बनाकर नागरिकों के किसी अधिकार को छीन लेती है तो न्यायालय उस कानून को अवैध और अमान्य घोषित नहीं कर सकते। परन्तु भारत के संविधान में न्यायालयों को यह अधिकार दिया गया है कि यदि कोई ऐसा कानून बनाया जाता है, जिससे मूल अधिकारों पर आघात होता है तो न्यायालय उस कानून को अवैध और अमान्य घोषित कर सकते हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि संविधान द्वारा भारत के नागरिकों को जो अधिकार प्राप्त हैं, उनसे ब्रिटेन के नागरिक वंचित हैं। ब्रिटेन में कुछ ऐसी प्रथाएं हैं और वहां ऐसे कानून हैं कि प्रजातन्त्र में जितनी स्वतन्त्रता ब्रिटेन के लोगों को प्राप्त है उतनी शायद संसार के अन्य किसी देश के लोगों को प्राप्त नहीं है। और यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि आज ब्रिटेन की जनता को जितनी स्वतन्त्रता प्राप्त है, उतनी भारत की जनता को संविधान के अन्तर्गत भी प्राप्त नहीं है।

मूल अधिकारों का अध्ययन करते समय यह याद रखना आवश्यक है कि कोई भी अधिकार निरंकुश (absolute) नहीं हो सकता। यदि किसी भी व्यक्ति को किसी भी सम्बन्ध में निरंकुश अधिकार दे दिये जायँ तो उसका अर्थ यह होगा कि उससे अन्य लोगों की स्वतन्त्रता सीमित हो जायगी। किसी भी सभ्य शासन प्रणाली में निरंकुश अधिकार नहीं हो सकते।

संक्षिप्त विवरण (A Brief Summary)—भारत के संविधान में मूल अधिकारों की एक शानदार सूची दी हुई है। इस सूची में वर्णित अधिकारों के अनुसार सब लोग कानून की दृष्टि में एक समान समझे जायँगे और सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में सब नागरिकों को एक-सा मौका दिया जायगा।

अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है और राज्य द्वारा उपाधि वितरण की प्रथा का भी अन्त कर दिया गया है। राज्य की ओर से केवल सैनिक और विद्वत्ता सम्बन्धी उपाधियों का वितरण होगा। संविधान सब नागरिकों को भाषण सम्बन्धी स्वतन्त्रता, शान्तिपूर्वक सभा करने की स्वतन्त्रता, आवागमन तथा निवास सम्बन्धी स्वतन्त्रता, सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने तथा बेचने की स्वतन्त्रता, तथा मनचाहा व्यवसाय या पेशा करने का अधिकार देता है। यह बात अवश्य है कि इन सब अधिकारों पर उचित और आवश्यक उपबन्ध या शर्तें लगा दी गई हैं, जिससे देश में शान्ति और सार्वजनिक नैतिकता का वातावरण बना रहे। संविधान में यह घोषणा की गई है कि किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता और प्राण का हरण केवल कानून द्वारा स्थापित कार्यवाही के अनुसार ही किया जा सकता है। संविधान ने बेगार और दास-प्रथा को एकदम बन्द कर दिया है। १४ वर्ष से कम अवस्थावाले बालक कारखानों, खानों अथवा किसी अन्य खतरनाक काम में नहीं लगाये जा सकते। संविधान नागरिकों को धार्मिक तथा विचार सम्बन्धी स्वतन्त्रता देता है। अल्पसंख्यक जातियों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति की रक्षा करने का अधिकार प्राप्त है। कानूनी कार्यवाही के बिना किसी व्यक्ति की सम्पत्ति का अपहरण नहीं किया जायगा। अन्त में यह कहा गया है कि इन अधिकारों के उपभोग के लिये नागरिक उच्चतम न्यायालय की सहायता और संरक्षण मांग सकते हैं।

क्या मूल अधिकार सीमित अथवा स्थगित किये जा सकते हैं? (Can Fundamental Rights be Restricted or Suspended?)—संविधान में यह कहा गया है कि कुछ परिस्थितियों विशेष में मूल अधिकार सीमित अथवा स्थगित किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये—

(१) संविधान ने संसद को यह अधिकार दिया है कि वह सेना के सम्बन्ध में अथवा जिन शक्तियों और अधिकारियों पर सार्वजनिक शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने की जिम्मेदारी हो उनके सम्बन्ध में मूल अधिकारों को सीमित अथवा स्थगित कर सकती है। संसद को यह अधिकार इसलिये दिया गया है

कि सेना अपने कर्त्तव्य अच्छी तरह पूरी कर सके और साथ ही सेना में अनुशासन भी बना रहे। (अनुच्छेद ३३)

(२) यदि देश के किसी भाग में सार्वजनिक सुरक्षा और शान्ति के हित में फौजी शासन (Martial Law) लागू है, तो संसद को यह अधिकार है कि उस क्षेत्र में किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा किये गये सब अपराधपूर्ण कार्यों को वह माफ कर सकती है। फौज़ी शासन के क्षेत्र में दी गई किसी भी सजा को संसद उचित ठहरा सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि फौजी शासन जिन क्षेत्रों में लागू रहेगा, उनमें मूल अधिकार लगभग स्थगित रहेंगे और फौज़ी शासक तथा सिपाही यह जानकर मनमानी कर सकते हैं कि अन्त में संसद कानून द्वारा उनके वे सब कार्य माफ कर देंगे जिनके द्वारा मूल अधिकारों का अतिक्रमण हुआ। संसद यह कह देगी कि अपने कर्त्तव्य पूरे करने के लिये सैनिकों को मूल अधिकारों का उल्लंघन करना पड़ा। (अनुच्छेद ३४)

(३) जब कभी राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा (अनु० ३५२) करेगा तो अनुच्छेद १९ के अनुसार नागरिकों को प्राप्त मूल अधिकार उस उद्घोषणा के समय में स्थगित रहेंगे। इन अधिकारों में भाषण-स्वतन्त्रता, आवागमन की स्वतन्त्रता, सभा और संघ करने की स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति प्राप्त करने, बेचने तथा रखने के मूल अधिकार शामिल हैं। (नीचे देखो)

(४) जब आपात की उद्घोषणा लागू हो, तब राष्ट्रपति यह आज्ञा जारी कर सकता है कि अमुक मूल अधिकारों की प्राप्ति के लिये कोई व्यक्ति न्यायालय की सहायता नहीं मांग सकता। इस प्रकार के आदेश जितनी जल्दी सम्भव हो उतनी जल्दी संसद में विचार के लिये पेश होने चाहिये और यदि संसद चाहे तो उनमें परिवर्तन कर सकती है अथवा उन्हें रद्द कर सकती है। परन्तु जैसे ही आपात की उद्घोषणा समाप्त हो जायगी, वैसे ही न्यायालयों के जरिये सब मूल अधिकारों का उपभोग प्राप्त किया जा सकता है। (राष्ट्रपति सम्बन्धी अध्याय देखो)।

(५) संविधान अपरिवर्तनशील नहीं है। एक निश्चित कार्य प्रणाली के अनुसार उसमें संशोधन किये जा सकते हैं। इसलिये संविधान में संशोधन

करके सब मूल अधिकारों में परिवर्तन किया जा सकता है। संविधान (प्रथम संशोधन) कानून, १९५१, ने जिसे उच्चतम न्यायालय ने वैध बतलाया है, मूल संविधान में दिये हुए कुछ मूल अधिकारों में परिवर्तन कर दिया है।

ब्रिटेन में पार्लियामेंट का सम्पूर्ण प्रभुत्व संविधान के मूल सिद्धान्तों में से एक है। वहां ससद अर्थात् पार्लियामेंट को किसी भी कानून में परिवर्तन करने अथवा उसे रद्द करने का अधिकार है। इस प्रकार उसे जनता के किसी भी अधिकार को सीमित करने अथवा रद्द करने का अधिकार है। लेकिन ब्रिटेन की कार्यपालिका को जनता के किसी भी अधिकार को रद्द करने या स्थगित करने का अधिकार नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका में संविधान द्वारा दिये गये एक के सिवा अन्य किसी भी मूल अधिकार को स्थगित नहीं किया जा सकता। केवल वन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) के अधिकार को स्थगित किया जा सकता है। वन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश केवल कांग्रेस द्वारा स्थगित किया जा सकता है और वह भी उस स्थिति में जब देश में या तो विद्रोह हो या बाहरी आक्रमण हो। इस प्रकार हम देखते हैं संयुक्त राज्य अमेरिका में न तो कार्यपालिका और न विधानमंडल ही किसी भी परिस्थिति में केवल एक मूल अधिकार को छोड़कर अन्य कोई मूल अधिकार स्थगित करने का अधिकार नहीं रखते। परन्तु भारत में आपात के काल में केन्द्रीय कार्यपालिका बहुत से मूल अधिकार स्थगित कर सकती है। भारत में यदि राष्ट्रपति अनुच्छेद ३५२ के अनुसार आपात की उद्घोषणा करता है तो नागरिकों को अनुच्छेद १९ के अनुसार जो मूल अधिकार प्राप्त हैं, वे अपने आप स्थगित हो जाते हैं। साथ ही वह यह आदेश भी जारी कर सकता है कि इस उद्घोषणा के काल में कोई भी अथवा अमुक मूल अधिकार लागू नहीं होगा। यह कार्य राष्ट्रपति चाहे तो कुछ समय के लिये संसद की उपेक्षा करके भी कर सकता है। (राष्ट्रपति पर अध्याय देखो)

प्रथम महायुद्ध के वाद जर्मनी का जो प्रजातन्त्र संविधान वना था, उसके अनुच्छेद ४८ के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार था कि सार्वजनिक शान्ति और सुरक्षा को कोई बड़ा खतरा उत्पन्न होने पर वह कुछ प्रधान मूल अधिकारों को अंशरूप में या पूर्णरूप में स्थगित कर सकता था। राष्ट्रपति को जर्मन संसद

की निम्नसभा अर्थात् 'रीशटेग' को तुरन्त खबर देनी होती थी कि अनुच्छेद ४८ के अन्तर्गत उसने क्या काम किये। रीशटेग को अधिकार था कि वह चाहती तो उन कार्यों को रद्द कर सकती थी। यदि तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता पड़ती थी, तो राष्ट्रपति तात्कालिक या अस्थायी आदेश जारी कर सकता था और वाद में रीशटेग उन्हें रद्द कर सकती थी। भारत में भी स्थिति लगभग ऐसी ही रहेगी। परन्तु इस सम्बन्ध में भारत को जर्मनी से एक सबक सीखना चाहिये। जर्मन संविधान में जिसे वेमार संविधान भी कहा जाता था, अनुच्छेद ४८ में संकटकाल में नागरिकों के मूल अधिकारों को स्थगित करने के जो अधिकार दिये थे हिटलर ने उन अधिकारों का भरपूर दुरुपयोग किया और अन्त में जर्मनी में प्रजातन्त्र का अन्त कर दिया। (इस अध्याय के अन्त में 'भारत में कानून की सत्ता' नामक शीर्षक देखो)।

विस्तृत विवरण (Detailed Analysis)

संविधान के भाग ३ के निम्नलिखित उपविभाग किये गये हैं। (१) साधारण ; (२) समता-अधिकार ; (३) स्वातन्त्र्य-अधिकार ; (४) शोषण के विरुद्ध अधिकार ; (५) धर्म स्वातन्त्र्य का अधिकार ; (६) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार ; सम्पत्ति का अधिकार ; (८) सांविधानिक उपचारों के अधिकार। इन अधिकारों का अध्ययन हम एक-एक करके विभिन्न अनुच्छेदों के अनुसार करेंगे।

साधारण—अनुच्छेद १२ और १३

अनुच्छेद १२—यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो तो इस भाग में "राज्य" के अन्तर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक की सरकार और विधानमंडल तथा भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर अथवा भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सब स्थानीय और अन्य प्राधिकारी भी हैं।

यहां पर "भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन" शब्द अनावश्यक मालूम होते हैं, परन्तु वास्तव में वे हैं नहीं। संविधान निर्माण-समिति (Drafting Committee) ने स्पष्ट कर दिया था कि ये शब्द उन क्षेत्रों के लिये हैं, जो भारत की सीमा में न हों, परन्तु जिन पर भारत सरकार का नियंत्रण हो। मान

लो संयुक्त राष्ट्र-संघ (U. N.) किसी क्षेत्र को भारत की देख-रेख (Trusteeship) में रख देता है, तब यह प्रश्न उठ सकता है कि संविधान में जो अधिकार भारत के नागरिकों को दिये गये हैं, वे उस क्षेत्र को भी मिलने चाहिये या नहीं। इसलिये अनुच्छेद १२ में "भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन" शब्दों का अर्थ यही है कि संविधान द्वारा प्राप्त मूल अधिकार ऐसे लोगों को भी प्राप्त हो सकें।

अनुच्छेद १३ (१)—इस संविधान के प्रारम्भ होने से ठीक पहिले भारत राज्य क्षेत्र में सब प्रवृत्त विधियां उस मात्रा तक शून्य होंगी जिस तक कि वे इस भाग के उपबन्धों से असंगत हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि सब प्रचलित कानून उस हद तक अमान्य होंगे, जिस हद तक वे इस भाग की धाराओं का विरोध करते हैं।

(२) राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनायेगा, जो इस भाग द्वारा दिये अधिकारों को छीनती या न्यून करती हो और इस खंड के उल्लंघन में बनी प्रत्येक विधि उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगी।

(३) यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो तो इस अनुच्छेद में—

(क) भारत राज्य-क्षेत्र में विधि के समान प्रभावी कोई अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनिमय, अधिसूचना, रूढ़ि अथवा प्रथा "विधि" के अन्तर्गत होगी ;

(ख) भारत राज्य-क्षेत्र में किसी विधानमंडल या अन्य क्षमताशाली प्राधिकारी द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व पारित अथवा निर्मित विधि, जो पहिले ही निरासित न हो गई हो, चाहे ऐसी कोई विधि या उसका कोई भाग उस समय पूर्णतया या विशेष क्षेत्रों में प्रवर्तन में न भी हो, "प्रवृत्त विधियों" के अन्तर्गत होगी।

स्पष्ट है कि इस अनुच्छेद में न्यायालयों को यह अधिकार दिया गया है कि संविधान प्रचलित होने के पहिले या बाद में यदि कोई ऐसा कानून बनाया गया है जो इस भाग में दिये गये मूल अधिकारों का किसी भी प्रकार विरोध या

अतिक्रमण करता है, तो न्यायालय उसे अवैध और अमान्य घोषित कर सकते हैं। इतने थोड़े समय में ही स्वतन्त्र भारत के न्यायालयों ने संविधान में दिये गये अधिकारों की रक्षा करने के श्रेष्ठ और दृढ़ उदाहरण दे दिये हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे, उन्होंने कई कानूनों को इस आधार पर अवैध और अमान्य घोषित किया है कि वे संविधान द्वारा दिये गये मूल अधिकारों का विरोध और उल्लंघन करते हैं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण यह है कि उच्चतम न्यायालय ने सन १९५० के निवारक कैद कानून (Preventive Detention Act of 1950) की धारा १४ को इस आधार पर अवैध और अमान्य ठहराया कि वह संविधान के अनुच्छेद २२ (५) और अनुच्छेद ३२ द्वारा नागरिकों को दिये गये मूल अधिकारों का अतिक्रमण करती थी। (आगे देखो)

समता-अधिकार—अनुच्छेद १४, १५, १६, १७ और १८

अनुच्छेद १४—भारत-राज्य-क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा।

इसे स्पष्टरूप से समझ लेना चाहिये कि इस अनुच्छेद से न केवल नागरिकों को बल्कि सब व्यक्तियों को कानून की दृष्टि से एक समान स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकार कोई भी कानून नागरिकों के विभिन्न समूहों में अथवा नागरिकों और विदेशियों के बीच में अनुचित रूप से पक्षपात नहीं कर सकता।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि नागरिकों के बीच में उचित पक्षपात या भेद-भाव नहीं किया जायगा। उदाहरण के लिये यदि कर लगाने के सम्बन्ध में कानून धनियों और गरीबों के बीच में भेद-भाव करता है, तो उसका अर्थ यह नहीं है कि वह इस अनुच्छेद का उल्लंघन करता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि यदि कर नीति और अन्य ऐसी बातों के सम्बन्ध में कानून नागरिकों का विभिन्न समूहों में वर्गीकरण करता है, तो उससे समता-सिद्धान्त का अतिक्रमण नहीं होता।

अनुच्छेद १५—(१) राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

(२) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक—

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश के ; अथवा

(ख) पूर्ण या आंशिक रूप में राज्य-निधि से पोषित अथवा साधारण जनता के उपयोग के लिये समर्पित कुओं, तालावों, स्नानघाटों, सड़कों तथा सार्वजनिक समागम स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्वन्ध अथवा शर्त के अधीन न होगा।

(३) इस अनुच्छेद की किसी वात से राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिये कोई विशेष उपवन्ध (provision) वनाने में वाधा न होगी।

(४) इस अनुच्छेद के किसी वात से अथवा अनुच्छेद २९ की धारा २ से राज्य को सामाजिक और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए सामाजिक वर्गों अथवा परिगणित जातियों और अनुसूचित परिगणित जातियों (Scheduled Tribes) की उन्नति के लिये कोई विशेष उपवन्ध वनाने में किसी प्रकार की वाधा न पहुंचेगी।

इस अनुच्छेद पर महात्मा गांधी के विचारों की छाप साफ दिखाई देती है। इसके अनुसार स्त्रियों, बच्चों, नागरिकों के पिछड़े हुए वर्गों, परिगणित जातियों और अनुसूचित परिगणित जातियों को छोड़कर अन्य लोगों के लिये पक्षपात या भेद-भावपूर्ण कानून या उपवन्ध नहीं वनाये जा सकते। सव नागरिकों को चाहे वे किसी भी जाति, धर्म, योनि या स्थान के हों, दुकानों, भोजनालयों, होटलों तथा आमोद-प्रमोद के स्थानों में जाने का समान अधिकार है, चाहे वे सार्वजनिक हों अथवा किसी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति। यदि किसी होटल का मैनेजर किसी नागरिक को इसलिये होटल में नहीं घुसने देता कि वह काला है अथवा गोरा, अर्थात् वह किसी ऐसी जाति का है, जिसे वह नहीं चाहता तो वह मैनेजर अनुच्छेद १५ के अनुसार अपराधी होगा। इसी प्रकार जो तालाव, घाट, सड़कें और सार्वजनिक स्थान पूर्णरूप से या अंशरूप से सरकारी सहायता पाते हैं अथवा

जाति, धर्म, योनि या जन्मस्थान का विचार न करके सार्वजनिक उपयोग के लिये हैं उनके उपयोग और उपभोग का अधिकार सब नागरिकों को समान रूप से प्राप्त है। "सार्वजनिक उपयोग के स्थानों" (Places of Public Resort) से शायद श्मशान भूमि और कबरिस्तानों की ओर संकेत किया गया है। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में दो बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। यदि कोई तालाब या नहाने का घाट या सड़क किसी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति है, तो इस अनुच्छेद के अनुसार किसी नागरिक को उसके उपयोग का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता। फिर भेद-भाव या पक्षपात केवल वंशमूल, जाति, धर्म, लिंग और जन्मस्थान के आधार पर वर्जित है। इन बातों के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर पक्षपात नहीं किया जा सकता। यदि सरकारी सहायता प्राप्त किसी तालाब का उपयोग कानून द्वारा कोढ़ के रोगियों के लिये मना कर दिया जाता है, तो उससे अनुच्छेद १५ की धारा १ का अतिक्रमण नहीं होता।

इस अनुच्छेद की धारा ४ मूल संविधान में नहीं थी। संविधान (प्रथम संशोधन) कानून, १९५१, के द्वारा वह संविधान में शामिल की गई है। मद्रास सरकार ने एक आदेश (Order) जारी किया था, जिसका उद्देश्य विद्यालयों में विद्यार्थियों की भरती जाति के आधार पर करना था। मद्रास उच्च न्यायालय ने इस आदेश को इस आधार पर अवैध घोषित किया कि जिन विद्यालयों को सरकारी सहायता प्राप्त है अथवा जो विद्यालय सरकारी हैं, उनमें मूलवंश, जाति अथवा धर्म के आधार पर भरती या प्रवेश नहीं हो सकते। इस घटना से संविधान में एक त्रुटि मालूम हुई। वह यह थी कि कुछ विशेष बातों को छोड़कर जिनकी चर्चा संविधान में कर दी गई है, सरकार शिक्षा तथा सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी हुई जातियों के लिये विशिष्ट उपबन्ध (Provisions) नहीं बना सकती थी। इस त्रुटि को मिटाने के लिये इस अनुच्छेद में धारा ४ जोड़नी पड़ी।

अनुच्छेद १६—(१) राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिये अवसर की समता होगी।

(२) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिये राज्याधीन किसी नौकरी या पद के

विषय में न अपात्रता (Disqualification) होगी और न विभेद किया जायगा।

(३) इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद को कोई ऐसी विधि बनाने में बाधा न होगी जो प्रथम सूची में उल्लिखित किसी राज्य के अथवा उसके राज्य-क्षेत्र में किसी स्थानीय या अन्य किसी प्राधिकारी के अधीन किसी प्रकार की नौकरी में या पद पर नियुक्ति के विषय में वैसी नौकरी या नियुक्ति के पूर्व उस राज्य के अन्दर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती हो।

(४) इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में जिन का प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिये उपबन्ध करने में कोई बाधा न होगी।

(५) इस अनुच्छेद की किसी बात का किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर कोई ऐसा प्रभाव न होगा, जो उपबन्ध करती हो कि किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के कार्य से सम्बन्ध कोई पदधारी अथवा उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का अनुयायी अथवा किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का ही हो।

यह अनुच्छेद सब नागरिकों को सरकारी नौकरी प्राप्त करने का एक समान अधिकार देता है। सरकारी नौकरी के सम्बन्ध में मूलवंश (Race) धर्म, जाति, योनि, जन्मस्थान और निवासस्थान के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर ही भेद-भाव नहीं किया जा सकता। लेकिन इस नियम के सम्बन्ध में धारा ३,४ और ५ द्वारा तीन अपवाद बना दिये गये हैं। इन तीनों धाराओं का हम एक-एक करके अध्ययन करेंगे।

धारा अर्थात् खंड (३) में कहा गया है कि संसद को यह अधिकार होगा कि वह किसी राज्य में कुछ विशिष्ट नौकरियों के सम्बन्ध में निवास सम्बन्धी कुछ नियम या शर्तें बना सकेगी। संविधान बनानेवालों ने इस बात को महसूस किया होगा कि कुछ विशिष्ट नौकरियों के लिये ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होगी जो उस राज्य के लोगों और परिस्थितियों तथा समस्याओं की विशेषरूप से जानकारी रखें। इससे उस राज्य का शासन अच्छी तरह से चलेगा। साथ ही संविधान

निर्माताओं ने इस बात को भी समझा होगा कि आजकल प्रान्तीयता की संकुचित भावना व्यापक रूप से फैली हुई है। इसलिये राज्य की कुछ विशेष नौकरियों के सम्बन्ध में निवास सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार राज्य के विधानमंडल को देने में खतरा हो सकता है। राज्य के विधानमंडल इस अधिकार का दुरुपयोग कर सकते हैं। वे ऐसे नियम बना सकते हैं, जिनसे अन्य राज्यों के नागरिक उस राज्य में सरकारी नौकरी न पा सकेंगे। इसीलिये आगे चलकर अनुच्छेद ३५ में कहा गया है कि "इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी संसद को शक्ति हो तथा किसी राज्य के विधानमंडल को शक्ति न होगी कि वह, जिन विषयों के लिये अनुच्छेद १६ के खंड (३)......के अधीन संसद विधि द्वारा उपबन्ध कर सकेगी।"

अनुच्छेद के खंड (४) में यह कोशिश की गई है कि समता सम्बन्धी जो उपबन्ध बनाये गये हैं, उनके रहते हुए भी यदि सरकार पिछड़े हुए वर्गों के लिये नौकरियां सुरक्षित रखने के लिये कुछ नियम बनाना चाहे तो उसमें कोई बाधा न पड़े। अनुच्छेद ३२० में कहा गया है कि खंड (४) के अन्तर्गत यदि सरकार कोई नियम बनाना चाहे तो उसके लिये लोक-सेवायोग (Public Service Commission) से सलाह लेनी आवश्यक न होगी कि वे नियम कैसे बनाये जायँगे। अनुच्छेद ३२० में कहा गया है कि यदि सरकार इस खंड के अन्तर्गत कोई नियम बनाना चाहे तो उसे किसी लोक-सेवायोग की सलाह लेनी आवश्यक नहीं होगी। वैसे अनुच्छेद ३२० में कहा गया है कि गैर-सैनिक नौकरियों में भरती, पदोन्नति, तबादला, नियंत्रण इत्यादि के सम्बन्ध में सरकार को साधारणतः संघ या राज्य के लोक सेवायोग की सलाह से काम करना आवश्यक है। परन्तु यह बात भी स्पष्ट है, कि पिछड़े हुए वर्गों के लिये सुरक्षित स्थानों में ऐसी नियुक्तियां नहीं की जायँगी, जिनसे शासन की कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद १६ के इस खंड की तुलना अनुच्छेद ३३५ से करना असंगत न होगा। अनुच्छेद ३३५ में कहा गया है कि "संघ तथा राज्यों के शासन में सरकारी पदों की नियुक्तियों में परिगणित जातियों और अनुसूचित परिगणित जातियों को उचित भाग मिलेगा। परन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखा

जायगा कि शासन की कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।" (अनुसूचित और परिगणित जातियों के लिये नियुक्तियों के सम्बन्ध में अध्याय २४ देखो।)

खंड (५) के सम्बन्ध में केवल यह कहना आवश्यक है कि इस अनुच्छेद में दिये गये समता-अधिकार में यह अपवाद केवल इसलिये रखा गया है कि संविधान में धर्म साधना की स्वतन्त्रता भी दी गई है। यदि किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष के लोग कानून के आधार पर उस धर्म या सम्प्रदाय से सम्बन्धित किसी संस्था में नौकरी मांगने लगें तो फिर धर्म साधना सम्बन्धी स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं रह सकता।

अनुच्छेद १७—"अस्पृश्यता" का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। "अस्पृश्यता" से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा, जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

इस अनुच्छेद से महात्मा गांधी का बहुत पुराना, बहुत बड़ा और बहुत पवित्र स्वप्न बहुत अच्छी तरह से पूरा होता है। परन्तु कानून तो केवल बाह्य कार्यों पर नियंत्रण कर सकता है। परन्तु 'अस्पृश्यता' तो एक मनोवृत्ति है, एक भावना की उपज है। केवल कानून बनाकर उसे खतम करना मुश्किल है।

इस अनुच्छेद के अन्तर्गत जो अपराध होगा, उसे दंडित करने का अधिकार अनुच्छेद ३५ के द्वारा केवल संसद को दिया गया है।

अनुच्छेद १८—(१) सेना अथवा विद्या सम्बन्धी उपाधि के सिवा और कोई खिताब राज्य प्रदान नहीं करेगा।

(२) भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई खिताब स्वीकार नहीं करेगा।

(३) कोई व्यक्ति जो भारत का नागरिक नहीं है, राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए किसी विदेशी राज्य से कोई खिताब राष्ट्रपति की सम्मति के बिना स्वीकार न करेगा।

(४) राज्य के अधीन लाभ-पद या विश्वास-पद पर आसीन कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से या अधीन किसी रूप में कोई भेंट, उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सम्मति के बिना स्वीकार न करेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सेना और विद्या सम्बन्धी उपाधियों को छोड़कर राज्य द्वारा उपाधि देना बन्द कर दिया गया है। फिर देश का कोई भी नागरिक किसी भी परिस्थिति में विदेशी सरकार से उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता। और यदि कोई विदेशी नागरिक भारत सरकार की नौकरी करता हो तो वह केवल राष्ट्रपति की सम्मति से उपाधि स्वीकार कर सकता है। और कोई भी व्यक्ति चाहे वह भारत का नागरिक हो या नहीं सरकार की नौकरी करते हुए बिना राष्ट्रपति की सम्मति के किसी विदेशी सरकार से किसी प्रकार का वेतन, धन या नौकरी स्वीकार नहीं कर सकता। संविधान के इस अनुच्छेद की तुलना अमेरिका के विधान के प्रथम अनुच्छेद खंड ९ के उप-खंड ८ के साथ करना उपयुक्त होगा। उसमें लिखा है—"संयुक्तराज्य की सरकार सामाजिक उच्चता सम्बन्धी कोई उपाधि न देगी। और कोई भी व्यक्ति जो सरकार के अधीन लाभ या विश्वास के पद पर रहेगा, कांग्रेस अर्थात् संसद के सम्मत्ति के विना किसी विदेशी राज्य, राजा अथवा सामन्त से कोई उपाधि, उपहार, धन या पद स्वीकार नहीं करेगा।"

इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखनी आवश्यक है। २६ जनवरी सन १९५० को राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया था, जिसमें कहा गया था कि संसद जो कानून बनावे उसके आदेशों को पालन करते हुए इस संविधान के सम्बन्ध में ब्रिटिश राष्ट्रसंघ (Commonwealth) का कोई भी देश विदेश नहीं समझा जायगा।" इस आदेश का एक परिणाम यह होगा कि भारतीय नागरिक ब्रिटिश राष्ट्रसंघ के अन्य किसी भी देश की उपाधि स्वीकार कर सकते हैं। इससे इस अनुच्छेद के खंड (२) का उल्लंघन न होगा।

स्वातन्त्र्य-अधिकार अनुच्छेद—१९, २०, २१ और २२

अनुच्छेद १९—(१) सब नागरिकों को—

(क) वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य का ;

(ख) शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का ;

(ग) संस्था या संघ बनाने का ;

(घ) भारत राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का ;

(ङ) भारत राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का ;

(च) सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्यय का ; तथा

(छ) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का, अधिकार होगा।

(२) खंड (१) के उपखंड (क) की कोई बात किसी वर्तमान कानून पर कोई प्रभाव नहीं डालेगी अथवा राज्य द्वारा किसी ऐसे कानून के बनाने में बाधा नहीं डालेगी जो कि इस उपखंड के द्वारा प्राप्त अधिकार पर उचित उपबन्ध लगाता हो और जो उपबन्ध राज्य की सुरक्षा के, विदेशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध के, सार्वजनिक शान्ति, व्यवस्था और नैतिकता के हित में हो अथवा न्यायालयों की मानहानि या बदनामी से सम्बन्ध रखता हो अथवा अपराध को प्रोत्साहन देने से सम्बन्ध रखता हो।

(३) उक्त खंड के उपखंड (ख) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिये गये अधिकार के प्रयोग पर सार्वजनिक व्यवस्था के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धन जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो, वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगानेवाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी।

(४) उक्त खंड के उपखंड (ग) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा किये गये अधिकार के प्रयोग पर सार्वजनिक व्यवस्था या सदाचार के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धन जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो, वहां तक उसके प्रवर्तन हों, प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगानेवाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी।

(५) उक्त खंड के उपखंड (घ), (ङ) और (च) की कोई बात उक्त उपखंडों द्वारा किये गये अधिकारों के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों के अथवा किसी अनुसूचित आदिम जाति के हितों के संरक्षण के लिये युक्तियुक्त निर्बन्धन जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो, वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगानेवाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी।

(६) उक्त खंड के उपखंड (छ) की कोई बात उक्त खंड द्वारा दिये गये अधिकार के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्ध जहां तक कोई वर्तमान विधि लगती हो, वहां तक उसके प्रवर्त्तन पर प्रभाव अथवा निर्बन्धन लगानेवाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी, तथा विशेषतः उक्त उपखंड की कोई बात किसी वर्तमान विधि पर अथवा राज्य पर निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध में विधि बनाने में रुकावट न डालेगी।

(१) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने के लिये वृत्तिक या शिल्पिक योग्यता ; अथवा,

(२) राज्य द्वारा अथवा राज्य द्वारा नियंत्रित किसी संघ या संस्था द्वारा कोई व्यवसाय, व्यापार या उद्योग चलाने में ; चाहे उसमें नागरिकों का भाग बिलकुल न रखा जाय ; या केवल अंशरूप में रखा जाय।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि खंड (१) में जो अधिकार दिये गये हैं, उनमें खंड (२), (३), (४), (५) और (६) में दी गई बातें अपवाद हैं। अर्थात् ये बातें उन अधिकारों को सीमित कर देती हैं।

अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य (Freedom of Expression)—प्रजातन्त्र में वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य बड़ी आवश्यक और महत्त्वपूर्ण बात होती है, इस स्वातन्त्र्य के बिना प्रजातन्त्र का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। जब तक लोगों को स्वतन्त्रतापूर्वक अपना मत प्रदर्शित करने की तथा उसके द्वारा दूसरों के मतों पर प्रभाव डालने की स्वतन्त्रता न रहेगी, तब तक वे अपनी इच्छानुसार शासन प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिये यह जानना बहुत आवश्यक है कि संविधान में इस महत्त्वपूर्ण स्वतन्त्रता पर जो सीमाएं या शर्तें बांध दी गई हैं, वे कहां तक उचित हैं।

हम देखते हैं कि अनुच्छेद के खंड (क) में वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य का जो अधिकार दिया गया है, वह खंड (२) में दी गई शर्तों द्वारा सीमित है। इस समय खंड (२) का जो रूप है, वह मूल विधान में दिये गये रूप से बिलकुल भिन्न है। विधान (प्रथम संशोधन) कानून, १९५१ के द्वारा खंड (२) का संशोधन हुआ। संशोधन के पहिले खंड (२) का मूल विधान में रूप

इस प्रकार था—"खंड (१) के उपखंड (क) की कोई बात अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, न्यायालय-अपमान से अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करनेवाले अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाले किसी विषय से ; जहां तक कोई वर्तमान विधि सम्बन्ध रखती हो, वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा सम्बन्ध रखनेवाली किसी विधि को बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी।" इस खंड की टीका उच्चतम न्यायालय द्वारा रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य नामक मुकदमे में की गई थी। उच्चतम न्यायालय के इस अर्थ के अनुसार (अपमान-लेख, मानहानि इत्यादि को छोड़कर) राज्य वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य को सीमाबद्ध केवल तभी कर सकता है, जब इस स्वातन्त्र्य के दुरुपयोग द्वारा राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़ जाय अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति ज्ञात हो। इसलिये इस अर्थ या टीका के अनुसार यह कहा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति अपने वाक्-स्वातन्त्र्य का उपयोग इस प्रकार करता है कि उससे सार्वजनिक शान्ति खतरे में पड़ती है अथवा सरकार या राज्य की बदनामी होती है, तो भी उसे सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। इस स्वातन्त्र्य के दुरुपयोग द्वारा जब राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़े अथवा उसे उलटने की प्रवृत्ति दिखाई पड़े, तभी उसे सीमाबद्ध किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय की खंड (२) की इस टीका से यह अनुभव किया गया कि यदि वाक्-स्वातन्त्र्य का उपयोग अपराध और हत्या को उत्साहित करने के लिये किया जाय तो भी राज्य उसे सीमाबद्ध न कर सकेगा। इसलिये सरकार ने यह महसूस किया कि खंड (२) में संशोधन होना चाहिये, जिससे कि वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य को सीमित करने का क्षेत्र विस्तृत हो सके। इसलिये खंड (२) का संशोधन संविधान (प्रथम संशोधन) कानून, १९५१ द्वारा किया गया।

अब खंड (२) का जो वर्तमान रूप है, उसे बहुत से अपराधों के कारण सीमित किया जा सकता है। मूल खंड (२) के अनुसार राज्य वाक्-स्वातन्त्र्य को (अपमान-लेख, मानहानि इत्यादि को छोड़कर) तभी सीमित कर सकता था, जब उसके द्वारा राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़े अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति दिखाई पड़े। परन्तु अब खंड (२) का जो रूप है, उसके अनुसार राज्य वाक्-

स्वातन्त्र्य के अधिकार को "राज्य की सुरक्षा के हित में, विदेशी राज्यों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखने के हित में, सार्वजनिक सुरक्षा के हित में और अपराध को उत्साहित करने के हित में" सीमित कर सकता है। "हित में"—इन शब्दों का अर्थ बहुत विस्तृत है और इनमें यह महत्त्वपूर्ण स्वातन्त्र्य बहुत सीमित हो जाता है।

इस सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि व्यावहारिक रूप में इस खंड की सहायता से सरकार सब प्रकार के भाषणों और लेखों पर रोक लगा सकती है, जिनमें सरकार की नीति की आलोचना हो। क्योंकि ऐसे सभी भाषणों और लेखों से सार्वजनिक सुरक्षा किसी न किसी रूप में थोड़ी बहुत खतरे में पड़ती है और लोगों को कानून की अवहेलना करने का प्रोत्साहन मिलता है। परन्तु वास्तव में इस खंड से सरकार को इतनी अधिक शक्ति नहीं मिलती है, क्योंकि "सीमित" शब्द के साथ "उचित" शब्द भी तो लगा है। वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के अधिकार पर सरकार जो रोक या शर्तें लगावे वे उचित होनी चाहिये और किसी घटना विशेष में अन्तिम निर्णय न्यायालय का ही होगा कि क्या उचित है और क्या नहीं। यदि अधिकृत न्यायालय की राय में कोई कानून अथवा सरकारी आज्ञा नागरिकों के वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के अधिकार पर अनुचित रोक या शर्तें लगाता है, तो उस न्यायालय को यह अधिकार होगा कि वह उस कानून को अमान्य घोषित कर दे अथवा उस आज्ञा को रद्द कर दे। यह बड़ा भारी संरक्षण है। लेकिन साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि न्यायालय केवल कानून की टिप्पणी कर सकते हैं, उसका अर्थ लगा सकते हैं, किन्तु कानून को न्यायालय बदल नहीं सकते। वे केवल यह बतला सकते हैं कि कानून के अन्तर्गत व्यक्ति की स्वतन्त्रता कहां समाप्त होती है और राज्य की शक्ति कहां से आरम्भ होती है। न्यायालय राज्य से यह नहीं कह सकते कि कानून के द्वारा वह अपना अधिकार-क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं कर सकता। उदाहरण के लिये राज्य यदि विदेशों से मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखने के लिये वाक्-स्वातन्त्र्य पर कुछ शर्तें या रोक लगाता है, तो न्यायालय यह कह सकते हैं कि यह रोक उचित नहीं है। परन्तु वे इस कारण से राज्य के इस मूल अधिकार

को अनुचित नहीं कह सकते। और हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि खंड (२) के वर्तमान रूप द्वारा वाक्-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में राज्य का अधिकार-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है।

खंड (२) के संशोधित रूप को मूल रूप भी दे दिया गया है। संविधान (प्रथम संशोधन) कानून, १९५१, में यह कहा गया है कि "खंड (२) के सम्बन्ध में यह समझा जाना चाहिये कि इसका मूल रूप यही था।" अर्थात् जब संविधान बना तो इस खंड का रूप यही था। कानून में यह भी कहा गया है कि संविधान आरम्भ होने के पहिले भारत में जो कानून प्रचलित थे और जो खंड (२) के वर्तमान रूप के विरुद्ध नहीं है, वे केवल इस कारण अमान्य नहीं होंगे कि उक्त अनुच्छेद (अनुच्छेद १९) के खंड (१) के उपखंड (क) में जो अधिकार मिलता है, वह खंड (२) के मूल रूप द्वारा सुरक्षित नहीं था।" इन शर्तों से वे सब कानून वैध हो जाते हैं, जो संविधान प्रारम्भ होने के पहिले से या बाद में प्रचलित हुए, पर जो खंड (२) के मूल रूप के प्रतिकूल थे। इससे वे सब कानून भी वैध हो जाते हैं, जो संविधान प्रारम्भ होने के पहिले लागू थे, पर जिन्हें न्यायालय ने इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया था कि वे खंड (२) के मूल रूप के प्रतिकूल थे।

शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का संस्था या संघ बनाने का अधिकार (Freedom of Assembly and Freedom to Form Association)—शान्तिपूर्वक बिना हथियारों के सम्मेलन सभा इत्यादि करने का अधिकार तथा संघ बनाने का अधिकार अनुच्छेद १९ खंड (१) के उपखंड (ख) और (ग) द्वारा प्राप्त है। यह ध्यान रखना चाहिये कि इन उपखंडों द्वारा 'सार्वजनिक शान्ति और सुरक्षा' के हित में ये अधिकार सीमित कर दिये गये हैं, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, रमेश थापड़ बनाम मद्रास राज्य नामक मुकदमे में उच्चतम न्यायालय ने संविधान में दी गई सीमाओं और शर्तों का जो अर्थ लगाया, उसके अनुसार इन अधिकारों के सम्बन्ध में वह अर्थ जितना विस्तृत है, उतना अधिक वाक्-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में नहीं है। तात्पर्य यह है कि सम्मेलन और संघ के सम्बन्ध में अधिकार को सीमित करने का

क्षेत्र अधिक विस्तृत है। उतना अधिक वाक्-स्वातन्त्र्य अधिकार के सम्बन्ध में नहीं है। वाक्-स्वातन्त्र्य के अधिकार हमें इसी अनुच्छेद के खंड (१) के उपखंड (क) के द्वारा प्राप्त हैं।

परन्तु खंड (३) और (४) में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ये सीमाएं और शर्तें उचित होनी चाहिये। इस बात का अन्तिम निर्णय न्यायालय ही करेंगे कि कौन-सी सीमाएं या रोक उचित हैं और कौन-सी नहीं। इसलिये यह कहा जा सकता है कि उपखंड (ख) और (ग) द्वारा सम्मेलन करने और संघ बनाने के जो अधिकार प्राप्त हैं, उनके लिये 'उचित प्रतिबन्ध' (Reasonable Restrictions) शब्द बड़ा अच्छा संरक्षण है। इन अधिकारों को सीमित करने में सरकार जब कभी आवश्यकता से अधिक उत्साह दिखावेगी तो न्यायालय सरकार के उस अनुचित उत्साह को रोक देंगे।

अबाध संचरण का स्वातन्त्र्य (Freedom of Movement)—खंड (१) के उपखंड (घ) द्वारा सारे भारत की सीमा के अन्दर बिना किसी रोक-टोक के आने-जाने की स्वतन्त्रता प्राप्त है, इस अधिकार पर भी खंड (५) में दी गई सीमाएं लागू होती हैं। ध्यान रहे कि इस अधिकार के सम्बन्ध में भी संविधान केवल 'उचित प्रतिबन्ध' की आज्ञा देता है। यदि इस अधिकार पर कोई ऐसा प्रतिबन्ध लगाया जाय जो कि न्यायालय की राय में 'अनुचित' हो अर्थात् तर्कपूर्ण न हो, तो उनको यह अधिकार होगा कि वे उसे अवैध घोषित कर दें। सितम्बर, सन् १९५० में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पश्चिम बंगाल सुरक्षा कानून की धारा ३८ को इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया कि उससे अबाध संचरण के अधिकार पर अनुचित प्रतिबन्ध लगता था। पश्चिम दिनाजपुर जिले के जिलाधीश ने खगेन्द्रनाथ दे नामक व्यक्ति को निष्काशन की आज्ञा दे दी थी। खगेन्द्रनाथ ने इस आज्ञा के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की और न्यायालय ने अपने फैसले में उक्त घोषणा की थी। सुरक्षा कानून की इस धारा के अनुसार सरकार अपने मातहत अफसरों को यह अधिकार दे सकती थी कि वे नागरिकों के अबाध संचरण पर रोक या प्रतिबन्ध लगा सकते थे। न्यायालय की राय यह थी कि इस धारा के बल पर सब-इन्सपेक्टर तथा हवलदार भी नागरिकों को ऐसी

आज्ञा दे सकते थे, जिसके कारण उनके अबाध संचरण की स्वतन्त्रता पर रोक लग सकती थी। न्यायालय की राय में यह नागरिकों के अबाध संचरण की स्वतन्त्रता पर अनुचित प्रतिबन्ध था। न्यायालय का मत था कि सब-इन्सपेक्टर तथा हवलदार के वर्ग के अफसर इस प्रकार की आज्ञा देने के योग्य नहीं थे। इसलिये उच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया कि सुरक्षा कानून की धारा ३८ संविधान विरोधी थी, क्योंकि ऊपर दिये हुए अनुच्छेद के खंड (५) में दिये संरक्षण के वह प्रतिकूल थी।

निवास और सम्पत्ति सम्बन्धी स्वतन्त्रता (Freedom of Residence and Property Rights)—इन बातों सम्बन्धी अधिकार उपखंड (ङ) और (च) में प्राप्त हैं। परन्तु इनके सम्बन्ध में भी खंड (५) में दिये हुए प्रतिबन्ध लागू होते हैं। ये प्रतिबन्ध वही हैं, जो अबाध संचरण के अधिकार के सम्बन्ध में लागू होते हैं।

पेशा, व्यवसाय अथवा जीविका सम्बन्धी स्वतन्त्रता (Freedom to Practise Any Profession)—उपखंड (छ) में इस सम्बन्ध में अधिकार दिये गये हैं। परन्तु इन अधिकारों पर खंड (६) में दिये गये प्रतिबन्ध लागू होंगे। रशीद अहमद बनाम भारतीय संघ वगैरह नामक मुकदमे में इस मूल अधिकार के उल्लंघन का प्रश्न उठा था, जो कि इस अनुच्छेद के उपखंड (छ) द्वारा नागरिकों को प्राप्त हैं। अर्थात् कोई भी कारबार करने का अधिकार। उत्तर-प्रदेश के कैराना नामक स्थान में अब्दुल रशीद नामक व्यक्ति फलों का थोक रोज़गार किया करता था। उसको कैराना म्युनिसिपल बोर्ड ने यह नोटिस दिया कि चूँकि उसने म्युनिसिपल बोर्ड से यह व्यवसाय करने की आज्ञा नहीं ली थी, इससे वह यह रोज़गार नहीं कर सकता था। जब रशीद अहमद ने यह व्यवसाय बन्द नहीं किया, तो उस पर मुकदमा चलाया गया। तब रशीद अहमद ने अनुच्छेद ३२ के आधार पर उच्चतम न्यायालय में अपील की। न्यायालय ने अपने फैसले में यह कहा कि बोर्ड के उपनियमों के अनुसार बोर्ड को यह अधिकार था कि वह अपने अधिकार-क्षेत्र में किसी व्यक्ति को बिना अपनी आज्ञा के थोक व्यवसाय न करने दे, परन्तु उन उपनियमों में लाइसेंस देने की चर्चा या नियम नहीं

था। इसलिये न्यायालय का यह मत था कि प्रार्थी को अनुच्छेद १९ (१) (छ) के अनुसार व्यवसाय करने का जो मूल अधिकार प्राप्त था, उस पर आघात हुआ है। क्योंकि जब लाइसेंस देने का कोई नियम नहीं है, तो उपनियमों द्वारा बोर्ड को थोक व्यवसाय रोकने का जो अधिकार प्राप्त है वह निर्बाध (Absolute) हो गया। अर्थात् नागरिकों की व्यापार या कारबार करने की स्वतन्त्रता पर अनुचित प्रतिबन्ध हो गया। इसलिये उच्चतम न्यायालय ने यह आज्ञा दी कि प्रार्थी पर जो मुकदमा चल रहा था, वह उठा लिया जाय।

नवम्बर, सन् १९५० में उच्चतम न्यायालय ने इसी आधार पर मध्यप्रदेश बीड़ी कानून की उन धाराओं को अवैध घोषित कर दिया, जिनके अनुसार राज्य सरकार कुछ ग्रामों में बीड़ी बनना बन्द कर सकती थी। न्यायालय की यह राय थी कि अनुच्छेद १९ में व्यापार की जो स्वतन्त्रता प्राप्त थी, उस पर बीड़ी कानून की ये धाराएं उचित प्रतिबन्ध नहीं कही जा सकती थीं। क्योंकि "जो लोग कृषि-कर्म करते हैं, न केवल उन्हें इस कानून द्वारा अन्य कोई पेशा करने से रोका जाता है, बल्कि कृषि-कर्म से जिन लोगों का कोई सम्बन्ध नहीं है, उन्हें भी बीड़ी बनाने के काम से रोका जाता है और इस प्रकार उन्हें जीविकोपार्जन से रोका जाता है।"

अनुच्छेद २०—(१) में कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिये सिद्धदोष नहीं ठहराया जायगा, जब तक कि उसने अपराधारोपित क्रिया करने के समय किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण न किया हो, और न वह उससे अधिक दंड का पात्र होगा, जो उस अपराध के करने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन दिया जा सकता था।

(२) कोई व्यक्ति एक ही अधिकार के लिये एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित न किया जायगा।

(३) किसी अपराध में अभियुक्त कोई व्यक्ति स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिये बाध्य न किया जायगा।

इस अनुच्छेद के खंड (१) में ऐसे कानून बनाना मना है, जो किसी बीती हुई घटना पर लागू हो सके। अंग्रेजी भाषा में इन्हें ex port facto laws कहते हैं। इस वर्ग में अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित कानूनों

को रखा है—वह कानून जो किसी घटना के बाद बना और उस बीती हुई घटना को अपराध मानकर उस पर दंड देता है ; वह कानून जो किसी अपराध को अधिक बड़ा बना देता है ; वह कानून जो किसी अपराध के लिये अधिक दंड देता है, अर्थात् अपराध करने के समय कानून के अनुसार जो दंड मिलता, उससे अधिक दंड। अर्थात् दंड में परिवर्तन करके उसे बढ़ा देता है और वह कानून जो गवाह इत्यादि के कानून अधिक दंड देने की नीयत से बदल देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस अनुच्छेद के खंड (१) द्वारा घटना के बाद बननेवाले (ex port facto) वे सब कानून सीमित नहीं हो सकते, जिनकी व्याख्या अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने की है। अमेरिकन विधान में तो इस प्रकार के कानून बनाना ही मना है। इसलिये हमारे विधान के अनुच्छेद २० के खंड (१) में प्राप्त संरक्षण की अपेक्षा अमेरिका का विधान इस प्रकार के स्वातन्त्र्य को अधिक संरक्षण देता है। खंड (२) में दिये गये 'अभियोजित और दंडित' शब्दों पर विशेषरूप से ध्यान देना चाहिये। विधान सम्बन्धी विधेयक में केवल 'दंडित' शब्द रखा गया था। लेकिन विधान निर्माताओं ने सोचा कि यदि केवल दंडित शब्द रखा गया तो कुछ अपराधी, जिन्हें विभाग की ओर से दंड मिल चुका हो, यह कह सकते हैं कि उन्हें विभाग की ओर से दंड मिल चुका है और अब उन्हें कोई दंड नहीं मिलना चाहिये। इस कठिनाई को ध्यान में रखकर 'अभियोजित और दंडित' शब्द रखे गये।

अनुच्छेद २१—किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जायेगा।

यह बहुत महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है। इसके अनुसार किसी व्यक्ति का प्राण और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता केवल कानून के बल पर ही ली जा सकती है। ए० के० गोपालन बनाम मद्रास राज्य नाम प्रसिद्ध मुकदमे में उच्चतम न्यायालय ने "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" शब्दों की अधिकारपूर्ण व्याख्या की है। उच्चतम न्यायालय की व्याख्या के अनुसार इन शब्दों का अर्थ यह होता है कि जब विधानमंडल जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अपहरण के सम्बन्ध में कोई कानून बना देते हैं, तो न्यायालय उन्हें अवैध नहीं ठहरा सकते। इस

मुकदमे का फैसला देते हुए उच्चतम न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश ने कहा था कि 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' शब्दों से 'विधान ने विधानमंडलों को कानून बनाने या निश्चित करने का अन्तिम अधिकार दे दिया है। इसलिये गिरफ्तारी, कैद अथवा नज़रबन्दी सम्बन्धी कानून चाहे कितने ही कड़े क्यों न हों, भारत के न्यायालय उनमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत न्यायालय केवल इस बात की परीक्षा कर सकते हैं कि किसी व्यक्ति के प्राणों अथवा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आघात किसी कानून के अनुसार हो रहा है, अथवा बिना किसी कानून के। वे इस बात पर विचार नहीं कर सकते कि जिस कानून के अनुसार आघात हो रहा है, वह अच्छा है या बुरा। लेकिन यह बात बड़ी विचित्र-सी लगती है कि संविधान के अन्तर्गत न्यायालयों को यह अधिकार है कि वे उन सब कानूनों को अवैध घोषित कर सकते हैं, जो सार्वजनिक सुरक्षा के नाम पर वाक्-स्वातन्त्र्य के अधिकार पर आघात करते हैं, लेकिन वे उन दमनकारी कानूनों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते, जो किसी भी नागरिक की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता छीन सकते हैं और उसके द्वारा उसके सब अधिकार और स्वातन्त्र्य छीन सकते हैं। (देखो अनुच्छेद १९)। न्यायालय उन सब कानूनों को भी अवैध घोषित कर सकते हैं, जो सभा करने, संघ बनाने और अबाध आवागमन इत्यादि के अधिकारों पर अनुचित प्रतिबन्ध लगाते हैं। लेकिन उन्हीं न्यायालयों के पास व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आघात करनेवाले कानूनों के सम्बन्ध में बोलने का कोई अधिकार नहीं है। अर्थात् यदि न्यायालय सोचते भी हैं कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से सम्बन्ध रखनेवाला कोई कानून बिलकुल अनुचित है, तो भी वे उस पर विचार नहीं कर सकते और उसे अवैध घोषित नहीं कर सकते। जब हम अमेरिका में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सम्बन्धी स्थिति पर विचार करते हैं, तो भारत में स्थिति ठीक उलटी दिखती है। (देखो इसी अध्याय में आगे दिया हुआ 'भारत में कानून की सत्ता')

अनुच्छेद २२—(१) कोई व्यक्ति जो बन्दी किया गया है, ऐसे बन्दीकरण के कारणों से यथाशक्य शीघ्र अवगत कराये बिना हवालात में निरुद्ध नहीं किया जायेगा और न अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने तथा प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से वंचित रखा जायेगा।

(२) प्रत्येक व्यक्ति जो वन्दी किया गया है और हवालात में निरुद्ध किया गया है, वन्दीकरण के स्थान से दंडाधिकारी के न्यायालय तक यात्रा के लिये आवश्यक समय को छोड़कर ऐसे वन्दीकरण से २४ घंटे की कालावधि में निकटतम दंडाधिकारी के समक्ष पेश किया जायेगा, तथा ऐसा कोई व्यक्ति उक्त कालावधि से आगे दंडाधिकारी के प्राधिकार के विना हवालात में निरुद्ध नहीं रखा जायेगा।

(३) खंड (१) और (२) में की कोई वात—

(क) जो व्यक्ति तत्समय शत्रु अन्यदेशीय है उसको, अथवा

(ख) जो व्यक्ति निवारक-निरोध उपवन्धित करनेवाली किसी विधि के अधीन वन्दी या निरुद्ध किया गया है उसको, लागू न होगी।

(४) निवारक-निरोध उपवन्धित करनेवाली कोई विधि किसी व्यक्ति को ३ महीने से अधिक कालावधि के लिये निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत तव तक न करेगी जब तक कि—

(क) ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मिलकर वनी मन्त्रणामंडली ने ३ महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदित नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिये उसकी राय में पर्याप्त कारण हैं,

परन्तु इस उपखंड की कोई वात किसी व्यक्ति के, उस अधिकतम कालावधि से आगे, निरोध को प्राधिकृत न करेगी, जो खंड (७) के उपखंड (ख) के अधीन संसद-निर्मित किसी विधि द्वारा विहित की गई है, अथवा

(ख) ऐसा व्यक्ति खंड (७) के उपखंड (क) और (ख) के अधीन संसद-निर्मित किसी विधि के उपवन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है।

(५) निवारक-निरोध उपवन्धित करनेवाली किसी विधि के अधीन दिये गये आदेश के अनुसरण में जब कोई व्यक्ति निरुद्ध किया जाता है, तव आदेश

देनेवाला प्राधिकारी यथाशक्य शीघ्र उस व्यक्ति को जिन आधारों पर वह आदेश दिया गया है, उनको बतायेगा तथा उस आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने के लिये उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा।

(६) खंड (५) की किसी बात से आदेश देनेवाले प्राधिकारी के लिये ऐसे तथ्य को प्रकट करना आवश्यक नहीं होगा, जिनका कि प्रकट करना ऐसा प्राधिकारी लोकहित के विरुद्ध समझता है।

(७) संसद्-विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि--

(क) किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक-निरोध को उपबन्धित करनेवाली किसी विधि के अधीन ३ महीने से अधिक कालावधि के लिये खंड (४) के उपखंड (क) के उपबन्धों के अनुसार मंत्रणामंडली की राय प्राप्त किये बिना निरुद्ध किया जा सकेगा।

(ख) किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में कितनी अधिकतम कालावधि के लिये कोई व्यक्ति निवारक-निरोध उपबन्धित करनेवाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा, तथा

(ग) खंड (४) के उपखंड (क) के अधीन की जानेवाली जांच में मंत्रणामंडली द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया क्या होगी।

इस अनुच्छेद के खंड (१) और (२) में व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण संरक्षण दिये गये हैं। जो लोग गिरफ्तार किये जायँगे, उन्हें वकीलों की राय लेने की तथा अपनी पैरवी करने की सब सुविधाएं मिलनी चाहिये। उन्हें यह बतलाया जाना चाहिये कि किन कारणों से वे गिरफ्तार किये गये हैं। गिरफ्तार होने के २४ घंटों के अन्दर उन्हें सबसे अधिक पास के न्यायालय के न्यायाधिकारी के सामने उपस्थित किया जाना चाहिये। इन धाराओं द्वारा अनुच्छेद २१ की बहुत-सी त्रुटियां कम हो जाती हैं। जब तक संविधान में संशोधन न हों, तब तक गिरफ्तार होनेवाले व्यक्तियों के ये महत्त्वपूर्ण

अधिकार कोई नहीं छीन सकता, कानून चाहे कितने ही दमनकारी क्यों न हों। (इन धाराओं के सम्बन्ध में इस अध्याय के अन्त में दिया गया 'भारत में कानून की सत्ता' नामक विवरण देखो।)

परन्तु खंड ३ के अनुसार ये अधिकार उन लोगों को प्राप्त नहीं होंगे जो निवारक-निरोध (Preventive Detention) कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार होंगे अथवा जो शत्रु देशों के नागरिक होंगे।

निवारक-निरोध (Preventive Detention)—(१) निवारक-निरोध के सम्बन्ध में सबसे अधिक ध्यान रखने की बात यह है कि संविधान के अनुसार नागरिकों को साधारण तथा असाधारण दोनों परिस्थितियों में निवारक-निरोध में रखा जा सकता है। अन्य किसी भी प्रजातन्त्र के संविधान में ऐसी धाराएं नहीं हैं। ब्रिटेन के संविधान में पार्लियामेंट को ऐसे कानून बनाने की शक्ति है, जिससे शान्तिकाल में भी निवारक-निरोध किया जा सकता है; लेकिन उसने ऐसे कानून कभी बनाये नहीं हैं। केवल युद्धकाल में, उदाहरण के लिये प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के समय में, पार्लियामेंट ने ऐसे कानून बनाये, जिससे सार्वजनिक सुरक्षा तथा देश की रक्षा के हित में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट लोगों को न्यायालय की सजा के बिना कैद में रख सकता है। लेकिन भारत के संविधान में युद्ध तथा शान्ति दोनों समय में लोगों का निवारक-निरोध हो सकता है। १२ अगस्त, सन् १९५० को भारत के उप प्रधान मंत्री ने संसद में कहा था कि उस समय निवारक-निरोध कानून के अन्तर्गत ६,३४० व्यक्ति कैद में थे। उस समय न तो देश की लड़ाई किसी अन्य देश से हो रही थी और न कोई असाधारण संकटकाल ही उपस्थित था।

(२) खंड (४) के अनुसार साधारणत: लोगों को सलाहकार समिति या मंत्रणामंडली (Advisory Board) की राय के बिना निवारक-निरोध में नहीं रखा जा सकता। इस खंड के अनुसार एक मंत्रणामंडली स्थापित की जायगी। इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि इस मंडली का मत बाध्य माना जाता है। यदि मंडली की यह राय होती है कि किसी व्यक्ति को ३ महीने से अधिक नजरबन्द नहीं करना चाहिये, तो ३ महीने बाद वह व्यक्ति अवश्य छोड़

दिया जाना चाहिये। कई लोगों का मत है कि संसार के वैधानिक इतिहास में यह अद्वितीय घटना थी। इस खंड के अनुसार एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात में कार्यकारिणी सत्ता मंत्रणा बोर्ड के अधीन रख दी गई। अन्य किसी देश में इस प्रकार का उदाहरण नहीं पाया जाता। यह बात जरूर है कि इंग्लैंड में युद्धकाल में (द्वितीय महायुद्ध के समय) निवारक-निरोध सम्बन्धी गिरफ्तारियों पर विचार करने के लिये एक मंत्रणामंडली स्थापित की गई थी, परन्तु उसकी सलाह बाध्य नहीं थी। यदि मंत्रणामंडली किसी व्यक्ति की रिहाई की सिफारिश करती और गृहमंत्री सोचता कि उसकी रिहाई उपयुक्त नहीं थी, तो वह मंडली की राय मानने को बाध्य नहीं था। भारत में संविधान प्रारम्भ होने के पहिले निवारक-निरोध के सम्बन्ध में ऐसा कोई कानून नहीं था, जिसके अन्तर्गत मंत्रणामंडली बनती और उसका मत अनिवार्य होता। लेकिन इस सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। एक तो यह कि बाध्य मत की मंत्रणामंडलियां पहिले भी थीं और दूसरा यह कि इस अनुच्छेद के खंड (७) के अनुसार मंत्रणामंडली की सलाह लिये बिना ही किसी व्यक्ति को ३ महीने तक कैद में रखा जा सकता है। आयरलैंड में युद्धकाल में एक कानून बना था, जिसका नाम 'राज्यविरोधी अपराध कानून, १९३९' (Offences Against the State Act, 1939) था। उसमें निवारक-निरोध सम्बन्धी धारा थी। परन्तु साथ ही उसमें मंत्रणामंडली या जांच-समिति (Enquiry Commission) की भी एक धारा थी, जिसका मत बाध्य था। कोई भी गिरफ्तार व्यक्ति कमीशन से जांच के लिये प्रार्थना कर सकता था। और यदि कमीशन की यह राय होती थी कि उस व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिये कोई उचित कारण नहीं था तो वह व्यक्ति या तो छोड़ दिया जाता था अथवा न्यायालय में उस पर विचार किया जाता था।

(३) अनुच्छेद के खंड (७) में यह कहा गया है कि कानून द्वारा संसद निवारक-निरोध की अवधि मंत्रणामंडली की राय लिये बिना ही ३ महीने से अधिक बढ़ा सकती है। यह अनुमान किया जा सकता है कि खंड (४) में जो नियम दिया गया है, उसका यह साधारण-सा अपवाद है। अर्थात् मंत्रणामंडली की राय के बिना कोई भी व्यक्ति ३ महीने से अधिक निवारक-निरोध में न रखा

जायगा। परन्तु संविधान के अन्तर्गत संसद अपवाद को नियम और नियम को अपवाद वना सकती है। परन्तु यदि संसद ऐसा कानून वनाना चाहे, जिससे निवारक-निरोध में अधिकतर मंत्रणामंडली की आवश्यकता नहीं रहेगी अथवा अधिकांश मामलों में रहेगी तो संसद को ऐसा करने से कोई नहीं रोक सकता। वास्तव में सन् १९५० के निवारक-निरोध कानून द्वारा संसद ने यही किया। आगे चलकर इस कानून पर विचार किया गया है।

(४) निवारक-निरोध करनेवाले अधिकारियों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वन्दी अथवा मंत्रणामंडली के सामने उसके कैद के सब कारण रखे जायँगे। [खंड (५) और (६)]

(५) किसी वर्ग के व्यक्तियों के लिये संसद कानून द्वारा निवारक-निरोध की अधिकतम अवधि निश्चित कर सकती है।

(६) ३ महीना अथवा उससे कम अवधि के निवारक-निरोध के लिये मंत्रणा-मंडली आवश्यक नहीं है।

(७) उच्चतम न्यायालय के फैसलों से पता चलता है कि उक्त न्यायालय की राय में अधिकारीवर्ग वन्दियों को कैद के जो कारण वतलावेंगे उनकी सत्यता अथवा असत्यता की जांच करने का अधिकार न्यायालय को नहीं है। उदाहरण के लिये मान लो कि सरकारी अधिकारियों ने किसी वन्दी को यह सूचना दी है कि उसे नज़रवन्द करने का कारण यह है कि वह हिंसात्मक उपायों द्वारा राज्य को उलटने का षड़यन्त्र करता रहा है और उसके पास आधे दर्जन एटम वम्व थे, जिनका उपयोग वह राज्य के विरुद्ध करना चाहता था। अब यदि कैदी उच्चतम न्यायालय में प्रार्थना करे कि ये कारण विलकुल झूठे हैं और उसके पास एटम वम्व कभी नहीं थे, तो न्यायालय केवल यही करेगा कि उसे इन कारणों की सत्यता जांच करने का अधिकार नहीं है और इस सम्वन्ध में वह उसकी सहायता नहीं कर सकता। विहार के एक तेजनारायन झा नज़रवन्द थे। उच्चतम न्यायालय में उन्होंने प्रार्थना की कि नज़रवन्दी के उन्हें जो कारण वताये गये थे, वे विलकुल झूठे थे। न्यायाधीश फज़लहुसेन ने कहा कि "गवाहों को वुलाकर हमें यह जानने का अधिकार नहीं है कि तुम्हारे विरुद्ध जो अभियोग

लगाये गये हैं वे सही हैं, अथवा झूठ। यह तुम्हारे और सरकार के बीच की बात है। तुम अपनी नज़रबन्दी के विरुद्ध सरकार से प्रार्थना कर सकते हो। यदि कानून सम्बन्धी कोई बात हो (Point of Law), यदि कानून का अतिक्रमण हुआ हो, तो हम तुम्हारी प्रार्थना पर विचार कर सकते हैं। किन्तु मुश्किल यह है कि कारणों की सत्यता या असत्यता पर विचार करने का हमें अधिकार नहीं है।"

परन्तु यदि न्यायालय की राय में नज़रबन्दी के कारण इतने अस्पष्ट हैं कि नज़रबन्द न्यायालय में उचित प्रार्थना नहीं कर सकता, तो खंड (५) के अनुसार न्यायालय उसकी रिहाई की आज्ञा दे सकता है। उदाहरण के लिये यदि किसी नज़रबन्द कैदी से यह कहा जाता है कि वह राज्य विरोधी कार्यों में लगा था तो बहुत सम्भव है कि न्यायालय यह कहेगा कि यह कारण या दलील बहुत अस्पष्ट है और इस कारण कैदी तथ्यपूर्ण प्रार्थना (Effective Representation) नहीं कर सकता। इसलिये यह आशा की जा सकती है कि इस कारण से न्यायालय उस कैदी की रिहाई की आज्ञा दे देगा। (इस सम्बन्ध में ये मुकदमे ध्यान में रखने लायक हैं—ईश्वरदास बनाम राज्य (१९५०) शफातुल्ला खान बनाम पश्चिम बंगाल सरकार के प्रधान सेक्रेटरी वगैरह)

निवारक-निरोध कानून, १९५० (मूल) (The Preventive Detention Act, 1950 [Original])—इस कानून के अन्तर्गत केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया था कि यदि उन्हें यह संतोष था अथवा विश्वास था कि कोई व्यक्ति निम्नलिखित तरह के राज्य विरोधी कार्य करता था, तो वे उसे निवारक-निरोध में रख सकती थीं—(१) भारत की सुरक्षा, अन्य देशों के साथ भारत के सम्बन्ध तथा भारत की शान्तिपूर्ण स्थिति के विरुद्ध, अथवा (२) राज्य की शान्ति और सुरक्षा के विरुद्ध, अथवा (३) देश के लिये आवश्यक पूर्ति तथा सेवाएं बनाये रखने के विरुद्ध। इस कानून की निम्नलिखित विशेषताएं ध्यान में रखने योग्य हैं।

(१) इस कानून के अन्तर्गत केवल वर्ग (३) के अन्तर्गत आनेवाले नज़रबन्दियों की जांच मंत्रणामंडली के द्वारा हो सकती थी। वर्ग (१) और (२) में

आनेवाले नजरवन्दियों को यह सुविधा नहीं मिल सकती थी। लेकिन अधिकतर नजरवन्दी प्रायः इन्हीं दो श्रेणियों में आते हैं। इसलिये अनुच्छेद २२ के खंड (४) में मंत्रणामंडली द्वारा जांच होने की जो सुविधाएं दी हुई हैं, उनसे अधिकांश वन्दी वंचित हो जाते हैं। अनुच्छेद के खंड (७) में संसद को वंचित करने का जो अधिकार दिया गया है, उसी से यह हुआ।

(२) इस कानून के अनुसार एक जिलधीश अथवा सव डिविज़नल मजिस्ट्रेट भी किसी व्यक्ति को निवारक-निरोध में रख सकता था। ब्रिटेन में केवल गृहमंत्री निवारक-निरोध की आज्ञा दे सकता है।

(३) इस कानून के खंड (१४) के अनुसार अधिकारीवर्ग न्यायालय के सामने नज़रवन्दी के कारण वतलाने को वाध्य नहीं थे। उच्चतम न्यायालय के मत में अनुच्छेद २२(५) तथा अनुच्छेद ३२ के अनुसार यह खंड अवैध तथा अमान्य था। अनुच्छेद ३२ में मूल अधिकारों की प्राप्ति तथा उपभोग के लिये उच्चतम न्यायालय में प्रार्थना करने का अधिकार प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय का यह मत था कि इस कानून के खंड १४ में इस अधिकार का अतिक्रमण होता था। अधिकारीवर्ग को यह अधिकार दे दिया गया था कि चाहें तो न्यायालय में नज़र-वन्दी के कारण न वतलावें। इससे उच्चतम न्यायालय में उपचार प्राप्त करने के मूल अधिकार का अतिक्रमण होता था। इस कारण खंड (१४) अमान्य था।

इस कानून की इन धाराओं से जनता में बड़ा असंतोष फैला और चारों ओर से इस कानून को अधिक उदार वनाने की मांग होने लगी। फल यह हुआ कि सन् १९५१ की संसद के वजट अधिवेशन में इस कानून में संशोधन हुए।

निवारक-निरोध (संशोधन) कानून, १९५१ (The Preventive Detention (Amendment) Act, 1951)—इस कानून ने सन् १९५० के निवारक-निरोध कानून को काफी उदार वना दिया है। इसके अनुसार निवारक-निरोध के सव कैदियों के मामले मंत्रणामंडली के सामने रखे जायँगे। इस मंडली में ३ सदस्य रहेंगे जो किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके हों, अथवा हों अथवा होने लायक हों। मंत्रणामंडली १० हफ्ते के अन्दर अपनी सिफारिशों की रिपोर्ट सरकार को देगी। यदि मंत्रणामंडली की

राय है कि किसी व्यक्ति को नज़रबन्द रखने का पर्याप्त कारण नहीं है, तो सरकार को उस व्यक्ति को अवश्य छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार मंत्रणामंडली का निर्णय अन्तिम है और सरकार के लिये वह बाध्य है। यदि मंत्रणामंडली के सदस्यों में मतभेद होता है, तो सदस्यों का बहुमत ही मंडली का मत होगा।

मूल कानून में स्पष्टरूप से यह कहा गया था कि नज़रबन्दियों को स्वयं अथवा वकीलों के जरिये मंत्रणामंडली के सामने अपना मुकदमा रखने का अधिकार नहीं था। यद्यपि संशोधन कानून में भी बन्दियों को यह अधिकार नहीं मिला है, परन्तु मंत्रणामंडली को यह अधिकार मिल गया है कि यदि वह आवश्यक समझे तो किसी विशेष मामले में बन्दी को अपने सामने बुलाकर उसका बयान ले सकती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मूल कानून में यह एक बड़ा भारी सुधार हुआ है।

संशोधन कानून में नज़रबन्दियों को मियादी रिहाई (Parole) का भी अधिकार दिया गया है। इस कानून के अन्तर्गत सब-डिविज़नल मजिस्ट्रेट को नज़रबन्दी या निवारक-निरोध की आज्ञा देने का अधिकार नहीं है। मूल कानून की शेष धाराएं ज्यों की त्यों हैं। संशोधित कानून की अवधि ३१ मार्च, १९५२ तक है।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

अनुच्छेद २३—(१) मानव का पण्य और बेट-बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य जबर्दस्ती लिया हुआ श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है, और इस उपबन्ध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा, जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

(२) इस अनुच्छेद की किसी बात से, राज्य को सार्वजनिक प्रयोजन के लिये बाध्य सेवा लागू करने में रुकावट न होगी। ऐसी सेवा लागू करने में केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी एक के आधार पर राज्य कोई विभेद नहीं करेगा।

पहिले जमींदार इत्यादि प्रभावशाली लोग गरीबों से तरह-तरह के बेगार कराते थे। बेगार प्रथा अभी तक चली आ रही थी। परन्तु इस अनुच्छेद द्वारा वह खतम कर दी गई और अब कानून की दृष्टि से बेगार लेना अपराध माना जाता है। इसी

प्रकार पशुओं की तरह मनुष्यों को खरीदना और बेचना भी अपराध है। परन्तु देश में यह अपराध बहुत ही अप्रत्यक्ष रूप में अब भी प्रचलित है। सार्वजनिक कार्यों के लिये राज्य लोगों से अनिवार्य सेवा ले सकता है। युद्धकाल में देश की सुरक्षा के लिये अनिवार्य सेवा लेना आवश्यक होता है। परन्तु अनिवार्य सेवा लेते समय सरकार जाति, धर्म, मूलवंश इत्यादि के आधार पर नागरिकों के बीच भेद-भाव नहीं कर सकती।

अमेरिकन संविधान में भी गुलामी अथवा बेगार को अपराध माना गया है। संविधान के १३वें संशोधन में कहा गया है कि "अमेरिका और उसके अधीन क्षेत्रों में किसी भी रूप में गुलामी अथवा बेगार नहीं रहेगी। केवल न्यायालय द्वारा दंड के रूप में काम लिया जा सकता है।" ध्यान रहे कि इस संशोधन में दिये गये अधिकार को प्राप्त करने के लिये अमेरिका में गृहयुद्ध हुआ था।

ध्यान रहे कि अनुच्छेद २३ से कानून के विरुद्ध अपराध करनेवालों को कठिन कारावास का दंड मिलने में बाधा नहीं पड़ती।

अनुच्छेद २४—१४ वर्ष से कम आयुवाले किसी बालक को किसी कारखानें अथवा खान में नौकर न रखा जायगा और न किसी दूसरी संकटमय नौकरी में लगाया जायगा।

वर्तमान मज़दूर कानूनों के अनुसार भी बच्चों को कारखानों अथवा खानों में काम पर नहीं लगाया जा सकता, परन्तु इस अनुच्छेद से इस सम्बन्ध में अधिक सुरक्षा मिलती है। मजदूर कानूनों को आसानी से बदला जा सकता है। लेकिन संविधान को इतनी आसानी से नहीं बदला जा सकता।

धर्म-स्वातन्त्र्य का अधिकार

अनुच्छेद २५—(१) सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के दूसरे उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सब व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का तथा धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा।

(२) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा राज्य के लिये किसी ऐसी विधि के बनाने में रुकावट न डालेगी जो—

(क) धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की लौकिक क्रियाओं का विनिमयन अथवा निर्बन्धन करती हो ;

(ख) सामाजिक कल्याण और सुधार उपबन्धित करती हो, अथवा हिन्दुओं की सार्वजनिक प्रकार की धर्म-संस्थाओं को हिन्दुओं के सब वर्गों और विभागों के लिये खोलती हो।

व्याख्या १—कृपाण धारण करना तथा लेकर चलना सिक्ख धर्म के मानने का अंग समझा जायेगा।

व्याख्या २—खंड (२) के उपखंड (ख) में हिन्दुओं के प्रति निर्देश में सिक्ख, जैन या बौद्धधर्म के माननेवाले व्यक्तिओं का भी निर्देश अन्तर्गत है तथा हिन्दू धर्म-संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ भी तदनुकूल ही किया जायेगा।

भारत में राज्य धर्म निरपेक्ष है, अर्थात् धर्म के सम्बन्ध में वह उदासीन है। इसलिये यह अनुच्छेद सब लोगों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता तथा धार्मिक आचार-विचार और प्रचार के सम्बन्ध में समान अधिकार देता है। लेकिन सामाजिक सुधार का तथा धर्माचरण के सम्बन्ध में होनेवाले लौकिक कार्यों पर नियंत्रण रखने का अधिकार राज्य ने अपने हाथ में रखा है। हिन्दू, सिक्ख, जैन तथा बौद्ध धार्मिक संस्थाएं सब वर्गों के लोगों के लिये एक समान खोलने का अधिकार राज्य ने विशेषरूप से अपने हाथ में रखा है।

इस अनुच्छेद की तुलना सोवियट संघ के संविधान के अनुच्छेद १२४ से करने योग्य है। उसमें लिखा है—"नागरिकों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता देने के लिये सोवियट संघ में धर्म और राज्य को अलग-अलग किया जाता है और शिक्षा तथा धर्म को भी अलग-अलग किया जाता है। सब नागरिकों को धर्माचरण की तथा धर्म-विरोधी प्रचार की एक समान स्वतन्त्रता प्राप्त है।" सोवियट विधान का यह अनुच्छेद धर्म-विरोधी प्रचार करने की स्वतन्त्रता तो देता है, परन्तु धर्म-प्रचार करने की स्वतन्त्रता नहीं देता (यद्यपि वह धर्माचरण की स्वतन्त्रता देता है।) परन्तु भारतीय संविधान का अनुच्छेद २५ धर्माचरण और धर्म-प्रचार दोनों की स्वतन्त्रता देता है।

अनुच्छेद २६—सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को—

(क) धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिये संस्थाओं की स्थापना और घोषणा का ;

(ख) अपने धार्मिक कार्यों सम्बन्धी विषयों के प्रबन्ध करने का ;

(ग) जंगम और स्थावर सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का ; तथा

(घ) ऐसी सम्पत्ति के विधि अनुसार प्रशासन करने का अधिकार होगा।

वास्तव में यह अधिकार अनुच्छेद २५ का समर्थन करता है। क्योंकि यदि धार्मिक संस्थाएं बनाने का अधिकार न हो और उन्हें सम्पत्ति देने का अधिकार न हो तथा उस सम्पत्ति का प्रबन्ध भी करने का अधिकार न हो, तो धर्माचरण तथा धर्म-प्रचार सम्बन्धी स्वतन्त्रता अर्थहीन हो जाती है।

अनुच्छेद २७—कोई भी व्यक्ति ऐसे करों को देने के लिये बाध्य नहीं किया जायगा, जिनके आगम किसी विशेष धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति या पोषण में व्यय करने के लिये विशेषरूप से विनियुक्त कर दिये गये हों।

अनुच्छेद २८—(१) राज्य निधि से पूरी तरह से पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी।

(२) खंड (१) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था पर लागू न होगी, जिसका प्रशासन राज्य करता हो, किन्तु जो किसी ऐसे धर्मस्व या न्यास के अधीन स्थापित हुई है, जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देनी आवश्यक है।

(३) राज्य से अभिज्ञात अथवा राज्य-निधि से सहायता पानेवाली, शिक्षा-संस्था में उपस्थित होनेवाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जानेवाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये अथवा ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जानेवाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिये बाध्य न किया जायेगा, जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह वयस्क हो तो उसके संरक्षक ने इसके लिये अपनी सम्मति न दे दी हो।

यह अनुच्छेद निजी अथवा वैयक्तिक संस्थाओं के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता। यह केवल उन संस्थाओं से सम्बन्ध रखता है, जो (१) केवल सरकारी धन की

सहायता से चलती है ; (२) जिन्हें सरकार या राज्य ने मान्यता दे दी है ; (३) जिन संस्थाओं को सरकारी धन से सहायता मिलती है और (४) जिन संस्थाओं का प्रबन्ध तो सरकार करती है, परन्तु जो गैर सरकारी धन से बनी हैं और चलती हैं और उनके निर्माताओं और दाताओं ने साथ में यह शर्त लगा दी है कि उनमें धार्मिक शिक्षा दी जायेगी। इनमें से नं० (१) में तो कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, नं० (२) और (३) में धार्मिक शिक्षा लेना इच्छा पर निर्भर रहेगा और नं० (४) में धार्मिक शिक्षा देने में कोई बाधा न रहेगी। जो संस्थाएं इन चार वर्गों के बाहर आती हैं और इनमें वैयक्तिक संस्थाएं भी शामिल हैं, उनमें धार्मिक शिक्षा देने में कोई बाधा नहीं है।

संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

अनुच्छेद २६—(१) भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी विभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा।

(२) राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य-निधि से सहायता पानेवाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वंचित न रखा जायगा।

इस अनुच्छेद के खंड (१) में अल्पसंख्यकों को अपनी संस्कृति के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता दी गई है और खंड (२) में शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के सम्बन्ध में भेद-भाव न करने का आदेश दिया गया है। जिन शिक्षा संस्थाओं को पूर्णरूप से अथवा अंशरूप से सरकारी सहायता मिलती है, उनमें प्रवेश करने के सम्बन्ध में धर्म, जाति, मूलवंश, भाषा इत्यादि के आधार पर भेद-भाव नहीं किया जा सकता।

जुलाई सन् १९५० में मद्रास उच्च न्यायालय की पूरी बेंच (Full Bench) ने इस अनुच्छेद के खंड २ के अर्थ पर अपना फैसला दिया था। मद्रास सरकार ने एक आज्ञा जारी की, जिसके अनुसार कालेजों में भरती जाति के आधार पर की जाती थी। इस आज्ञा के विरुद्ध दो विद्यार्थियों ने उच्च न्यायालय से परमादेश की प्रार्थना (Mandamus Petition) की। वे सरकारी कालेज

में प्रवेश चाहते थे। उच्च न्यायालय ने अपने फसले में कहा कि राज्य के विद्यालयों में धर्म, जाति अथवा मूलवंश के आधार पर प्रवेश नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद ३०—(१) धर्म या भाषा पर आधारित सब अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

(२) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभेद न करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्प-संख्यक-वर्ग के प्रबन्ध में है।

इस अनुच्छेद में धर्म और भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा संस्थाएं करने की स्वतन्त्रता दी गई है। साथ ही राज्य को यह आदेश दिया गया है कि शिक्षा संस्थाओं को सरकारी आर्थिक सहायता देते समय ऐसी शिक्षा संस्थाओं के साथ भेद-भाव नहीं करना चाहिये। उदाहरण के लिये इस अनुच्छेद के अन्तर्गत बिहार में रहनेवाले बंगाली और बंगाल में रहनेवाले बिहारी अपने मन की शिक्षा संस्थाएं स्थापित कर सकते हैं और आर्थिक सहायता देने में राज्य उनके साथ किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करेगा।

सम्पत्ति का अधिकार

अनुच्छेद ३१—(१) कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

(२) कोई स्थावर और जंगम सम्पत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कम्पनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है, सार्वजनिक प्रयोजन के लिये कब्जा कृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी, जब तक कि वह विधि-कब्जाकृत या अर्जित सम्पत्ति के लिये प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो और या तो प्रतिकर की राशि को नियत न कर दे या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख न कर दे, जिनसे प्रतिकर निर्धारित होना है और दिया जाना है।

(३) राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाई गई कोई ऐसी विधि, जैसी कि खंड (२) में निर्दिष्ट है, तब तक प्रभावी नहीं होगी, जब तक कि ऐसी विधि

को, राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किये जाने के पश्चात् उसकी अनुमति न मिल गई हो।

(४) यदि इस संविधान के प्रारम्भ पर किसी राज्य के विधानमंडल के सामने किसी लम्बित विधेयक को, ऐसे विधानमंडल द्वारा पास किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किया जाता है तथा उसकी अनुमति मिल जाती है, तो उस संविधान में किसी बात के होते हुए भी इस प्रकार अनुमत विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह खंड (२) के उपबन्धों का उल्लंघन करती है।

(५) खंड (२) की किसी बात से :—

(क) ऐसी किसी विधि को छोड़ कर जिस पर कि खंड (६) के उपबन्ध लागू होते हैं, किसी अन्य वर्तमान विधि के उपबन्धों पर अथवा ;

(ख) एतत्पश्चात् राज्य जो कोई विधि :—

(१) किसी कर या अर्थ-दण्ड के आरोपण या उद्ग्रहण के प्रयोजन के लिये बनाये, उसके उपबन्धों पर, अथवा

(२) सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति के अथवा प्राण या सम्पत्ति के संकट-निवारण के लिये बनाये उसके उपबन्धों पर, अथवा ;

(३) भारत डोमीनियन की अथवा भारत की सरकार और अन्य देश की सरकार के बीच किये गये करार के अनुसरण में, अथवा अन्यथा, जो सम्पत्ति विधि द्वारा निष्क्राम्य सम्पत्ति घोषित की गई है, उस सम्पत्ति के लिये बनाये उसके उपबन्धों पर, प्रभाव नहीं होगा।

(६) राज्य की कोई विधि, जो इस संविधान के प्रारम्भ से १८ महीने से अधिक पहिले अधिनियमित हुई हो, ऐसे प्रारम्भ से ३ महीने के अन्दर राष्ट्रपति के समक्ष उसके प्रमाणन के लिये रखी जा सकेगी, तथा ऐसा होने पर यदि लोक-अधिसूचना द्वारा राष्ट्रपति ऐसा प्रमाणन देता है तो किसी न्यायालय में उस

पर इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी, कि वह खंड (२) के उपबन्धों का उल्लंघन करती है अथवा भारत-शासन-अधिनियम १९३५ की धारा २९९ की उपधारा (२) के उपबन्धों का उल्लंघन कर चुकी है।

यह अनुच्छेद काफी उलझनपूर्ण दिखता है, परन्तु इसमें ध्यान रखने योग्य बात यह है कि खंड (२) द्वारा राज्य किसी सम्पत्ति को लेकर उसका जो प्रतिकर (Compensation) देगी, उस प्रतिकर के विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं हो सकेगी। वह प्रतिकर न्यायालय द्वारा विचाराधीन न होगा (It will be non-justiciable) अर्थात् न्यायालयों को यह विचार करने का अधिकार न होगा कि वह प्रतिकर उचित है या अनुचित, काफी है अथवा कम। विधानमंडल प्रतिकर निश्चित करेंगे अथवा उनके निश्चित करने के सिद्धान्त बनावेंगे। उनका निश्चय ही अन्तिम होगा। न्यायालयों को इस सम्बन्ध में कोई अधिकार न होगा।

परन्तु प्रतिकर सम्बन्धी कोई शर्तें निम्नलिखित बातों में लागू न होंगी—(१) दंड या कर सम्बन्धी किसी कानून पर, (२) सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी अथवा जीवन और सम्पत्ति की रक्षा के लिये जो कानून बनाये जायँ; (३) निष्क्राम्य सम्पत्ति (Evacuee Property) के सम्बन्ध में जो कानून बनाये जायँ; (४) संविधान प्रारम्भ होने से १८ महीने पहले जो कानून बने थे, उन्हें छोड़कर अन्य कानूनों पर। उक्त १८ महीनों के अन्दर जो कानून बने हों, उनके सम्बन्ध में यह धारा बनाई गई है कि बनने के ३ महीनों के भीतर वे राष्ट्रपति के सामने उसकी स्वीकृति के लिये पेश किये जायँगे और यदि राष्ट्रपति उन्हें अपनी स्वीकृति देता है तो किसी न्यायालय में उन पर इस आधार पर एतराज नहीं किया जायगा कि वे खंड (२) की प्रतिकर सम्बन्धी धाराओं का उल्लंघन करते हैं। इसी प्रकार संविधान होने के समय यदि किसी राज्य के विधानमंडल में कोई विधेयक पेश हो और विधानमंडल में पास होने के बाद वह राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये रोक लिया जाय और राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति दे देवे तो उस कानून पर, उस आधार पर आपत्ति नहीं की जायगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (२) का उल्लंघन करता है। ये सब धाराएं विभिन्न राज्यों के जमींदारी उन्मूलन कानूनों और विधेयकों की दृष्टि में रखकर बनायी गई हैं।

अनुच्छेद ३१ (क)—भूमि सम्पत्ति इत्यादि प्राप्त या जब्त करनेवाले कानूनों की रक्षा करना (Saving of Laws Providing for acquisition of Estates etc.)—इस भाग में पहिले जो कुछ कहा गया है, उसके रहते हुए भी राज्य द्वारा निर्मित सम्पत्ति अथवा तत्सम्बन्धी अधिकार प्राप्त करनेवाला, अथवा अधिकारों को घटानेवाला कोई भी कानून इस आधार पर अमान्य या अवैध नहीं ठहराया जायगा कि वह इस भाग में दी हुई धाराओं का उल्लंघन करता है, अथवा अपहरण करता है अथवा उन्हें सीमित करता है।

यदि किसी राज्य का विधानमंडल ऐसा कोई कानून बनाता है, तो इस अनुच्छेद की धाराएं उस कानून पर तब तक लागू नहीं होंगी, जब तक वह राष्ट्रपति के विचाराधीन नहीं आता और राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति नहीं देता।

(२) इस अनुच्छेद में दिये गये—

(क) 'सम्पत्ति' (Estate) शब्द का अर्थ किसी स्थान में वही लगाया जायगा जो कि वर्तमान कानून में किसी स्थान में भूमि प्रणालियों (Land Tenures) के सम्बन्ध में लगाया जाता है। इसमें किसी भी स्थान में जागीर, इनाम, मुआफी अथवा इसी प्रकार की अन्य देन भी शामिल रहेंगी।

(ख) सम्पत्ति के सम्बन्ध में 'अधिकारों' का अर्थ उन अधिकारों से होगा, जो किसी जमींदार अथवा किसान अथवा शिकमी किसान (Proprietor, Sub-Proprietor, Under-Proprietor, Tenure holder) अथवा ऐसे ही अन्य व्यक्तियों को प्राप्त होंगे। यही बात लगान सम्बन्धी अधिकारों पर लागू होंगी।

अनुच्छेद ३१ (ख)—कुछ कानूनों और नियमों की मान्यता (Validation of Certain Acts and Regulations)—साधारणतः अनुच्छेद ३१(क) में दी गई बातों का विरोध किये बिना अनुसूची ९ (नीचे दी गई है) में दिये हुए कोई भी कानून और नियम अमान्य नहीं समझे जायेंगे। यह कह कर उन्हें अमान्य नहीं कहा जा सकता कि इस भाग में दी हुई धाराओं

और नियमों का वे उल्लंघन या विरोध करते हैं। किसी न्यायालय के फैसले या आज्ञा द्वारा भी वे अमान्य घोषित नहीं हो सकते।

अनुसूची ६—(१) बिहार-भूमि सुधार कानून, १९५० (बिहार १९५० का कानून ३०) (The Bihar Land Reforms Act 1950. Bihar Act XXX of 1950), (२) बम्बई-भूमि अधिकार और कृषि कानून १९४८ (बम्बई १९४८ का कानून ६७) (The Bombay Tenancy and Agricultural Lands Act 1948. Bombay Act LXVII of 1948), (३) बम्बई मालिकी अधिकार उन्मूलन कानून १९४९ (The Bombay Maleki Tenure Abolition Act 1949. Bombay Act LXI of 1949), (४) बम्बई ताल्लुकदारी अधिकार उन्मूलन कानून 1949 (The Bombay Taluqudari Tenure Abolition Act of 1949. Bombay Act LXII of 1949), (५) पंचमहाल मेहवासी अधिकार उन्मूलन कानून १९४९ (The Panchmahals Mehwassi Tenure Abolition Act, 1949. Bombay Act LXIII of 1949), (६) बम्बई खोटी उन्मूलन कानून, १९५० (The Bombay Khoti Abolition Act, 1950. (Bombay Act VI of 1950), (७) बम्बई परगना और कुलकर्नी वतन उन्मूलन कानून, १९५० (The Bombay Paragana and Kulkarni Watan Abolition Act, 1950. Bombay Act, LX of 1950), (८) मध्यप्रदेश मालगुजारी उन्मूलन कानून, १९५० (The Madhya Pradesh Abolition of Proprietory Rights [Estates, Mahals, Alienated Lands] Act, 1950. Madhya Pradesh Act, I of 1950), (९) मद्रास भूमि कानून, १९४८ (The Madras Estates [Abolition and Conversion into Ryotwari] Act, 1948. Madras Act, XXVI of 1948), (१०) मद्रास भूमि कानून संशोधन कानून (The Madras Estates [Abolition and Conversion into Ryotwari] Amendment Act, 1950. Madras Act I of

1950). (११) उत्तर-प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि-सुधार कानून १९५१ (The Uttar-Pradesh Zamindary Abolition and Land Reforms Act, 1951. Uttar-Pradesh Act I of 1951), (१२) हैदराबाद रेग्यूलेशन १३५८ एफ. (The Hyderabad [Abolition of Jagirs] Regulation, 1358 F. No. L XIX of 1358, Fasli). (१३) हैदराबाद जागीर रेग्यूलेशन १३५९ एफ. (The Hyderabad Jagirs [Commutation] Regulation 1359 F. No. XXV of 1359, Fasli).

ये दोनों अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद ३१(क) और ३१(ख) मूल संविधान में नहीं थे। ये संविधान में संविधान (प्रथम संशोधन) कानून, १९५१ द्वारा शामिल कर लिये गये। इनका उद्देश्य यह है कि जमींदारी उन्मूलन या भूमि सुधार सम्बन्धी जो भी कानून बनाये जायँ वे इस कारण अमान्य न ठहराये जायँ कि संविधान में दिये हुए मूल अधिकारों का वे अतिक्रमण करते हैं। सन् १९५१ के प्रारम्भ में कुछ राज्यों ने जमींदारी उन्मूलन सम्बन्धी कानून बनाये थे, जिनमें सन् १९५० का बिहार भूमि-सुधार कानून भी शामिल था। इन कानूनों को उन राज्यों के उच्च न्यायालयों को इस आधार पर अमान्य ठहराया कि वे कुछ मूल अधिकारों का अतिक्रमण करते थे। परन्तु सरकार जमींदारी उन्मूलन और भूमि प्रणाली में सुधार करने के लिये उत्सुक थी। इन कार्यों को वह जल्दी से जल्दी करना चाहती थी। सरकार सोचती थी कि देश में भूमि सुधार अति आवश्यक है। इसलिये कि संविधान में ऐसे संशोधन होने चाहिये, जिससे भूमि सुधार सम्बन्धी जो कानून बनाये जायँ उनमें किसी प्रकार का वैधानिक अड़ंगा न लगाया जा सके। इसलिये संविधान (प्रथम संशोधन) कानून, १९५१ बनाकर ये दो अनुच्छेद संविधान में जोड़ दिये गये।

अनुच्छेद ३१(क) को प्रारम्भिक प्रभाव (Retrospective Effect) दिया गया है। संविधान (प्रथम संशोधन) कानून १९५१ में कहा गया है कि अनुच्छेद ३१ के बाद यह अनुच्छेद प्रारम्भ से ही बना हुआ माना जायगा।

यह ध्यान में रखना चाहिये कि इन दो अनुच्छेदों के संविधान में जुड़ जाने से जमींदारी उन्मूलन या भूमि-सुधार सम्बधी जो कानून बने हैं, वे अमान्य नहीं ठहराये जा सकते, चाहे वे प्रतिकर (Compensation) इत्यादि के सम्बन्ध में कितने ही अन्याय या पक्षपातपूर्ण क्यों न हों। अथवा चाहे वे बिलकुल ही प्रतिकर न दें, जमींदारी इत्यादि बिलकुल जब्त क्यों न कर लें।

सांविधानिक उपचारों के अधिकार

अनुच्छेद ३२—(१) इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये उच्चतम न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रचालित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।

(२) इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिये उच्चतम न्यायालय को ऐसे निर्देश या आदेश या लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।

(३) उच्चतम न्यायालय को खंड (१) और (२) द्वारा दी गई शक्तियों पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले, संसद् विधि द्वारा किसी दूसरे न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर उच्चतम न्यायालय द्वारा खंड (२) के अधीन प्रयोग की जाने वाली सब अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी।

(४) इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबन्धित अवस्था को छोड़ कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलम्बित न किया जायेगा।

मूल अधिकारों की रक्षा के लिये संविधान में उच्चतम न्यायालय में प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार दिया गया है। और खंड (२) के अनुसार उच्चतम न्यायालय इन अधिकारों की रक्षा के लिये उपयुक्त आदेश दे सकता है।

बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण पर इसी अध्याय में आगे टिप्पणी की गई है।

उच्च न्यायालयों का समवर्ती अधिकार-क्षेत्र (Concurrent Jurisdiction of High Courts)—अनुच्छेद २२६ के द्वारा संविधान उसी प्रकार के आदेश देने का अधिकार देता है, जो कि इस अनुच्छेद के खंड (२)

में कहे गये हैं। इसलिये यह प्रश्न उठ सकता है कि क्रमिक कार्यवाही के अनुसार किसी व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में जाने के पहिले उच्च न्यायालय में जाना चाहिये अथवा नहीं। रमेश थापड़ वनाम मद्रास सरकार १९५० नामक मुकदमे में यही प्रश्न उठा था। श्री थापड़ ने मद्रास सरकार की कुछ आज्ञाओं के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय से आदेश प्राप्त करने की प्रार्थना की थी। मद्रास के महाधिवक्ता (Advocate General) ने न्यायालय में यह दलील पेश की कि क्रमिक कार्यवाही के अनुसार प्रार्थी को उच्चतम न्यायालय में जाने के पहले उच्च न्यायालय में जाना चाहिये था। अपनी दलील के समर्थन में महाधिवक्ता ने कई उदाहरण भी दिये। लेकिन इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय ने यह फैसला दिया कि "हमारी राय यह है कि इस सम्बन्ध में विद्वान महाधिवक्ता ने जो दलीलें और उदाहरण दिये हैं तथा जो अमेरिकन फैसलों के उदाहरण दिये हैं, वे वास्तव में भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३२ में दिये गये उपचारों के उपयुक्त और अनुकूल नहीं हैं। वह अनुच्छेद इस न्यायालय को भाग ३ में दिये गये अधिकारों के संरक्षण के लिये अथवा अन्य किसी वात पर आदेश देने का अधिकार केवल उसके कार्यक्षेत्र के अंश के रूप में नहीं देता जैसा कि अनुच्छेद २२६ उच्च न्यायालयों को देता है। यदि ऐसा होता तो यह अनुच्छेद (अनु० ३२) अनुच्छेदों १३१ और १३९ के बीच में कहीं रखा जाता जो कि कार्यक्षेत्र की व्याख्या करते हैं। अनुच्छेद ३२ उन अधिकारों की रक्षा की गारंटी देता है। इसके द्वारा उपचार की एक तरह की सनद प्राप्त हो जाती है। और भाग ३ में शामिल करके इस गारंटी को स्वयं एक मूल अधिकार वना दिया गया है। इस प्रकार यह न्यायालय मूल अधिकारों का संरक्षक और अभिभावक वन गया है। और इस जिम्मेदारी को पूरा करने के लिये वह ऐसी किसी प्रार्थना की उपेक्षा नहीं कर सकता है, जिसमें यह कहा गया हो कि मूल अधिकारों का अतिक्रमण किया गया है और उनकी रक्षा होनी चाहिये।"

इस प्रकार यह अन्तिम रूप से निश्चित हो गया है कि मूल अधिकारों की रक्षा के लिये कोई व्यक्ति पहिली प्रार्थना उच्चतम न्यायालय से कर सकता है और उस न्यायालय को वह प्रार्थना सुननी पड़ेगी।

अनुच्छेद ३३—संसद विधि द्वारा निर्धारण कर सकेगी कि इस भाग द्वारा दिये गये अधिकारों में से किसी को सशस्त्र वलों अथवा सार्वजनिक व्यवस्था-भार वाले वलों के सदस्यों के लिये प्रयोग होने की अवस्था में किस मात्रा तक निर्वन्धित या निराकृत किया जाये ताकि उनके कर्त्तव्यों का उचित पालन तथा उनमें अनुशासन वना रहना सुनिश्चित रहे।

इस अनुच्छेद पर पीछे विचार किया जा चुका है। इसके द्वारा संसद को यह अधिकार दिया गया है कि सेना के सम्वन्ध में वह मूल अधिकारों को सीमित अथवा स्थगित कर सकती है।

अनुच्छेद ३४—इस भाग के पूर्ववर्ती उपवन्धों में किसी वात के होते हुए भी संसद विधि द्वारा संघ या राज्य की सेवा के किसी व्यक्ति को, अथवा किसी अन्य व्यक्ति को, किसी ऐसे कार्य के विषय में तारण दे सकेगी, जो उसने भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर किसी ऐसे क्षेत्र में, जहां सेना-विधि प्रवृत्त थी, व्यवस्था के वनाये रखने या पुनः स्थापन के सम्वन्ध में किया है अथवा ऐसे क्षेत्र में सेना-विधि के अधीन किसी दिये गये दंडादेश, किये गये दंड, आदेश की हुई जव्ती अथवा किये गये अन्य कार्य को मान्य कर सकेगी।

इस अनुच्छेद पर ऊपर टिप्पणी की जा चुकी है। इसके अनुसार संसद को यह अधिकार है कि जिन क्षेत्रों में सैनिक शासन (Martial Law) है, उनमें किये गये कामों अथवा दिये गये दंड को वह कानून द्वारा उचित ठहरा सकती है। इसका परिणाम यह होगा कि जिन क्षेत्रों में सैनिक शासन होगा उनमें मूल अधिकार प्रायः स्थगित रहेंगे।

अनुच्छेद ३५—इस संविधान में किसी वात के होते हुए भी—

(क) संसद को शक्ति होगी तथा किसी राज्य के विधानमंडल को शक्ति न होगी कि वह—

(१) जिन विषयों के लिये अनुच्छेद १६ के खंड (३), अनुच्छेद ३२ के खंड (३), अनुच्छेद ३३ और ३४ के अधीन संसद विधि द्वारा उपवन्ध कर सकेगी, उनमें से किसी के लिये, तथा

(२) इस भाग में अपराध घोषित कार्यों के दंड विहित करने के लिये,

विधि बनाये तथा संसद् इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् यथाशीघ्र ऐसे कार्यों के लिये जो उपखंड (२) में निर्दिष्ट हैं, दंडविहित करने के लिये विधि बनायेगी।

(ख) खंड (क) के उपखंड (१) में निर्दिष्ट विषयों में से किसी से सम्बन्ध रखनेवाली, अथवा उस खंड के उपखंड (२) में निर्दिष्ट किसी कार्य के लिये दंड का उपबन्ध करनेवाली, कोई प्रवृत्त विधि, जो भारत राज्य-क्षेत्र में इस संविधान के प्रारम्भ होने से ठीक पहिले लागू थी, उसमें दिये हुए निबन्धनों के तथा अनुच्छेद ३७२ के अधीन उसमें किये गये किन्हीं अनुकूलनों और रूप-भेदों के अधीन रहकर ही तब तक प्रवृत्त रहेगी, जब तक कि वह संसद् द्वारा परिवर्तित या निरसित या संशोधित न की जाये।

व्याख्या—"प्रवृत्त विधि" पदावलि का जो अर्थ इस संविधान के अनुच्छेद ३७२ में है, वही इस अनुच्छेद में भी होगा।

मूल अधिकारों की सूची में यह अन्तिम अधिकार है। इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, इसके अनुसार केवल संसद् को यह अधिकार प्राप्त है कि मूल अधिकारों के अन्तर्गत जो अपराध माने गये हैं, उन पर वह दंड दे सके। खंड (क) के उपखंड (१) में दी हुई कुछ बातों के सम्बन्ध में केवल संसद् कानून बना सकती है।

भारत में बन्दी प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी लेख (The Writ of Habeas Corpus in India)—बन्दी प्रत्यक्षीकरण के लिये अंग्रेजी में हबियस कारपस शब्द उपयोग किया जाता है, जिसका अर्थ होता है, शरीर उपस्थित करना। इंग्लेंड में बन्दी प्रत्यक्षीकरण की आज्ञा उच्च न्यायालय देता है, जिसका उद्देश्य यह होता है कि बन्दी को न्यायालय में उपस्थित किया जाय। इस लेख या आज्ञा द्वारा न्यायालय बन्दी को न्यायालय में बुला सकता है, जिससे कि वह प्रत्यक्ष जांच द्वारा यह निश्चित कर सके कि वह व्यक्ति कानून के अनुसार बन्दी किया गया है अथवा नहीं। तब न्यायालय कानूनी कार्यवाही कर सकता है। इस प्रकार इंग्लेंड के संविधान में बन्दी प्रत्यक्षीकरण का लेख नागरिकों की स्वतन्त्रता का बड़ा भारी संरक्षक है। यदि कोई व्यक्ति गैरकानूनी तरीके से बन्दी

किया गया है तो वह न्यायालय के लेख द्वारा अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है और गैरकानूनी काम करनेवाले व्यक्ति को न्यायालय से दंड दिला सकता है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश संविधान में बन्दी प्रत्यक्षीकरण का लेख कानून की सत्ता का बड़ा भारी संरक्षक है। इंग्लैंड में कानून की सत्ता बहुत हद तक इसीलिये सम्भव हो सकी है कि न्यायालय को लेख देने का अधिकार प्राप्त है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी लेख बहुत पुराना था। यह अधिकारपूर्ण लेख (Prerogative Writ) कहलाता है, क्योंकि यह सम्राट् या राजा का अधिकार वह अपनी प्रजा के बन्दी होने का कारण जान सके।

भारत में पाहिले केवल कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के उच्च न्यायालयों को वन्दी प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी लेख जारी करने का अधिकार था। सन् १९२७ में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने यह मत दिया कि भारतीय दंड कानून (Criminal Procedure Code) की धारा ४९१ के अनुसार वन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार विधानमंडल ने उच्च न्यायालय से छीन लिया था। यद्यपि इस सम्बन्ध में बम्बई और मद्रास के उच्च न्यायालयों का मत भिन्न था, लेकिन सन् १९३९ में प्रिवी काउन्सिल ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के मत का समर्थन किया। प्रिवी काउन्सिल का मत यह था कि सन् १८९८ के दंड-विधान की धारा ४९१ के अन्तर्गत आनेवाली बातों के सम्बन्ध में बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार उच्च न्यायालय के हाथ से विधानमंडल ने ले लिया था। इसलिये धारा ४९१ के अन्तर्गत आनेवाली बातों के सम्बन्ध में संरक्षण उसी धारा के आधार पर प्रार्थना करने से मिल सकता था। उस धारा के अनुसार उच्च न्यायालय को यह अधिकार था कि अपने अपील कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में उक्त न्यायालय वन्दी प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी लेख जारी कर सकता था।

लेकिन नये संविधान में बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार उच्चतम न्यायालय और सब उच्च न्यायालयों को प्राप्त हैं तथा उन सब न्यायालयों को प्राप्त होगा, जिन्हें संसद यह अधिकार दे दे। इसलिये नये संविधान के अन्तर्गत इस प्रकार के लेख देने के अधिकार संविधान की धाराओं से प्राप्त होगा। ब्रिटिश संविधान की तरह पुरानी प्रथाओं और पुराने उदाहरणों के अनुसार नहीं। साथ ही

न्यायालयों को यह विचार करने का अधिकार होगा कि कोई भी कानून वैधानिक है अथवा नहीं। ध्यान रहे कि इंग्लैंड में न्यायालयों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। इंग्लैंड में न्यायालयों को पार्लियामेंट के बनाये हुए किसी कानून को अवैध घोषित करने का अधिकार नहीं है, यद्यपि वे यह कह सकते हैं कि किसी कानून के अन्तर्गत अधिकारियों द्वारा बनाये गये नियम, उस कानून के विरोधी हैं।

परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण-लेख (The Writs of Mandamus, Prohibition, Quo-Warranto and Certiorari)—संविधान प्रारम्भ होने के पहले केवल कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के उच्च न्यायालय प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण सम्बन्धी लेख तथा परमादेश सम्बन्धी आज्ञा प्रेसिडेन्सी शहरों में जारी कर सकते थे, लेकिन अब संविधान के अनुसार उच्चतम न्यायालय सारे देश में यह महत्त्वपूर्ण लेख जारी कर सकता है। साथ ही संविधान उच्च न्यायालयों को भी अपने अधिकार-क्षेत्रों में ये लेख जारी करने का अधिकार देता है, (देखो अनुच्छेद २२६)। उच्चतम न्यायालय ये लेख केवल मूल अधिकारों की रक्षा के लिये जारी कर सकता है, लेकिन उच्च न्यायालय इन्हें सब उपयुक्त कामों के लिये जारी कर सकते हैं और उनमें मूल अधिकार भी शामिल रहेंगे, इन लेखों का उद्देश्य अधिकारों का दुरुपयोग रोकना है।

परमादेश का लेख (The Writ of Mandamus)—परमादेश द्वारा किसी व्यक्ति अथवा संस्था को अपना कर्त्तव्य करने की आज्ञा दी जाती है। मान लो मजदूर कानून के अनुसार किसी कारखाने का यह कर्त्तव्य है कि वह उस मजदूर को हरजाना देगा, जिसे काम करते समय चोट लग गई हो। अब यदि कोई कारखाना अपना यह कर्त्तव्य पालन नहीं करता, तो हाईकोर्ट उसे परमादेश द्वारा किसी घायल मजदूर को हरजाना देने की आज्ञा दे सकता है।

प्रतिषेध का लेख (The Writ of Prohibition)—प्रतिषेध का लेख प्रायः उच्च न्यायालय द्वारा अपने अधीन न्यायालय को किसी मुकदमे में कार्य स्थगित करने को दिया जाता है। यह लेख इस आधार पर दिया जाता है कि अधीन न्यायालय अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर कार्य कर रहा है, अथवा वह स्वाभाविक न्याय का उल्लंघन कर रहा है। एक उच्च न्यायालय अपने अधीन

न्यायालय को यह लेख जारी कर सकता है। वह कह सकता है कि अमुक मुकदमा उसके अधिकार क्षेत्र के बाहर है, इसलिये उसकी सुनवाई वह बन्द कर दे। इसी प्रकार उच्च न्यायालय किसी न्यायाधीश के ऊपर भी यह लेख, यह कहकर जारी कर सकता है कि वह स्वाभाविक न्याय के नियमों का उल्लंघन कर रहा है। यदि कोई न्यायाधीश किसी ऐसे मुकदमे की सुनवाई कर रहा है, जिसमें स्वयं उसका स्वार्थ है, तो उन्च न्यायालय उस न्यायाधीश पर भी यह लेख जारी कर सकता है।

प्रतिषेध का लेख उन सार्वजनिक संस्थाओं पर भी जारी किया जा सकता है, जिन्हें न्याय सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं हैं। पर जो न्याय जैसे निर्णय (Quasi-Judicial Decisions) किया करती हैं। मान लो किसी जिला बोर्ड को किसी जमीन के मूल्य के सम्बन्ध में सब पक्ष के लोगों को सुनने के बाद न्याय जैसा निर्णय करना है। यदि वह जिला बोर्ड ऐसा निर्णय एक पक्ष को सुनने के बाद अथवा बिना सब पक्षों को सुने अपना निर्णय देता है, तो उसके विरुद्ध इस आधार पर प्रतिषेध का लेख जारी किया जा सकता है कि उसने न्याय के स्वाभाविक नियमों का उल्लंघन किया है।

उत्प्रेषण लेख (The Writ of Certiorari)—प्रायः उत्प्रेषण-लेख किसी मुकदमे को निम्न न्यायालय से उच्च न्यायालय में भेजने के लिये जारी किया जाता है, जिससे वह अपनी शक्ति से बाहर अधिकारों का उपयोग न करे। बहुधा प्रतिषेध और उत्प्रेषण के लेख एक साथ जारी किये जाते हैं। उत्प्रेषण-लेख जिला बोर्ड और कारपोरेशन जैसी सार्वजनिक संस्थाओं के सम्बन्ध में भी तब जारी किया जा सकता है, जब इन संस्थाओं को न्याय जैसे निर्णय करने पड़ते हैं।

अधिकार पृच्छा का लेख (The Writ of Quo-Warranto)—जब कोई व्यक्ति किसी सार्वजनिक पद को गैर कानूनी तरीके से अथवा जबर्दस्ती ले लेता है, तब उसके विरुद्ध अधिकार-पृच्छा का लेख जारी किया जाता है। मान लो किसी सार्वजनिक पद पर किसी ऐसे व्यक्ति कि नियुक्ति होती है, जिसकी आयु ७० वर्ष की है। अब यदि उस पद के सम्बन्ध में अवकाश ग्रहण करने की निर्धारित आयु ७० वर्ष से कम है, तो उपरोक्त उच्च न्यायालय उस व्यक्ति के विरुद्ध

अधिकार-पृच्छा का लेख जारी कर सकता है और उस पद को खाली घोषित कर सकता है।

भारत में कानून की सत्ता (Rule of Law In India)—यह कहा जा सकता है कि अनुच्छेद १४, १९, २१ और ३१ (पीछे देखो) मिलकर भारत में कानून की सत्ता स्थापित करते हैं। ग्रेट-ब्रिटेन और अमेरिका में कानून की सत्ता के दो अर्थ होते हैं—(१) जब तक साधारण न्यायालय में यह सिद्ध न हो जाय कि किसी व्यक्ति ने कानून का उल्लंघन किया है, तब तक उसके जीवन, सम्पत्ति और स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं किया जा सकता; और (२) कोई भी व्यक्ति (राजा को छोड़कर) कानून से परे नहीं है। अर्थात् सब व्यक्ति चाहे वे किसी भी स्थिति के हों और चाहे किसी भी पद पर क्यों न हों, कानून का उल्लंघन करने पर समान रूप से दंड के भागी होंगे।

ध्यान रहना चाहिये कि अनुच्छेद २१ में केवल "जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता" का उल्लेख किया गया है, सम्पत्ति का उल्लेख नहीं किया गया है। उसमें कहा गया है कि "किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जायेगा।' परन्तु अनुच्छेद १९ और अनुच्छेद ३१ से साफ जाहिर हो जाता है कि कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति से विधि द्वारा स्थापित अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

संविधान सभा में "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" शब्दों पर बहुत विवाद हुआ था। बहुत से सदस्यों का यह मत था, और इनमें मसविदा समिति (Drafting Committee) के एक सदस्य भी थे, कि ये शब्द न्यायालयों का अधिकार-क्षेत्र एकदम सीमित कर देते हैं और विधानमंडलों को किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता अपहरण करने का अथवा उसे सीमित करने का मनचाहा अधिकार दे देते हैं। इन आलोचकों ने यह बात ठीक ही कही थी कि यदि ये शब्द रखे गये तो न्यायालयों को केवल यह देखने का अधिकार रहेगा कि यदि कोई व्यक्ति कैद में या नजरबन्दी में रखा गया है तो वह कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के आधार पर रखा गया है अथवा नहीं। स्वयं उस कानून के सम्बन्ध में कहने का

कुछ अधिकार न रहेगा कि वह कानून न्यायोचित है अथवा नहीं। इसलिये एक बार जब विधानमंडल कोई कानून बना देगा तो न्यायालय केवल दर्शक की तरह रह जायँगे। उन्हें केवल यह देखने का अधिकार रहेगा कि किसी मामले में कानून का पालन किया गया है अथवा नहीं। वे यह नहीं देख सकते कि स्वयं कानून न्यायोचित है अथवा नहीं। इसलिये आलोचकों का कहना यह था कि "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" ("Except According to Procedure Established by Law") शब्दों की जगह "विधि की उचित क्रिया को छोड़कर" ("Without Due Process of Law") शब्द होने चाहिये।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि संविधान सभा (Constituent Assembly) ने जो मंत्रणामंडली नियुक्त की थी, उसने इस अनुच्छेद के लिये "विधि की उचित प्रक्रिया को छोड़कर" शब्दों की ही सिफारिश की थी। लेकिन मसविदा समिति (Drafting Committee) ने इन शब्दों की जगह "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" शब्द रखे। समिति का मत था कि ये शब्द अर्थात् "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" अधिक स्पष्ट और सुनिश्चित थे। समिति ने कहा कि जापान के संविधान में यही शब्द रखे गये हैं।

"विधि की उचित प्रक्रिया को छोड़कर" शब्द अमेरिका के संविधान में हैं। अमेरिकन संविधान के ५ वें और १४ वें संशोधनों में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति के जीवन, स्वाधीनता और सम्पत्ति का अपहरण "विधि की उचित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से न होगा।" अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने "विधि की उचित प्रक्रिया को छोड़कर" शब्दों का अर्थ यह लगाया है कि न्यायालय न केवल प्रक्रिया की जांच कर सकते हैं, वरन् वे विधानमंडल के अधिकार-क्षेत्र का भी विचार कर सकते हैं और स्वयं कानून का भी विचार कर सकते हैं। वे किसी कानून को इस आधार पर अमान्य घोषित कर सकते हैं कि वह नागरिकों की व्यक्तिगत स्वाधीनता का अनुचित रूप से अतिक्रमण करता है।

यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद २१ भारत के न्यायालयों को ऐसा कोई अधिकार नहीं देता। इस अनुच्छेद के शब्दों से साफ जाहिर होता है कि व्यक्तिगत

स्वाधीनता के सम्बन्ध में भारतीय न्यायालयों को स्वयं कानून पर विचार करने का अधिकार नहीं रहेगा। उदाहरण के लिये यदि कोई विधानमंडल यह कानून बनाता है कि कुछ खास तरह के मुकदमों का न्यायालयों में विचार नहीं हो सकता, तो न्यायालय उस कानून पर यह कह कर विचार नहीं कर सकते कि वह नागरिकों की व्यक्तिगत स्वाधीनता पर आघात करता है। यदि न्यायालयों का यह मत है कि कोई कानून दंड प्रणाली में ऐसे परिवर्तन कर देता है, जिससे कुछ मामलों में न्याय प्राप्त नहीं हो सकता, तो भी उन्हें उस कानून को अमान्य घोषित करने का अधिकार नहीं रहेगा। इस प्रकार कुछ बातों में अनुच्छेद २१ न्यायालयों पर विधानमंडलों का उच्च प्रभाव स्थापित कर देता है। नये संविधान के अनुसार भारत में अमेरिका की तरह कानून की स्थापना नहीं हो सकती, क्योंकि व्यक्तिगत स्वाधीनता से सम्बन्ध रखनेवाले कानूनों पर न्यायालय विचार नहीं कर सकते।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि भारतीय न्यायालयों को विधानमंडलों के बनाये हुए कानूनों को अवैध घोषित करने का अधिकार नहीं है। वास्तव में भारतीय न्यायालयों को विधानमंडलों के बनाये हुए कानूनों को अवैध घोषित करने के विस्तृत अधिकार दिये गये हैं। ध्यान रहे कि भारत का नया विधान संघात्मक है, और संघ शासन की एक मूल विशेषता यह होती है कि उसमें न्याय प्रणाली को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। यदि किसी राज्य सरकार का बनाया हुआ कानून संघ-शासन के क्षेत्र में दखल देता है, तो उच्चतम न्यायालय उसे अवैधानिक और अमान्य घोषित कर सकता है। यही बात राज्य-शासन के सम्बन्ध में संघ के बनाये हुए कानून पर भी लागू होती है। फिर यदि कोई कानून संविधान के किसी लिखित धारा का अतिक्रमण करता है तो न्याय-शासन उसे अमान्य घोषित कर सकता है। उदाहरण के लिये यदि कोई कानून नागरिकों के सभा करने अथवा संघ बनाने अथवा अबाध संचरण के अधिकार पर अनुचित शर्तें लगाता है, तो न्याय-शासन उसे अवैधानिक घोषित कर सकता है।

अनुच्छेद २१ की त्रुटि कुछ हद तक अनुच्छेद २२ में दूर कर दी गई है। अनुच्छेद २२ में कहा गया है कि जो व्यक्ति गिरफ्तार किया जायगा, उसे अपने मन के वकील की राय लेने का मौका दिया जायगा और गिरफ्तारी के

२४ घंटे के अन्दर उसे सबसे नज़दीक के न्यायाधीश के सामने पेश किया जायगा। इस मियाद में वह समय शामिल नहीं है, जो उसे अदालत तक जाने में लगेगा। यह बात जरूर है कि ये शर्तें उन गिरफ्तारियों में लागू नहीं होतीं, जो निवारक-निषेध के सम्बन्ध में होंगी। परन्तु अन्य प्रकार की गिरफ्तारियों के सम्बन्ध में नागरिकों के अधिकार को कोई कानून नहीं छीन सकता। यदि कोई कानून ऐसा करेगा तो वह अमान्य माना जायगा। इन अधिकारों के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि सन् १८९८ की दंडशासन प्रणाली (Criminal Procedure Code) में भी इसी प्रकार के अधिकार हैं। लेकिन दंड-विधान में संसद आसानी से संशोधन करके इन अधिकारों को बदल सकती है। लेकिन संविधान को संसद इतनी आसानी से नहीं बदल सकती। इसलिये इन अधिकारों को दंड-विधान में रहने की अपेक्षा संविधान में रखने से अधिक संरक्षण मिल गया है।

नवां अध्याय

राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व

(Directive Principles of State Policy)

हमारे संविधान में राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व सम्बन्धी अनुच्छेद एक नई विशेषता है। ये अनुच्छेद संविधान के भाग ४ में रखे गये हैं। अनुच्छेद ३७ में स्पष्टरूप से कहा गया है कि "इस भाग में दिये गये उपबन्धों को किसी न्यायालय द्वारा बाध्यता न दी जा सकेगी, किन्तु तो भी इनमें दिये हुए तत्त्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्त्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। अनुच्छेद ३८ में कहा गया है कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, राष्ट्रीय जीवन की सभी

संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक कार्य साधक रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक-कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा। इस भाग के अन्य सभी अनुच्छेद प्रायः इसी अनुच्छेद की विशद व्याख्या करते हैं। अनुच्छेद ३९, ४१, ४२, ४३, ४६, ४७ और ४८ प्रधानतः आर्थिक बातों से सम्बन्ध रखते हैं। उनमें कहा गया है कि राज्य अपनी नीति का विशेषरूप से ऐसा संचालन करेगा कि सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। देश के साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा होगा, जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो। आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिये अहितकारी केन्द्रण न हो। पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिये समान वेतन हो। श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो तथा आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े, जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों। शैशव और किशोर अवस्था का शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण हो। राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अंगहानि तथा अन्य अभाव की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का यथाशक्ति प्रयत्न करेगा। राज्य काम की यथोचित् और मानवोचित् दशाओं का तथा प्रसूति सहायता के लिये उपबन्ध करेगा। राज्य कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सब श्रमिकों को काम, निर्वाह-मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर, तथा अवकाश और आराम के समुचित उपभोग की दशाओं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति की दशाओं को प्राप्त कराने का प्रयत्न करेगा तथा विशेषरूप से ग्रामों में कुटीर उद्योग को वैयक्तिक अथवा सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा। राज्य जनता के दुर्बल वर्गों विशेषकर अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों की शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय और शोषणों से उनकी रक्षा करेगा। राज्य आहार, जीवन तथा स्वास्थ्य के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करेगा तथा हानिकर नशा सम्बन्धी वस्तुओं का प्रचार

रोकेगा। राज्य पशुपालन की अच्छी प्रणालियों का प्रचलन करेगा और दुधारू गायों, बछड़ों और अच्छे बैलों का वध बन्द करेगा।

अनुच्छेद ४० में कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करेगा और उन्हें ऐसे अधिकार देगा, जिससे वे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें। अनुच्छेद ४४ में कहा गया है कि भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में नागरिकों के लिये राज्य एक समान व्यवहार संहिता (Civil Code) बनाने की कोशिश करेगा। अनुच्छेद ४५ के अनुसार राज्य संविधान प्रारम्भ होने के १० वर्ष के भीतर १४ वर्ष तक के सब बालकों को अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा देने का प्रबन्ध करने की कोशिश करेगा। अनुच्छेद ४९ राज्य को यह आदेश देता है कि जिन ऐतिहासिक और कला तथा संस्कृति सम्बन्धी स्थानों को संसद राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित कर दे, उनकी राज्य रक्षा करेगा। अनुच्छेद ५० यह आदेश देता है कि राज्य की लोक-सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के लिये राज्य अग्रसर होगा।

अनुच्छेद ५१ का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा से है। उसमें कहा गया है कि राज्य--

(क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का ;

(ख) राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का ;

(ग) संघटित लोगों के, एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का ; तथा

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों की मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।

क्या ये उपबन्ध अर्थहीन है ? (Are these Provisions Meaningless ?)—संविधान के इस भाग की आलोचना यह कह कर की गई है कि इसमें केवल कुछ मह उद्देश्य रखे गये हैं। कहा जाता है कि इन उद्देश्यों को संविधान में जोड़ना व्यर्थ ही हुआ, क्योंकि उन पर न्यायालयों के द्वारा अमल नहीं कराया जा सकता। इस आलोचना के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि इन सिद्धान्तों में कुछ उच्च आदर्शों का समावेश है। संविधान में रहने से

वे राज्य को सदा यह याद दिलाते रहेंगे कि उसे अपनी नीति इस ढंग से स्थिर करनी चाहिये तथा अपने कार्य इस प्रकार करने चाहिये कि इन आदर्शों का अधिक से अधिक पालन होता रहे। यह कहना उचित होगा कि ये धाराएं राज्य के नाम जनता का लिखित अनुदेश (Instrument of Instructions) हैं। जनतंत्र में समय-समय पर जनमत के अनुसार विभिन्न दलों की सरकारें बनती रहती हैं। इसलिये जनमत में परिवर्त्तन के अनुसार भारत में विभिन्न दलों की सरकारें बन सकती हैं। किसी समय किसी अनुदार दल की सरकार बन सकती है और किसी समय एक उग्र दल की सरकार बन सकती है। परन्तु संविधान में इन सिद्धान्तों के रहने से यह आशा की जा सकती है कि अनुदार दल अपनी नीति निर्धारित करते समय इन सिद्धान्तों का एकदम त्याग नहीं करेंगे और साथ ही उग्र दल भी अपना आर्थिक अथवा अन्य कार्यक्रम पूरा करने के लिये इस संविधान की उपेक्षा करना आवश्यक नहीं समझेगा।

ऐसी बात नहीं है कि संसार के अन्य किसी देश के संविधान में हमारे 'राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों' के समान सिद्धान्त न हों। आयरलैंड के संविधान में इस तरह के कुछ सिद्धान्त हैं।

दसवां अध्याय

राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति

(The President And The Vice-President)

संविधान कहता है कि भारत का एक राष्ट्रपति और एक उप-राष्ट्रपति होगा। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचक गण (Electoral College) के सदस्य करेंगे, जिसमें (क) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य; तथा (ख) राज्यों के विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य होंगे। राष्ट्रपति का निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय-मत द्वारा होगा (in accordance with the system of proportional representation by means of single transferable vote)। यह निर्वाचन गुप्त मतदान प्रणाली (Secret Ballot) द्वारा होगा। राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिये किसी व्यक्ति को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी चाहिये— (१) वह भारत का नागरिक हो। (२) वह ३५ वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो। (३) लोक-सभा के लिये सदस्य निर्वाचित होने की शर्तें पूरी करता हो। (४) भारत-सरकार अथवा राज्य-सरकार के अधीन, अथवा इन सरकारों में से किसी के नियंत्रित स्थानीय, या किसी अन्य अधिकारी के अधीन कोई लाभ के पद (Office of Profit) पर न हो। लेकिन इस सम्बन्ध में कोई व्यक्ति लाभ का पद धारण किये हुए केवल इसी कारण नहीं समझा जायगा कि वह भारत का राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख या उप-राजप्रमुख है। अथवा संघ या किसी राज्य का मन्त्री है। तात्पर्य यह है कि राष्ट्रपति के चुनाव के सम्बन्ध में ये पद लाभ के पद नहीं समझे जायँगे। राष्ट्रपति को १०,००० रु० मासिक वेतन तथा अन्य भत्ते भी मिलेंगे। उसे एक सरकारी निवास स्थान भी मिलेगा, जिसका उसे किराया नहीं देना पड़ेगा।

राष्ट्रपति के पद की अवधि ५ वर्ष है। वह अन्य कोई लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकता। वह संसद के किसी सदन का अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन का सदस्य न होगा। यदि इन संस्थाओं का कोई सदस्य राष्ट्रपति के पद के लिये निर्वाचित हो जाय तो पद ग्रहण करते ही उसकी सदस्यता समाप्त हो जायगी। राष्ट्रपति अपना त्यागपत्र अपने हस्ताक्षरों द्वारा उप-राष्ट्रपति के पास भेज सकता है। संविधान के अतिक्रमण के लिये राष्ट्रपति पर महाभियोग (Impeachment) चलाया जा सकता है और दोष सिद्ध होने पर वह पदच्युत किया जा सकता है। महाभियोग चलाना हो तो संसद का कोई एक सदन दोषारोप करेगा और दूसरा सदन उसका जाँच करेगा या करायेगा। जो सदन जांच करता है या कराता है, यदि वह दो तिहाई बहुमत से इस आशय का प्रस्ताव पास करता है कि राष्ट्रपति पर लगाये गये दोष सिद्ध हो गये, तो इसका अर्थ यह होगा कि प्रस्ताव पास करने की तिथि से राष्ट्रपति पदच्युत हो गया।

राष्ट्रपति की कार्य-शक्ति (The President's Powers)—संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में रहेगी और वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा। लेकिन संविधान यह भी कहता है कि "राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रि-परिषद् होगी, जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री होगा।" इसलिये संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक है कि वह अपना कार्य मंत्रि-परिषद् की सलाह से करेगा। परन्तु इस सम्बन्ध में महत्व-पूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वह हमेशा मंत्रि-परिषद् की सलाह मानने के लिये बाध्य होगा। अर्थात् क्या वह नाममात्र का कार्यपालिका का प्रधान होगा अथवा उसके हाथ में कुछ वास्तविक शासन-शक्ति भी होगी?

यह बात तो स्पष्ट है कि संविधान यह नहीं कहता कि राष्ट्रपति अपनी मंत्रि-परिषद् की सलाह मानने को हमेशा बाध्य रहेगा। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि ब्रिटेन की वैधानिक प्रथा भारत में भी लागू होगी। ब्रिटिश संविधान के अनुसार राजा केवल वैधानिक प्रधान है। वह सब कार्य अपनी मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार करता है। ब्रिटेन में यह बहुत पुरानी प्रथा है। परन्तु

भारत में न तो ऐसी कोई प्रथा ही है और न संविधान ही स्पष्टरूप से कहता है कि वह मंत्रि-परिषद् की सलाह मानने को वाध्य होगा। इसलिये हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि राष्ट्रपति केवल एक वैधानिक प्रधान न रहेगा। उसके हाथ में कुछ वास्तविक शक्ति भी रहेगी। लेकिन यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि सीमा क्या होगी।

यह तो स्पष्ट है कि साधारण दिन प्रति दिन के शासन में राष्ट्रपति कोई दखल नहीं देगा। साधारणतः वह अपनी मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार ही काम करेगा। क्योंकि संविधान के अनुसार मंत्रि-परिषद् संसद् के निम्न सदन अर्थात् लोक-सभा (House of People) के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार होगी। इसलिये मंत्रि-परिषद् ऐसी होगी जिस पर लोक-सभा का विश्वास हो। यदि शासन की साधारण और दिन प्रति दिन की वातों में राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद् की सलाह नहीं मानता तो मंत्रि-परिषद् अपना पद त्याग सकता है और तव राष्ट्रपति को दूसरी मंत्रि-परिषद् नियुक्त करनी पड़ेगी। परन्तु सम्भव है कि उसे दूसरी मंत्रि-परिषद् न मिले। क्योंकि नयी मंत्रि-परिषद् भी ऐसी होनी चाहिये, जिस पर लोक-सभा का विश्वास हो। परन्तु जो राष्ट्रपति साधारण बातों में मंत्रि-परिषद् की सलाह नहीं मानता, उससे लोक-सभा भी नाराज हो जायगी और वह उसके लिये ऐसी नयी मंत्रि-परिषद् बनाना असम्भव कर देगी, जिस पर उसका विश्वास हो।

परन्तु किसी विशेष परिस्थिति में राष्ट्रपति अपने मंत्रिमंडल की सलाह की उपेक्षा करके अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता है। मंत्रि-परिषद् के समान राष्ट्रपति भी जनता का निर्वाचित प्रतिनिधि है और विशेष या संकटपूर्ण परिस्थिति में वह मंत्रि-परिषद् की सलाह की उपेक्षा करके अपने निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है। जनता ने जव उसे अपना प्रतिनिधि चुना, तब उसने पद ग्रहण करते समय यह शपथ ग्रहण की थी कि वह संविधान और कानून की रक्षा तथा उसका पालन करेगा और भारत के लोगों की सेवा और भलाई में लीन रहेगा। इस शपथ तथा जनता के इस विश्वास को पूरा करने के लिये वह सच्चे दिल से कभी किसी परिस्थिति-विशेष में अपने निर्णय के अनुसार काम कर सकता है। वह कह सकता है कि मेरी राय में देश की सच्ची भलाई मेरे निर्णय में ही है।

एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। मान लो मंत्रि-परिषद् कहती है कि लोक-सभा का विघटन (Dissolution) कर दिया जाय और राष्ट्रपति इस सलाह को नहीं मानता। वह कह सकता है कि विघटन मंत्रि-परिषद् के लिये सुविधापूर्ण हो सकता है, परन्तु राष्ट्र के लिये हितकारी न होगा। बहुत से देशों में विघटन का अधिकार शासन के प्रधान का ही एक अधिकार-विशेष माना जाता है और उसके द्वारा वह प्रजातन्त्र प्रणाली में मंत्रि-परिषद् और संसद में सन्तुलन रखता है। उदाहरण के लिये दक्षिण-अफ्रिका में राजा अथवा उसका प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार काम करता है, परन्तु कुछ बातों में गवर्नर-जनरल अपने निर्णय के अनुसार भी काम कर सकता है और इन बातों में संसद का विघटन भी शामिल है। इसी प्रकार आयरलैंड के संविधान में भी साधारणतः राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की सलाह के अनुसार कार्य करता है, लेकिन 'डेल' अर्थात् उस देश की संसद को विघटित करने की सलाह मानने को वह बाध्य नहीं है। इस सम्बन्ध में वह मंत्रियों की सलाह की उपेक्षा कर सकता है।

लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिये कि संविधान का अतिक्रमण करने के लिये संसद राष्ट्रपति पर महाभियोग लगा सकती है और उसे पदच्युत कर सकती है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि संसद के इस अधिकार को ध्यान में रखकर राष्ट्रपति कभी तानाशाह की तरह काम करने का साहस न करेगा। यदि संसद राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाती है, तो ऐसी अन्य कोई संस्था नहीं है, जिसके सामने राष्ट्रपति अपील कर सके। संविधान का उद्देश्य तो सहज ही समझ में आ जाता है। उसका उद्देश्य यह है कि भारत में ऐसा गणतन्त्र स्थापित हो, जिसमें शासन तन्त्र जनता की इच्छा के अनुसार चले। इसमें तो संदेह नहीं कि संघ में जो मंत्रि-परिषद् होगी, वह लोक-सभा की विश्वासपात्र होगी। इसलिये साधारणतः वह संघ के जनमत की प्रतिनिधि समझी जावेगी। इसलिये जो राष्ट्रपति संविधान के शब्दों और उद्देश्यों को भली-भांति समझता है, वह साधारणतः मंत्रि-परिषद् की राय की उपेक्षा नहीं करेगा।

लेकिन जिस राष्ट्रपति का प्रभावशाली व्यक्तित्व होगा, उसकी शक्ति काफी अधिक रहेगी। जनता का निर्वाचित प्रतिनिधि होने के कारण उसका प्रभाव तो

अधिक रहेगा ही। साथ ही अपने व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण मंत्रि-परिषद् के निर्णयों पर भी उसका प्रभाव कम न रहेगा। मंत्रि-परिषद् की निर्णयों पर राष्ट्रपति का प्रभाव जानने के लिये हमें केवल यह याद रखना है कि संविधान ने संघ सरकार को कितनी अधिक शासन शक्ति दे रखी है। प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी। यदि संसद में दो से अधिक ऐसे दल हैं, जिनमें से किसी एक का निश्चित बहुमत (Absolute Majority) नहीं है, तो राष्ट्र-पति को अपनी इच्छानुसार प्रधान मंत्री नियुक्त करने का काफी मौका रहेगा। एक के बदले दूसरे दल का मुखिया चुनकर वह सरकार के संगठन में तथा उसकी नीति निर्धारण में काफी हाथ रखेगा।

राष्ट्रपति की इस व्यापक शक्ति को ध्यान में रखते हुए अब हमें उसके उन विशिष्ट अधिकारों को देखना चाहिये, जो संविधान द्वारा उसे दिये गये हैं। सुविधा के लिये हम उसके अधिकारों को निम्नवर्गों में बांट सकते हैं – (१) कार्य-पालिका सम्बन्धी अधिकार ; (२) आकस्मिकता सम्बन्धी अधिकार ; (३) विधान सम्बन्धी अधिकार ; (४) वित्त सम्बन्धी अधिकार और (५) न्यायपालिका सम्बन्धी अधिकार।

कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार (Executive Powers)—जैसा कि कहा जा चुका है, राष्ट्रपति संघ शासन की कार्यपालिका का प्रधान (Executive Head) होगा। राष्ट्रपति संघ की सैनिक और सुरक्षा शक्ति का भी प्रधान होगा। इस अधिकार के बल पर उसे युद्ध और शान्ति की घोषणा करने का अधिकार होगा। संघ की कार्यपालिका शक्ति का सम्बन्ध उन बातों से होगा— (१) जिन पर संसद कानून बना सकती है ; (२) सन्धि और समझौते के कारण जो अधिकार या अधिकार-क्षेत्र भारत सरकार को प्राप्त हों। शासन को सुविधापूर्वक चलाने के लिये राष्ट्रपति नियम बनावेगा और शासन-कार्य को मंत्रियों में बाँट देगा। भारत-सरकार के सब कार्य राष्ट्रपति के नाम से होंगे।

आकस्मिकता सम्बन्धी अधिकार (Emergency Powers)— आकस्मिक परिस्थितियों का मुकाबिला करने के लिये राष्ट्रपति को विस्तृत अधिकार दिये गये हैं। संविधान में ३ प्रकार की आकस्मिकता का अनुमान किया गया

है और इन आकस्मिक परिस्थितियों का निवारण करने के लिये राष्ट्रपति को काफी अधिकार दिये गये हैं। ये तीन प्रकार की आकस्मिक परिस्थितियां निम्नलिखित हैं—

(१) युद्ध अथवा बाहरी आक्रमण अथवा आन्तरिक अशान्ति या अशान्ति का खतरा ; (२) राज्यों में वैधानिक शासन असफल होने से उत्पन्न परिस्थितियां ; और (३) आर्थिक या वित्तीय परिस्थितियां।

(१) अब हम पहले प्रकार की आकस्मिक परिस्थितियों पर विचार करेंगे। यदि राष्ट्रपति का यह निश्चित मत है कि भारत अथवा उसके कोई क्षेत्र की सुरक्षा को युद्ध, आक्रमण अथवा आन्तरिक अशान्ति का खतरा है, तो राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) कर सकता है। यदि राष्ट्रपति सोचता है कि यह खतरा उपस्थित हो गया है, अथवा किसी भी समय उपस्थित हो सकता है, तो वास्तविक घटना होने के पहिले ही वह इस प्रकार की घोषणा कर सकता है। बाद में एक दूसरी उद्घोषणा द्वारा आपात की उद्घोषणा समाप्त की जा सकती है। इस उद्घोषणा को संसद के प्रत्येक सदन के सामने पेश होना चाहिये और वह एक महीने के बाद समाप्त हो जायगी, यदि २ माह के अन्दर संसद का प्रत्येक सदन उसे स्वीकृति न दे।

लेकिन यह भी सम्भव है कि आपात की उद्घोषणा ऐसे समय में की जाय, जब लोक-सभा विघटित हो ; अथवा उद्घोषणा होने के २ महीने के भीतर लोक-सभा का विघटन हो सकता है। इस परिस्थिति में यदि राज्य-परिषद् (Council of States) उसे अपनी स्वीकृति दे देती है और लोक-सभा नहीं दे पाती तो नई लोक-सभा की पहिली बैठक के ३० दिन के भीतर वह उद्घोषणा समाप्त हो जायगी। लेकिन यदि इसी बीच में लोक-सभा भी उसे अपनी स्वीकृति दे देती है, तो वह जारी रहेगी।

आपात की उद्घोषणा का एक परिणाम यह होगा कि संघात्मक (Federal) संविधान करीब-करीब एकात्मक (Unitary) हो जायगा। क्योंकि जब तक आपात की उद्घोषणा जारी रहेगी, तब तक—

(१) संसद को सारे भारत अथवा उसके किसी भी क्षेत्र में उन सब विषयों पर कानून बनाने का अधिकार रहेगा, जो राज्यसूची (State List) में हैं।

और यदि इन कानूनों का राज्य के बनाये हुए कोई कानून विरोध करते हैं, तो उस हद तक उस राज्य के कानून अमान्य होंगे।

(२) संघ की कार्यपालिका शक्ति इतनी विस्तृत हो जायगी कि वह किसी भी राज्य को किसी भी सम्बन्ध में आदेश दे सकती है। वह राज्य को आदेश दे सकती है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति किस हद तक और किस तरह काम करेगी।

(३) संविधान द्वारा दिये गये निम्नलिखित मूल अधिकार स्थगित हो जायँगे, (क) विचार प्रकट करने की और भाषण देने की स्वतन्त्रता, (ख) शान्तिपूर्वक सभा करने की स्वतन्त्रता, (ग) संघ बनाने की स्वतन्त्रता, (घ) भारत के किसी भी भाग में अबाध रूप से आने-जाने की स्वतन्त्रता, (ङ) भारत के किसी भी भाग में निवास करने की स्वतन्त्रता, (च) सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने और बेचने की स्वतन्त्रता, (छ) कोई भी पेशा, व्यवसाय या जीविका उपार्जन करने की स्वतन्त्रता।

(४) राष्ट्रपति मूल अधिकारों की प्राप्ति या रक्षा के लिये न्यायालय में प्रार्थना करने का अधिकार भी स्थगित कर सकता है।

(५) संघ और राज्यों के बीच में आय वितरण सम्बन्धी जो नियम बनाये गये हैं, उन्हें भी राष्ट्रपति स्थगित कर सकता है।

इसमें सन्देह नहीं की युद्ध, आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न होनेवाली आकस्मिक परिस्थितियों का मुकाबिला करने के लिये राष्ट्रपति अथवा संघ की कार्यपालिका को जो अधिकार दिये गये हैं, वे अत्यन्त कड़े और विस्तृत हैं। सबसे अच्छा यह होगा कि राष्ट्रपति इन अधिकारों का उपयोग केवल मंत्रि-परिषद् की सलाह से करे। लेकिन कभी ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है। जब राष्ट्रपति इन कधिकारों का उपयोग मंत्रि-परिषद् से पूछे बिना अपने निर्णय के अनुसार भी कर सकता है। और जब हम इस बात को ध्यान में लाते हैं कि युद्ध अथवा आक्रमण की वास्तविक घटना के समय (अर्थात् केवल उसके खतरे पर) राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा कर सकता है, तो ऐसा लगता है कि वास्तविक गणतन्त्र में राष्ट्रपति को इतने निरंकुश अधिकार नहीं मिलने चाहिये। अर्थात् इतनी अधिक निरंकुशता और जनतंत्र में मेल कैसे बैठ सकता है। जब यह आलोचना की जाती है कि युद्ध या बाहरी आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति द्वारा उत्पन्न होनेवाली

आपात की परिस्थितियों का मुक़ाविला करने के लिये कार्यपालिका को विलकुल निरंकुशता के अधिकार दे दिये गये हैं, जिसका खंडन करना कठिन हो जाता है।

साथ ही इस वात को भी मानना ही पड़ता है कि कुछ नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की अपेक्षा सारे राज्य की सुरक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। आखिर नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा तो राज्य ही करता है और जव राज्य स्वयं नष्ट हो जायगा तो नागरिकों की स्वतन्त्रता का तो अस्तित्व ही न रहेगा। फिर हमें यह भी याद रखना चाहिये कि राज्यों की स्वतन्त्रता और सुरक्षा को आज जितना खतरा है, उतना पहिले कभी नहीं था। भारत का संविधान ऐसे समय में वना है, जव दो महायुद्ध संसार को क्षत-विक्षत कर चुके और तीसरे की सम्भावना हर घड़ी वनी रहती है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि संविधान निर्माताओं ने नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की अपेक्षा संकटकाल में राज्य को सुरक्षित और दृढ़ रखने पर अधिक महत्व दिया। इस वात की कल्पना सहज ही की जा सकती है कि साधारण समय में नागरिकों को जो स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है, यदि वह संकटकाल में भी रहे तो कुछ समाजद्रोही व्यक्ति उसका लाभ उठाकर राज्य तथा नागरिकों की स्वतन्त्रता दोनों का नाश कर देंगे।

अन्य देशों के संविधानों में भी मूल अधिकारों को स्थगित करने की धाराएं पाई जाती हैं। ब्रिटेन की पार्लियामेंट नागरिकों के कोई भी अधिकार स्थगित अथवा समाप्त कर सकती है, परन्तु अमेरिका में कांग्रेस अर्थात् संसद केवल एक मूल अधिकार अर्थात् वन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार स्थगित कर सकती है। परन्तु ब्रिटेन और अमेरिका में कार्यपालिका को कोई भी मूल अधिकार स्थगित करने की शक्ति नहीं दी गई है। केवल भारत में कार्यपालिका को यह शक्ति दी गई है। और इस दृष्टि से भारत का संविधान इन दोनों देशों के संविधानों से भिन्न है। भारत में कार्यपालिका को कुछ वहुत ही महत्वपूर्ण मूल अधिकार स्थगित करने की शक्ति प्राप्त है। क्योंकि जव आपात की उद्घोषणा की जायगी तो अपने आप कुछ मूल अधिकार स्थगित हो जायँगे। परन्तु यह शर्त रख दी गई है कि जव राष्ट्रपति यह आज्ञा जारी करे कि मूल अधिकारों के संरक्षण के लिये न्यायालय

में प्रार्थना नहीं की जा सकती, तो वह आज्ञा संसद में पेश की जायगी। इसका अर्थ यह हुआ कि संसद को इस आज्ञा के रद्द करने का अधिकार रहेगा।

फिर भी एक बात स्पष्ट है। आकस्मिक संकट का निवारण करने के लिये केन्द्रीय कार्यपालिका को जो अधिकार दिये गये हैं, वे एक तलवार की तरह हैं, जिससे नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा भी हो सकती है और नाश भी हो सकता है। इसलिये इस तलवार का उपयोग बहुत सावधानी के साथ करना चाहिये। जर्मनी के वैमार संविधान के अनुच्छेद ४८ में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया था कि भारी अशान्ति अथवा अन्य किसी संकटकाल में वह कुछ मूल अधिकारों को स्थगित कर सकता था। इस अनुच्छेद द्वारा दिये गये इस अधिकार का दुरुपयोग करके ही हिटलर ने जर्मन नागरिकों की स्वतन्त्रता का नाश कर दिया। इसलिये आकस्मिकता सम्बन्धी अधिकारों का उपयोग बहुत ही सोच-विचार कर करना चाहिये।

(१) अनुच्छेद ३५९ में वह धारा दी गई है, जिसके अनुसार आपात की उद्घोषणा की अवधि में यह आदेश जारी किया जा सकता है कि लोग मूल अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायालय में प्रार्थना नहीं कर सकते। जब संविधान सभा इस अनुच्छेद पर विचार कर रही थी, तब एक सदस्य ने उठकर कहा—"आज हमारे लिये लज्जा और शोक का दिन है। ईश्वर भारत के लोगों की रक्षा करे।" केवल भविष्य बतलावेगा कि उक्त सदस्य के ये शब्द कहां तक सच थे।

(२) अनुच्छेद ३५६ में कहा गया है कि यदि किसी राज्य का राज्यपाल अथवा राजप्रमुख राष्ट्रपति के पास इस आशय की रिपोर्ट भेजता है अथवा अन्य किसी जरिये से भी राष्ट्रपति यह समझता है और उसे विश्वास है कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि उस राज्य का शासन, संविधान की धाराओं के अनुसार चलना सम्भव नहीं है तो राष्ट्रपति एक उद्घोषणा द्वारा—(क) शासन के सब अथवा कुछ अधिकार अपने हाथ में ले सकता है। राज्यपाल, राजप्रमुख तथा अन्य संस्थाओं के शासन-अधिकार वह अपने हाथ में ले सकता है। केवल राज्य के विधानमंडल और उच्च न्यायालय के अधिकार वह अपने हाथ में नहीं ले सकता। (ख) यह घोषणा कर सकता है कि राज्य विधानमंडल के अधिकारों का उपयोग

संसद् करेगी अथवा संसद् के अन्तर्गत होगा। दूसरी उद्घोषणा द्वारा इस प्रकार की उद्घोषणा को समाप्त किया जा सकता है अथवा बदला जा सकता है। इस प्रकार की उद्घोषणा की अवधि २ मास की होगी। पर संसद् के दोनों सदन अपनी स्वीकृति द्वारा उस अवधि को बढ़ा सकते हैं। संसद् के दोनों सदनों की स्वीकृति मिल जाने पर उद्घोषणा की अवधि ६ महीने की हो जायगी। इस प्रकार ६ महीने की स्वीकृति बार-बार लेकर उद्घोषणा की अवधि ३ वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है। परन्तु ३ वर्ष से अधिक यह अवधि किसी भी हालत में नहीं बढ़ाई जा सकती।

लेकिन यह हो सकता है कि जब उद्घोषणा जारी की जाय, तब लोक-सभा विघटित हो अथवा उद्घोषणा होने के २ महीने के अन्दर ही लोक-सभा विघटित हो जाय। ऐसी परिस्थितियों में यदि राज्य-परिषद् उद्घोषणा को अपनी स्वीकृति दे चुकी है और (२ महीने पूरे होने के पहिले) लोक-सभा उसे अपनी स्वीकृति नहीं दे पाई है तो नई लोक-सभा की पहिले दिन की बैठक के ३० दिन के बाद वह उद्घोषणा समाप्त हो जायगी। परन्तु यदि इन ३० दिनों के भीतर लोक-सभा उद्घोषणा को अपनी स्वीकृति दे देती है, तो वह जारी रहेगी। यदि उद्घोषणा को संसद् के दोनों सदनों की स्वीकृति मिलने के बाद ६ महीने के अन्दर लोक-सभा विघटित हो जाय तो उस परिस्थिति के लिये भी इसी प्रकार की शर्त रख दी गई है।

यह ध्यान में रखना चाहिये कि किसी राज्य में शासन-प्रणाली असफल होने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को राज्यपाल या राजप्रमुख की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करनी आवश्यक नहीं है। वह अपने निर्णय के अनुसार भी कार्य कर सकता है। फिर अनुच्छेद ३६५ में लिखा हुआ है कि यदि संघ की कार्यपालिका नियमानुसार राज्य को कुछ आदेश देती है और राज्य उन्हें पूरा नहीं करता, तो राष्ट्रपति इसे भी संविधान शासन की असफलता कह सकता है। इसका अर्थ यह होता है कि यदि कोई राज्य संघ के आदेशों का पालन नहीं करता तो आपात की उद्घोषणा जारी की जा सकती है, राष्ट्रपति राज्यों के शासन अधिकार अपने हाथ में ले सकता है। इसलिये राज्य-शासन को स्थगित करने या अपने हाथ में लेने के लिये राष्ट्रपति को बहुत विस्तृत और कड़े अधिकार प्राप्त हैं।

सन् १९३५ के कानून के अन्तर्गत ऐसी परिस्थिति में प्रान्त के गवर्नर को कानून बनाने के अधिकार दे दिये जाते थे। परन्तु नये संविधान के अन्तगत ये अधिकार संघ की संसद को प्राप्त होते हैं। यह बहुत बड़ा अन्तर है। नये संविधान के अनुसार राज्य में जब वैधानिक शासन-प्रणाली असफल होगी, तो राज्य की कार्यपालिका को अपने आप विधानमंडल के कार्य अर्थात् कानून बनाने के अधिकार नहीं मिल जावेंगे। ये अधिकार संघ की संसद के हाथ में चले जावेंगे। लेकिन यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि संसद में उस राज्य के प्रतिनिधि भी रहेंगे। इस धारा में रहस्य यह है कि जब किसी राज्य में शासन-प्रणाली असफल हो जायगी तो उसके लिये शासन-प्रणाली सारे देश के प्रतिनिधियों द्वारा बनाई जानी चाहिये, केवल उसी राज्य के प्रतिनिधियों द्वारा नहीं। अनुच्छेद ३५७ में यह दिया हुआ है कि जब अनुच्छेद ३५७ के अनुसार उद्घोषणा द्वारा किसी राज्य के विधानमंडल के कानून बनाने के अधिकार संसद को प्राप्त हो जायँगे, तो उस राज्य के लिये कानून बनाने के अधिकार संसद राष्ट्रपति को अथवा किसी अन्य अधिकारी को दे सकती है। इस प्रकार संघ की कार्यपालिका उस राज्य के लिये कानून तब बना सकती है, जब संसद उसे यह अधिकार दे।

अनुच्छेद ३५६ और ३५७ द्वारा संघ की कार्यपालिका को जो विस्तृत अधिकार दिये गये हैं, उसका उपयोग बहुत सोच-समझ कर और बहुत ही कम करना चाहिये। इनका प्रयोग बहुधा करने से राज्यों की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी। संविधान निर्माताओं की यह इच्छा थी कि किसी राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में लेने के पहले राष्ट्रपति उसे चेतावनी देगा। यदि इस चेतावनी का कुछ असर न हो, तो राज्य में साधारण निर्वाचन होना चाहिये। यदि निर्वाचन के बाद भी नये सदस्य आवश्यक सुधार न कर सकें, तब राष्ट्रपति को शासन की बागडोर अपने हाथ में लेनी चाहिये। इसलिये यह आशा करनी चाहिये कि संविधान के निर्माताओं की यह धारणा पूरी की जावेगी।

(३) यदि राष्ट्रपति सोचता है कि कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, जिससे भारत की आर्थिक दृढ़ता और साख को खतरा है, तो वह इस सम्बन्ध में उद्घोषणा कर सकता है। यह उद्घोषणा एक दूसरी उद्घोषणा द्वारा समाप्त

हो सकती है। इस उद्घोषणा की अवधि भी २ माह की होगी। परन्तु यदि इसी बीच में संसद के दोनों सदन अपने-अपने प्रस्ताव द्वारा इसे स्वीकृति दे दें तो यह बढ़ भी सकती है। यदि यह उद्घोषणा ऐसे समय में हो, जब कि लोक-सभा विघटित हो चुकी हो अथवा लोक-सभा का विघटन उक्त २ महीने के भीतर हो जाय तो उसके सम्बन्ध में वही कार्यप्रणाली और नियम लागू होंगे जो कि आपात की उद्घोषणा के सम्बन्ध में। (देखो पीछे [1])

जब इस तरह की उद्घोषणा जारी रहेगी तो संघ की कार्यपालिका को यह अधिकार होगा कि वह किसी राज्य को कुछ निर्धारित आर्थिक नियम पालन करने का आदेश दे। राष्ट्रपति भी इस सम्बन्ध में राज्य को वित्त सम्बन्धी आदेश दे सकता है। इन आदेशों में ये बातें शामिल होंगी—(क) किसी भी वर्ग के सरकारी कर्मचारियों की तनख्वाहें और भत्ते कम करने का आदेश; (ख) यह आदेश कि राज्य के विधानमंडल में पास होने के बाद सब धन-विधेयक (Money Bills) अथवा सब प्रकार के वित्त-विधेयक (Financial Bills) राष्ट्रपति के द्वारा विचार करने के लिये भेजे जायँगे।

जब आर्थिक उद्घोषणा जारी रहेगी, तब राष्ट्रपति संघ शासन के सब कर्मचारियों के वेतन और भत्ते कम करने का आदेश दे सकता है। इन कर्मचारियों और पदाधिकारियों में उच्चतम न्यायालय के तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश भी शामिल रहेंगे।

विधायिनी शक्तियां (Legislative Powers)—कोई भी विधेयक जब संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित या पास हो जायगा, तब वह राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा जायगा। वित्त विधेयकों को छोड़कर अन्य सब प्रकार के विधेयकों को राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति देने से इनकार कर सकता है। परन्तु यदि राष्ट्रपति की स्वीकृति न मिलने पर जब कोई विधेयक संशोधित रूप में बिना संशोधन के संसद के दोनों सदनों द्वारा फिर से पास हो जाता है, तब राष्ट्रपति उसे स्वीकृति देने से इनकार नहीं कर सकता। सब प्रकार के वित्त-विधेयकों तथा धन-विधेयकों को संसद में पेश होने के पहिले राष्ट्रपति की सिफारिश मिलनी आवश्यक है।

यदि संसद के दोनों सदनों का अधिवेशन न होता हो, तो राष्ट्रपति को अध्यादेश (Ordinance) जारी करने का अधिकार है। इन अध्यादेशों का वही प्रभाव होगा, जैसा कि संसद के बनाये हुए कानूनों का होता है। प्रत्येक अध्यादेश संसद के दोनों सदनों के सामने पेश होना चाहिये और संसद का अधिवेशन आरम्भ होने के ६ हफ्ते बाद वह अध्यादेश समाप्त हो जायगा। यदि इन ६ हफ्तों के भीतर संसद के दोनों सदन उसे अस्वीकार करने के प्रस्ताव पास करते हैं, तो दूसरे प्रस्ताव के पास होते ही वह समाप्त हो जायगा।

(राज्यों के कानूनों के सम्बन्ध में भी राष्ट्रपति को कुछ विधायिनी शक्तियां प्राप्त हैं। इस सम्बन्ध में भाग (क) के प्रथम अनुसूची में राज्यों के विधानमंडलों सम्बन्धी अध्याय देखो)

वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)—प्रत्येक वित्तीय वर्ष (Financial Year) के आरम्भ में राष्ट्रपति संसद में एक विवरण पेश करेगा, जिसमें संघ की उस वर्ष की अनुमानित आय और व्यय का विवरण रहेगा। राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना अनुदान की मांग (Demand for Grant) नहीं की जा सकती।

आय कर से जो वसूली होगी उसका वितरण संघ और राज्यों के बीच में राष्ट्रपति ही करेगा। इसी प्रकार आसाम, बिहार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के जूट निर्यात कर से जो आय होगी, उसका वितरण भी अनुदान के रूप में राष्ट्रपति इन राज्यों के बीच में करेगा। राष्ट्रपति एक वित्तायोग (Finance Commission) नियुक्त करेगा। (इस सब बातों के सम्बन्ध में वित्त सम्बन्धी अध्याय देखो)

न्याय-शक्तियां (Judicial Powers)—निम्नलिखित बातों में सजा पाये हुए अपराधियों की सजाएं राष्ट्रपति स्थगित कर सकता है, कम कर सकता है और माफ कर सकता है। (१) उन सब बातों में जहां सजा, सेना न्यायालय (Court Martial) द्वारा मिली हो। (२) उन सब बातों में जहां सजा, ऐसे अपराध के लिये मिली हो, जिसका सम्बन्ध संघ की कार्यपालिका से सम्बन्धित कानून से हो। अर्थात् दंड किसी ऐसे कानून के उल्लंघन के लिये मिला हो, जिस

पर संघ की कार्यपालिका का नियंत्रण हो। (३) उन सब मामलों में जहां अपराध के लिये मृत्युदंड दिया गया हो।

अमेरिका और भारत के राष्ट्रपति (The American President and the President of India)—अमेरिका का राष्ट्रपति एक निर्वाचक गण (Electoral College) द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुना जाता है। भारत का राष्ट्रपति भी इसी रीति से निर्वाचित होता है। लेकिन अमेरिका में राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये एक विशेष निर्वचिक-गण बनाया जाता है। भारत में केवल संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य तथा राज्यों के विधानमंडलों के निर्वाचित सदस्य ही इस गण में शामिल रहते हैं। इसके विपरीत अमेरिका में संसद अर्थात् कांग्रेस के सदस्यों—सीनेट तथा हाउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव के सदस्य—को राष्ट्रपति के निर्वाचन में मतदान का अधिकार नहीं दिया गया है। अमेरिका और भारत दोनों देशों में राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जा सकता है। लेकिन अमेरिका में केवल उच्च सभा अर्थात् सीनेट महाभियोग पर विचार और जांच कर सकती है और भारत में यह नियम रखा गया है कि दो में से एक कोई सदन महाभियोग लगा सकता है और दूसरा सदन उस पर विचार करेगा। भारत के संविधान में यह दिया हुआ है कि एक बार राष्ट्रपति के पद पर रह चुकने के बाद कोई व्यक्ति दूसरी बार भी उस पद के लिये चुना जा सकता है। पहिले अमेरिका के संविधान में भी पुनर्निर्वाचन पर कोई वन्धन नहीं था। लेकिन वहां एक प्रथा बंध गई थी कि कोई भी राष्ट्रपति को तीसरी बार उस पद के लिये नहीं चुना जाना चाहिये। प्रेसिडेन्ट वाशिंगटन अमेरिका के पहिले राष्ट्रपति थे, उन्होंने तीसरी बार उस पद के लिये खड़े होने से इनकार कर दिया। तब से यह प्रथा चली आती थी। पर सन् १९४० में प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्ट ने यह प्रथा तोड़ दी। वे तीसरी बार भी राष्ट्रपति के पद के लिये चुनाव लड़े और निर्वाचित हुए। अब अमेरिका के संविधान में यह धारा लगा दी गई है कि कोई भी राष्ट्रपति दो बार से अधिक उस पद के लिये नहीं चुना जायगा। अमेरिकन संविधान का २२वां संशोधन, जो सन् १९५१ के फरवरी मास में कानून बन गया, कहता है कि अमेरिका का कोई भी राष्ट्रपति दो बार से अधिक उस पद के लिये नहीं चुना जायगा।

अव अमेरिका के और भारत के राष्ट्रपतियों के अधिकारों का भी तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिये। अमेरिका में संघ शासन के अधिकार उतने विस्तृत और प्रवल नहीं हैं, जितने भारत में संघ के हैं। अर्थात् भारत की अपेक्षा अमेरिका का संघ कमजोर है। भारत में राष्ट्रपति को जितने आकस्मिक अधिकार प्राप्त हैं, उतने अमेरिकन राष्ट्रपति को नहीं हैं। भारत का राष्ट्रपति संकटकाल में राज्यों की स्वतन्त्रता स्थगित कर सकता है। अमेरिका का राष्ट्रपति ऐसा नहीं कर सकता। आर्थिक संकट के समय भारत का राष्ट्रपति राज्यों और संघ के सब सरकारी कर्मचारियों के वेतन और भत्ते कम कर सकता है। इनमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते भी शामिल हैं। इन आकस्मिक अधिकारों को छोड़कर भारत के राष्ट्रपति को कार्यपालिका, विधान अर्थात् कानून वनाने और वित्त सम्वन्धी वहुत विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं। अमेरिकन राष्ट्रपति की तरह वह युद्ध और शान्ति की घोषणा कर सकता है। संसद् के वनाये हुए कानूनों को वह अमेरिकन राष्ट्रपति की तरह रद्द या अस्वीकृत कर सकता है। लेकिन भारत में संसद् के साधारण वहुमत से यह अस्वीकृति समाप्त की जा सकती है और अमेरिका में कांग्रेस के दो-तिहाई वहुमत द्वारा।

यद्यपि भारत के राष्ट्रपति के अधिकारों की सूची वड़ी विस्तृत है, फिर भी अमेरिका के राष्ट्रपति से वह कहीं कम शक्तिशाली है। कहा जाता है कि "जनतन्त्र में आज तक किसी व्यक्ति को इतनी अधिक शासन-शक्ति प्राप्त नहीं हुई, जितनी की अमेरिका के राष्ट्रपति को प्राप्त है।" भारत के राष्ट्रपति को अपने अधिकारों का उपयोग, संविधान के अनुसार मंत्रि-परिषद् की सलाह से करना पड़ेगा और मंत्रि-परिषद् लोक-सभा के प्रति जिम्मेदार होगी। लेकिन अमेरिका में मंत्रि-परिषद् के सदस्य सिर्फ राष्ट्रपति के मातहत होते हैं। वे न तो कांग्रेस के प्रति जिम्मेदार होते हैं और न उसमें भाषण ही दे सकते हैं। इसलिये अमेरिका का राष्ट्रपति वहुत ही प्रभावशाली व्यक्ति होता है। उसके सामने मंत्रि-परिषद् के सदस्यों का कोई महत्व नहीं होता। राजनीतिशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान लॉस्की ने लिखा है, कि "राष्ट्रपति अपने देश का इतना वड़ा प्रतीक होता है, कि जव तक वह अपने पद पर रहता है, तव तक उसकी वरावरी का अन्य कोई

व्यक्ति नहीं होता। उसकी आवाज़ के सामने मंत्रि-परिषद् के अधिकारी की आवाज़ केवल एक कानाफूसी-सी रहती है, जिसे वह सुने या न सुने।" इस प्रकार अमेरिका का राष्ट्रपति अपनी मंत्रि-परिषद् से बिलकुल स्वतन्त्र होकर सरकार की नीति निर्धारित करता है। मंत्रि-परिषद् के सदस्य केवल उसके सहायक मात्र होते हैं, जिन्हें वह कुछ विभागों का भार संभालने के लिये नियुक्त कर देता है। सब प्रकार की नीति का निर्धारण वही करता है। "यदि उच्चतम न्यायालय कोई फैसला देता है, तो वह उसकी नीति के विरुद्ध समझा जाता है। कांग्रेस में पराजय होने से उसका सम्मान घटता है। यदि उसकी अवधि में कांग्रेस का निर्वाचन है, तो उसकी नीति पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस बात पर कोई ध्यान नहीं देता कि इन सब बातों का उसकी मंत्रि-परिषद् पर क्या प्रभाव पड़ेगा।"

लेकिन भारत में शासन की संसदीय प्रणाली (Parliamentary Form of Govt.) है, जिसमें मंत्रि-परिषद् लोक-सभा के प्रति जिम्मेदार होती है। इससे राष्ट्रपति का स्वतन्त्र निर्णय बहुत सीमित हो जाता है। यद्यपि राष्ट्रपति हमेशा मंत्रि-परिषद् की सलाह मानने को बाध्य नहीं है, पर साधारणतः वह उसकी सलाह की उपेक्षा करने का साहस नहीं करेगा। मंत्रि-परिषद् को लोक-सभा में बहुमत प्राप्त रहेगा और वह संसद में सब कानून बनवायेगी। सम्भावना यही है कि प्रधान मंत्री सबसे अधिक शक्तिशाली दल का नेता रहेगा, इससे उसके सहयोगियों को उस दल का समर्थन प्राप्त रहेगा। यदि मंत्रि-परिषद् पदत्याग कर देती है, तो एक ऐसा अड़ंगा उत्पन्न हो जायगा, जिसे राष्ट्रपति नहीं सुलझा सकता। उसके सामने केवल एक यही उपाय रहेगा कि वह लोक-सभा को विघटित करके नया निर्वाचन करावे। परन्तु यह कदम भी उसके लिये खतरे से खाली नहीं रहेगा, क्योंकि यदि नये निर्वाचन में वही दल फिर से संसद में आ गये तो उसका अर्थ यह होगा कि जनता ने अपना मत राष्ट्रपति के विरुद्ध दिया है।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि साधारणतः दिन प्रति दिन के शासन में वह अपनी मंत्रि-परिषद् की सलाह की उपेक्षा नहीं करेगा। इसलिये अमेरिका के राष्ट्रपति की अपेक्षा भारत का राष्ट्रपति बहुत कम

शक्तिशाली होगा। उसकी स्थिति लगभग फ्रान्स के राष्ट्रपति और अमेरिका के राष्ट्रपति के बीच की होगी। बल्कि अमेरिका के राष्ट्रपति की अपेक्षा फ्रान्स के राष्ट्रपति के अधिक पास होगी।

उपराष्ट्रपति (The Vice-President)—भारतीय संघ का एक उप-राष्ट्रपति होगा। उसका निर्वाचन संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में अनुपाती प्रतिनिधित्त्व के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के द्वारा होगा। मतदान गुप्त तरीके से होगा। उप-राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित होने के लिये किसी व्यक्ति को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी चाहिये—(क) भारत का नागरिक हो; (ख) राज्य-परिषद् का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो; (ग) ३५ वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो; (घ) संघ सरकार अथवा राज्य-सरकार अथवा उनके अधीन किसी संस्था के लाभ के पद पर न हो। (राष्ट्रपति के पद के समान उपराष्ट्रपति के पद के सम्बन्ध में भी ठीक वैसे ही उपबन्ध रखे गये हैं कि इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल और राज्यों के मंत्रियों के पद लाभ के पद नहीं समझे जायँगे।)

उप-राष्ट्रपति संसद के किसी सदन अथवा राज्य विधानमंडल का सदस्य नहीं होगा। उप-राष्ट्रपति राज्य-परिषद् का पदेन (Ex-Officio) सभापति ५ वर्ष के लिये होगा। यदि मृत्यु, पदत्याग अथवा पदच्युत होने के कारण राष्ट्रपति का पद खाली हो जाता है, तो जब तक नया राष्ट्रपति निर्वाचित होकर पद ग्रहण नहीं कर लेता, तब तक उप-राष्ट्रपति ही राष्ट्रपति के पद पर काम करेगा। यदि ऊपर दिये हुए तीन कारणों से राष्ट्रपति का पद खाली होता है, तो ६ महीने के भीतर ही जितनी जल्दी हो सके, उस पद के लिये निर्वाचन होगा। यदि बीमारी, गैरहाजिरी अथवा अन्य किसी कारण से राष्ट्रपति अस्थायी रूप से अपने पद पर काम नहीं कर सकता, तो राष्ट्रपति उसका काम तब तक संभालेगा जब तक वह वापिस न आ जाय। अपने हस्ताक्षर द्वारा उप-राष्ट्रपति अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को दे सकता है। यदि राज्य-परिषद् के उपस्थित सदस्य उस पर अयोग्यता या अविश्वास का प्रस्ताव पास करते हैं और लोक-सभा उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है, तो वह पदच्युत किया जा सकता है।

ग्यारहवाँ अध्याय

मंत्रि-परिषद्

(The Council of Ministers)

अनुच्छेद ७४ में कहा गया है कि राष्ट्रपति के कार्यों में सलाह और सहायता देने के लिये एक मंत्रि-परिषद् होगी, जिसका मुखिया प्रधान मंत्री होगा। मंत्रियों ने राष्ट्रपति को कब, क्या और कैसी सलाह-मंत्रणा दी, इस सम्बन्ध में न्यायालय में कोई प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। अनुच्छेद ७५ में कहा गया है कि प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मंत्री की सलाह से करेगा। मंत्रि-परिषद् सामूहिक रूप से (Collectively) लोक-सभा के प्रति जिम्मेदार होगी। यदि अपनी नियुक्ति के ६ महीने के भीतर कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं होता, तो ६ महीने के बाद वह मंत्री के पद पर नहीं रहेगा। मंत्रियों के वेतन और भत्ते संसद् समय-समय पर निश्चित करेगी।

अनुच्छेद ७७ में कहा गया है कि शासन के सम्बन्ध में मंत्रि-परिषद् जो निर्णय लेगी, उनकी सूचना प्रधान मंत्री राष्ट्रपति को देता रहेगा। साथ ही संघ के मामलों में तथा कानून बनाने के प्रस्तावों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति जो सूचना चाहे वह भी प्रधान मंत्री उसे देगा। यदि कोई मंत्री अपने विभाग के सम्बन्ध में कोई ऐसा निर्णय लेता है, जिस पर पूरी मंत्रि-परिषद् ने विचार नहीं किया है, तो राष्ट्रपति की इच्छा होने पर प्रधान मंत्री उस निर्णय को पूरी मंत्रि-परिषद् के विचाराधीन रखेगा।

यद्यपि राष्ट्रपति केवल शोभा की वस्तु नहीं रहेगा, फिर भी जैसा कि कहा जा चुका है, साधारण बातों में मंत्रि-परिषद् की ही प्रधानता रहेगी। मंत्रि-

परिषद् की जिम्मेदारी बहुत बड़ी रहेगी और उसी तरह उसका प्रभाव भी बहुत अधिक रहेगा। उसका दैनिक कार्य केन्द्रीय सरकार के विभागों का शासन करना होगा। वह नीति निर्धारित करेगी और सब विभागों के कार्यों को एक सूत्र में बांधेगी। वह कानून बनाने का कार्यक्रम निश्चित करेगी। और सब कानून उसी के द्वारा प्रारम्भ होकर बनेंगे और उसी की इच्छानुसार बनेंगे। क्योंकि लोक-सभा में उसका बहुमत होगा। यदि कोई विधेयक सरकारी दल की ओर से चालित न होगा, तो उसके कानून बनने की संभावना बहुत कम रहेगी। इसी प्रकार मंत्रि-परिषद् की वित्त सम्बन्धी शक्ति भी बहुत अधिक रहेगी। वह बजट अर्थात् आय-व्यय वितरण तैयार करेगी और चूंकि कोई भी वित्त विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना लोक-सभा में पेश नहीं हो सकता, इसलिये प्रायः सभी वित्त विधेयक मंत्रि-परिषद् द्वारा ही बनाये जायँगे। राज्य की विदेशी नीति भी मंत्रि-परिषद् ही निर्धारित करेगी। इस प्रकार मंत्रि-परिषद् का प्रभाव बहुत विस्तृत रहेगा और जो कार्य उसके अधिकार-क्षेत्र के बाहर रहेंगे, उन पर भी उसका गंभीर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। यह कहा जा सकता है कि शासन मशीन की वह प्रधान चालक शक्ति होगी। भारत की मंत्रि-परिषद् की स्थिति लगभग ब्रिटिश मंत्रि-परिषद् के समान ही रहेगी।

जिम्मेदार शासन (Responsible Govt.)—जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, संविधान में यह कहा गया है कि मंत्रि-परिषद् सामूहिक रूप से लोक-सभा के प्रति जिम्मेदार होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि वह केवल तब तक अपने पद पर रह सकती है, जब तक कि उसे लोक-सभा का विश्वास प्राप्त है। जैसे ही उसे मालूम हो जाय कि उसे लोक-सभा का विश्वास प्राप्त नहीं है, वह सामूहिक रूप से स्तीफा दे देगा। अर्थात् पूरी मंत्रि-परिषद् अपना पदत्याग कर देगी।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि भारत में जिम्मेदार सरकार की प्रणाली संविधान की धाराओं के आधार पर बनी है। ग्रेट-ब्रिटेन में जिम्मेदार सरकार की प्रणाली केवल प्रथा के आधार पर बनी है। ब्रिटिश संविधान में मंत्रि-परिषद् की चर्चा लिखित रूप में कहीं नहीं है। कनाडा के संविधान में भी मंत्रि-परिषद्

तथा राज्यों और केन्द्र में विधानमंडल के प्रति उसकी जिम्मेदारियों की चर्चा नहीं है। कनाडा में भी जिम्मेदार सरकार की प्रणाली केवल प्रथा के आधार पर बनी है। आस्ट्रेलिया के तथा दक्षिण अफ्रिका संघ के संविधान में मंत्रियों का उल्लेख तो है, परन्तु विधानमंडल के प्रति उनकी जिम्मेदारी की चर्चा नहीं है। इसलिये इन दोनों देशों में भी कार्यपालिका की विधानमंडल के प्रति जिम्मेदारी का सिद्धान्त केवल प्रथा पर आधारित है। परन्तु आयरलैंड के संविधान में मंत्रि-परिषद् तथा विधानमंडल के प्रति उसकी जिम्मेदारी का उल्लेख स्पष्टरूप से किया गया है। फ्रान्स के चौथे गणतन्त्र के संविधान में स्पष्टरूप से कहा गया है कि मंत्रि-मंडल संसद् के प्रति जिम्मेदार रहेगा। इसलिये इस सम्बन्ध में भारत का संविधान आयरलैंड तथा फ्रान्स के चौथे गणतन्त्र के संविधान के समान है।

सामूहिक जिम्मेदारी (Collective Responsibility)—संविधान के अनुसार मंत्रि-परिषद् सामूहिक रूप से लोक-सभा के प्रति जिम्मेदार होगी। मंत्रियों की सामूहिक जिम्मेदारी का अर्थ यह होता है कि यदि किसी बात पर संसद् में किसी मंत्री की हार हो जाती है, तो वह पूरी मंत्रि-परिषद् की हार समझी जाती है। यदि किसी मंत्री की आलोचना होती है, तो वह पूरी मंत्रि-परिषद् की आलोचना समझी जायेगी। सामूहिक जिम्मेदारी का अर्थ यह भी होता है कि यदि कोई मंत्री एक प्रस्ताव पेश करता है, तो वह पूरी मंत्रि-परिषद् का प्रस्ताव समझा जायगा, चाहे मंत्रि-परिषद् ने उस प्रस्ताव का अनुमोदन भले ही न किया हो।

सामूहिक जिम्मेदारी का एक अर्थ यह भी होता है कि यदि मंत्रि-परिषद् कोई निर्णय करती है, तो जो मंत्री उस निर्णय से सहमत नहीं होते, वे या तो अपने पद से स्तीफा दे दें और यदि स्तीफा नहीं देते तो उस निर्णय का समर्थन करें। सामूहिक जिम्मेदारी के अन्तर्गत किसी मंत्री को किसी सरकारी प्रस्ताव के विरुद्ध मत देने का अधिकार नहीं होता। इस सम्बन्ध में ब्रिटेन में प्रचलित एक प्रथा की चर्चा करनी आवश्यक है। ब्रिटेन में सामूहिक जिम्मेदारी की प्रथा प्रचलित है। ब्रिटेन में कुछ प्रस्ताव 'खुले प्रस्ताव' कहलाते थे। मंत्री उनके विरुद्ध बोल सकते थे, तथा मत दे सकते थे। सन् १९३२ में ब्रिटेन में संयुक्त मंत्रिमंडल था, जिसके प्रधान मंत्री मि० मेकडानल्ड थे। उस मंत्रिमंडल में कर-नीति (tariff)

पर सरकार के विरुद्ध बोलने और मत देने की मंत्रियों को स्वतन्त्रता थी। परन्तु इन उदाहरणों का यह अर्थ नहीं कि भारत की संसद प्रणाली में भी इनकी नकल की जायगी।

सामूहिक जिम्मेदारी के अन्तर्गत कोई मंत्री ऐसा वक्तव्य नहीं दे सकता, जो सरकार की नीति के विरुद्ध हो। इसी प्रकार वह अपने सहयोगियों की सलाह के बिना कोई ऐसी बात नहीं कह सकता, जिसे सरकार का निर्णय कहा जाय।

लेकिन सामूहिक जिम्मेदारी का अर्थ यह भी नहीं होता कि मंत्रि-परिषद् किसी मंत्री की गलती या कुशासन की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले। इसी प्रकार एक या एक से अधिक मंत्री किसी भ्रष्टाचार के दोषी पाये जाते हैं, तो भी पूरी मंत्रि-परिषद् इसकी जिम्मेदार न होगी। तब पूरी मंत्रि-परिषद् के बदले केवल उन मंत्रियों को पदत्याग करना पड़ेगा।

यद्यपि सन् १९३५ के शासन कानून में मंत्रियों की जिम्मेदारी का उल्लेख नहीं था, परन्तु विभिन्न प्रान्तों में सामूहिक जिम्मेदारी की प्रथा ने जड़ पकड़ी और उन्नति की। इसलिये हमारे देश के लिये यह प्रथा नई नहीं है।

प्रधान मंत्री (The Prime Minister)—संविधान में प्रधान मंत्री के पद का स्पष्ट उल्लेख है। सन् १९०५ तक ब्रिटेन के संविधान में प्रधान मंत्री के पद का उल्लेख नहीं था। परन्तु उस वर्ष एक राजकीय घोषणा (Royal Proclamation) द्वारा प्रधान मंत्री को यॉर्क के आर्च बिशप के बाद दूसरा स्थान दिया गया। बाद में संसद ने कानून द्वारा प्रधान मंत्री का वेतन निर्धारित करके उसके पद की स्वीकृति दे दी।

प्रधान मंत्री का पद बहुत महत्वपूर्ण होगा। उसका दर्जा बराबरी वालों में प्रथम (Primus Interpares) होगा, बल्कि उससे भी अधिक होगा। क्योंकि प्रधान मंत्री ही अन्य मंत्रियों को चुनेगा। यद्यपि संविधान में अन्य मंत्रियों के साथ प्रधान मंत्री के सम्बन्ध की चर्चा नहीं है, पर यह स्पष्ट है कि वह उनका अगुआ होगा, मंत्रि-परिषद् की बैठकों का सभापति होगा और नीति-निर्धारण में पथ प्रदर्शन करेगा। संसद में वह सब महत्वपूर्ण प्रश्नों पर तथा अपनी नीति सम्बन्धी बातों पर बोलेगा। यदि उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है, तो इसमें संदेह

नहीं कि भारत का प्रधान मंत्री संसार के अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रभावशाली पदाधिकारियों में से होगा।

भारत के प्रधान मंत्री की स्थिति बहुत कुछ ब्रिटेन के प्रधान मंत्री के समान होगी। यद्यपि ब्रिटेन में राजा केवल एक शोभा की वस्तु है और भारत में राष्ट्रपति उतना शक्तिहीन नहीं होगा। फिर भी भारत के प्रधान मंत्री का पद बहुत ही महत्वपूर्ण होगा। शासन-प्रणाली में उसका महत्व उतना ही अधिक होगा, जितना कि ब्रिटेन में प्रधान मंत्री का होता है। सम्भावना यही है कि ब्रिटेन के प्रधान मंत्री की तरह वह सबसे अधिक शक्तिशाली दल का नेता होगा और इस कारण उसका प्रभाव सबसे अधिक होगा। वह सब मंत्रियों को चुनेगा और चाहे जिस मंत्री को वह पदच्युत कर सकता है और बदले में नया मंत्री रख सकता है। वही एक ऐसा व्यक्ति होगा जो देश की आन्तरिक और विदेशी नीति का निर्धारण करेगा। केन्द्र को जो विस्तृत अधिकार मिले हैं, जिनमें राष्ट्रपति के आकस्मिक अधिकार भी शामिल हैं, उन सबका प्रयोग प्रधानतः उसी की सलाह के अनुसार होगा। युद्धकाल में उसकी शक्ति एक तानाशाह की तरह होगी, जैसा कि ब्रिटेन में होता है। लोक-सभा का निर्वाचन वास्तव में प्रधान मंत्री का निर्वाचन हो सकता है।

एक त्रुटि (A Loop-Hole)—ध्यान रहे कि मंत्रि-परिषद् का कोई मंत्री संसद के दो सदनों में से किसी एक सदन का सदस्य हो सकता है। चूंकि राज्य-परिषद् के कुछ सदस्य नाम-निर्देशित (Nominated) भी रहेंगे, इसलिये कोई नाम-निर्देशित सदस्य भी मंत्री हो सकता है। (संविधान प्रारम्भ होने से १० वर्ष तक लोक-सभा में भी दो एंग्लो-इंडियन सदस्य नाम-निर्देशित हो सकते हैं। देखो अगला अध्याय) इस उपबन्ध के द्वारा मंत्रि-परिषद् में ऐसे लोग लाये जा सकते हैं, जो लोकप्रिय न हों। इसलिये इसे एक त्रुटि समझनी चाहिये। यह बहुत सम्भव है कि कुछ लोग इतने कुख्यात हो सकते हैं कि वे संसद के किसी भी भवन के लिये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित न होंगे। उनको राज्य-परिषद् का नामनिर्देशित सदस्य बनाया जा सकता है और बाद में मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि सामूहिक जिम्मेदारी के

अन्तर्गत एक मंत्री की हार पूरी मंत्री-परिषद् की हार मानी जायगी और इस डर से मंत्रिमंडल में ऐसे लोग शामिल नहीं किये जायँगे जो जनता के प्रतिनिधि न हों।

मंत्रियों की श्रेणियां (Different Categories of Ministers) यद्यपि संविधान में केवल 'मंत्री' शब्द का उपयोग किया गया है और उनकी स्थिति और भेद का भेद नहीं किया गया है, परन्तु व्यवहार में यह भेद प्रचलित है और इस समय तीन प्रकार के मंत्री होते हैं—मंत्रि-परिषद् की स्थिति के मंत्री (Ministers of Cabinet Rank), राज्य-मंत्री (Ministers of State) और उप-मंत्री (Deputy Ministers)। उप-मंत्री तो अधीन कर्मचारी के समान होते हैं। राज्य-मंत्री भी मंत्रि-परिषद् की बैठकों में शामिल नहीं होते। जब उनके विभाग सम्बन्धी किसी विषय पर वाद-विवाद होता है, तब वे बुलाये जाते हैं। मंत्रियों की श्रेणी और पद के इस अन्तर को कानूनी स्वीकृति प्राप्त है। मंत्रियों के वेतन (संशोधन) कानून, १९५०, में लिखा है कि "मंत्रि-परिषद् के प्रत्येक मंत्री को ३००० रुपया प्रति मास वेतन मिलेगा और ५०० रुपया मासिक भत्ता मिलेगा। राज्य-मंत्री को ३००० रुपया मासिक वेतन मिलेगा और उप-मंत्री को २००० रुपया मासिक वेतन मिलेगा।

बारहवाँ अध्याय

संसद्

(Parliament)

भारत की केन्द्रीय विधायिनी सभा का नाम संसद् होगा। संसद् में दो सदन तथा राष्ट्रपति सम्मिलित होंगे। निम्न सदन को लोक-सभा (House of the People) तथा उच्च सदन को राज्य-परिषद् (Council of States) कहते हैं। संसद् का अधिवेशन प्रति वर्ष कम से कम दो बार होना चाहिये और एक अधिवेशन की अन्तिम बैठक और दूसरे की प्रथम बैठक के बीच में ६ महीने से अधिक का अन्तर नहीं होगा। समय-समय पर राष्ट्रपति (क) संसद् के दोनों सदनों की अथवा किसी एक सदन की बैठक बुला सकता है। (ख) सदनों को सत्तावसान या स्थगित (prorogue) कर सकता है और (ग) लोक-सभा को विघटित (dissolve) कर सकता है।

लोक-सभा (The House of the People or Lower House)—लोक-सभा में ५०० से अधिक सदस्य न होंगे और इनका निर्वाचन प्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा होगा। निर्वाचन क्षेत्र, क्षेत्रफल के आधार पर होंगे और निर्वाचन वयस्क मताधिकार (adult suffrage) के आधार पर होगा। प्रत्येक नागरिक जिसकी आयु २१ वर्ष से कम न होगी और जिसका मताधिकार निवास-स्थान, खराब दिमाग, अपराध या भ्रष्टाचार के आधार पर न किया जायगा, वह मतदान कर सकेगा। प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर होगा। साढ़े सात लाख जनता का कम से कम एक प्रतिनिधि होगा और पांच लाख जनता पीछे एक से अधिक प्रतिनिधि न होगा। जहां तक हो सके सारे देश में प्रतिनिधित्व का अनुपात एक-सा होगा। प्रत्येक जनगणना के बाद सब निर्वाचन-क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व संसद् के बनाये हुए कानून के अनुसार दुहराया जायगा। सन् १९५०

के प्रतिनिधित्त्व कानून (The Representation of the Peoples Act, 1950) ने विभिन्न राज्यों के वीच में लोक-सभा के सदस्यों की संख्या निर्धारित कर दी है। (नीचे दी हुई सूची देखो) इस कानून के अनुसार जम्मू और काश्मीर राज्य तथा अंडमान और निकोवार द्वीपों के लिये निर्धारित सदस्यों को राष्ट्रपति नाम निर्देशित करेगा। वाकी राज्यों के सव सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा लोक-सभा में आवेंगे।

(Allocation of Seats in the House of the people)

नाम राज्य	स्थानों की कुल संख्या
भाग (क) राज्य	
१. आसाम	१२
२. विहार	५५
३. वम्वई	४५
४. मध्यप्रदेश	२९
५. मद्रास	७५
६. उड़ीसा	२०
७. पंजाव	१८
८. उत्तर-प्रदेश	८६
९. पश्चिम वंगाल	३४
भाग (ख) राज्य	
१. हैदरावाद	२५
२. जम्मू और काश्मीर	६
३. मध्यभारत	११
४. मैसूर	११
५. पटियाला और पूर्वी पंजाव राज्य संघ	५
६. राजस्थान	२०
७. सौराष्ट्र	६
८. ट्रावनकोर-कोचीन	१२

नाम राज्य	स्थानों की कुल संख्या
भाग (ग) राज्य	
१. अजमेर	२
२. भोपाल	२
३. विलासपुर	१
४. कुर्ग	१
५. दिल्ली	४
६. हिमाचल-प्रदेश	३
७. कच्छ	२
८. मनीपुर	२
९. त्रिपुरा	२
१०. विन्ध्य-प्रदेश	६
११. अंडमान और निकोबार द्वीप	१

वयस्क मताधिकार के रहते हुए भी लोक-सभा में उच्च संख्यक वर्गों के प्रतिनिधित्त्व के लिये कुछ विशेष उपबन्ध दिये गये हैं। अनुच्छेद ३३० में कहा गया है कि लोक-सभा में (क) अनुसूचित जातियों (Scheduled Castes) तथा (ख) आसाम के आदिम जातियों के क्षेत्रों को छोड़कर अनुसूचित आदिम जातियां (Scheduled Tribes) तथा (ग) आसाम के स्वायत्त जिलों की अनुसूचित आदिम जातियों के लिये स्थान सुरक्षित रखे जायँगे। (देखो अध्याय २४ और २७)। यह संरक्षण अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर दिया जायगा। एंग्लो-इंडियन समुदाय के लिये भी एक विशेष उपबन्ध बनाया गया है। यदि राष्ट्रपति सोचता है कि लोक-सभा में एंग्लो इंडियन समुदाय का प्रतिनिधित्त्व उचित रूप से नहीं हुआ है तो वह उस जाति के अधिक से अधिक दो सदस्य नाम निर्देशित कर सकता है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों तथा एंग्लो-इंडियन समुदाय के सम्बन्ध में बने हुए ये विशेष उपबन्ध संविधान आरम्भ होने से १० वर्ष बाद समाप्त हो जायँगे।

लोक-सभा में निर्वाचित होने के लिये किसी व्यक्ति को भारत का नागरिक होना चाहिये, उसकी आयु २५ वर्ष से कम न होनी चाहिये तथा उसे सब शर्तें पूरी करनी चाहिये जो संसद कानून द्वारा निर्धारित करे। यदि किसी व्यक्ति में निम्नलिखित बातें हों, तो वह संसद के किसी सदन की सदस्यता के लिये उम्मीदवार नहीं हो सकता--(१) यदि वह भारत-सरकार अथवा किसी राज्य-सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर हो। इनमें से कुछ पदों के लिये संसद कानून द्वारा छूट दे सकती है। (२) यदि किसी अधिकारी न्यायालय ने उसे पागल दिमाग का घोषित कर दिया है। (३) यदि वह दिवालिया है। (४) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है ; अथवा उसने किसी अन्य देश की नागरिकता प्राप्त कर ली है ; अथवा यदि वह किसी अन्य देश के प्रति अपनी राजभक्ति (Allegiance or Adherence) रखता है। (५) यदि वह संसद के बनाये हुए किसी कानून द्वारा उम्मीदवार होने से वंचित हो जाता है। सदस्य निर्वाचित होने के बाद भी यदि उस पर इनमें से कोई शर्त लागू होती है, तो उसकी सदस्यता समाप्त हो जायगी और उसका स्थान खाली हो जायगा। यदि यह प्रश्न उठता है कि किसी सदस्य पर इनमें से कोई शर्त लागू होती है, तो निर्वाचन आयोग (Election Commission) की राय पर आधारित राष्ट्रपति का निर्णय अन्तिम होगा।

लोक-सभा दो सदस्यों को अपना अध्यक्ष (Speaker) और उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) चुनेगी। लोक-सभा की पहिली बैठक की निर्धारित तारीख से उसकी अवधि ५ वर्ष की होगी और इस अवधि के समाप्त होते ही उसका विघटन हो जायगा। परन्तु इस अवधि के पहिले भी राष्ट्रपति उसका विघटन कर सकता है। यदि आपात की उद्घोषणा जारी है, तो संसद लोक-सभा की अवधि एक वर्ष के लिये और बढ़ा सकती है। लेकिन उद्घोषणा समाप्त होते ही यह अवधि ६ माह से अधिक नहीं रहेगी।

राज्य-परिषद् (Council of States)—राज्य-परिषद् स्थायी सदन होगा। उसका विघटन नहीं होगा। लेकिन प्रति दूसरे वर्ष उसके एक तिहाई सदस्य अपना स्थान खाली कर देंगे। उसके सदस्यों की संख्या २५० से अधिक न होगी। इनमें से १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नाम-निर्देशित किये जायँगे।

ये १२ सदस्य ऐसे होने चाहिये, जिन्हें निम्नलिखित विषयों में से किसी एक का विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो—साहित्य, कला, विज्ञान और समाज-सेवाएं। राज्य-परिषद् के बाकी सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) के राज्यों के प्रतिनिधि उन राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जावेंगे। प्रथम अनुसूची के भाग (ग) राज्यों के प्रतिनिधि इन राज्यों के निर्वाचक गणों द्वारा चुने जावेंगे। ये गण प्रतिनिधित्त्व कानून के अंतर्गत बनाये जावेंगे। स्थानों का वितरण निम्नलिखित अनुसार होगा।

(क) आसाम ६, बिहार २१, बम्बई १७, मध्यप्रदेश १२, मद्रास २७, उड़ीसा ९, पंजाब ८, उत्तर-प्रदेश ३१ और पश्चिम बंगाल १४ = (कुल १४५)।

(ख) हैदराबाद ११, जम्मू और काश्मीर ४, मध्यभारत ६, मैसूर ६, पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्यसंघ ३, राजस्थान ९, सौराष्ट्र ४ और ट्रावनकोर-कोचीन ६ = (कुल ४९)।

(ग) अजमेर और कुर्ग १, भोपाल १, बिलासपुर और हिमाचल-प्रदेश १, दिल्ली १, कच्छ १, मनीपुर और त्रिपुरा १ और विन्ध-प्रदेश ४ = (कुल १०)।

राज्य-परिषद् का सदस्य निर्वाचित होने के लिये किसी व्यक्ति को (१) भारत का नागरिक होना चाहिये, (२) ३० वर्ष से कम आयु का नहीं होना चाहिये और (३) वे सब शर्तें पूरी करनी चाहिये, जो संसद निर्धारित करे। सदस्यता से वंचित करनेवाली शर्तें वे सब होंगी, जो लोक-सभा के सम्बन्ध में लागू होती हैं।

भारत का उप-राष्ट्रपति राज्य-परिषद् का पदेन (Ex-Officio) सभापति होगा। सदस्यों में से परिषद् एक उप-सभापति भी चुनेगी।

यहां एक बात ध्यान में रखनी चाहिये। यद्यपि सिद्धान्त की दृष्टि से राज्य-परिषद् राज्यों का प्रतिनिधित्त्व करेगी, परन्तु यह प्रतिनिधित्त्व एक बराबर नहीं दिया जाकर जनसंख्या के आधार पर दिया गया है। आस्ट्रेलिया और अमेरिका में संसद की उच्च सभा में राज्यों को एक बराबर प्रतिनिधित्त्व दिया जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, राज्य-परिषद् के लिये भाग (ग) राज्यों के

प्रतिनिधि निर्वाचक गणों द्वारा चुने जायँगे। ये निर्वाचक गण प्रतिनिधित्व कानून (१९५०) के अनुसार बनाये जायँगे। अजमेर, भोपाल, कुर्ग, दिल्ली और विन्ध्य-प्रदेश के निर्वाचक गण उन राज्यों की विधान-सभाएं ही होंगी। हिमाचल-प्रदेश और विलासपुर का निर्वाचक गण इस प्रकार होगा—(१) लोक-सभा में विलासपुर राज्य का प्रतिनिधि और (२) हिमाचल-प्रदेश की विधान-सभा के सदस्य। कच्छ, मनीपुर और त्रिपुरा में इस समय विधान-सभाएं नहीं होंगी। इसलिये वहां राज्य-परिषद् के प्रतिनिधि चुनने के लिये विशेषरूप से निर्वाचक गण बनाये जायँगे। इन गणों के सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जायँगे और प्रत्येक गण में ३० से अधिक सदस्य न होंगे। इन तीन रियासतों में जब विधान-सभाएं स्थापित हो जायँगी, तब ये निर्वाचक गण खतम हो जायँगे और तब विधान-सभाएं ही निर्वाचक गणों का काम करेंगी। अजमेर और कुर्ग को राज्य-परिषद् में एक स्थान मिला है, इसलिये यहां के निर्वाचक गण क्रमशः (in rotation) इस स्थान के लिये प्रतिनिधि चुनेंगे। इसी प्रकार मनीपुर और त्रिपुरा को मिलाकर एक स्थान दिया गया है। उसका निर्वाचन भी इसी प्रकार क्रमशः होगा।

सदस्यों के विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां (Privileges and Immunities of Members)—कार्यवाही के नियमों का पालन करते हुए संसद् में भाषण की स्वतन्त्रता रहेगी। संसद् में या संसद् की किसी कमेटी में कोई सदस्य जो कुछ भी कहेगा अथवा अपना मत जिस ओर देगा उसके लिये सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं हो सकती। संसद के अधिकार और नियंत्रण के अन्दर जो कुछ भी प्रकाशित होगा, उसके सम्बन्ध में भी सदस्य को यह उन्मुक्ति प्राप्त होगी। अन्य बातों के सम्बन्ध में जब तक संसद् निर्धारित न कर दे, तब तक सदस्यों के विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां वही रहेंगी जो कि संविधान प्रारम्भ होने के समय ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों को प्राप्त हों।

संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों के वेतन और भत्ते संसद् समय-समय पर निर्धारित करेगी।

संसद की प्रभुता (Sovereignty of Parliament)—भारत में संसद की प्रभुता रहेगी। किसी भी वाहरी प्रभुता से वह सर्वथा स्वतन्त्र रहेगी। देश के अन्दर उसकी प्रभुता राज्यों के सम्बन्ध में सीमित रहेगी जैसा कि प्रत्येक संघ-शासन में होता है। प्रत्येक संघ-शासन प्रणाली में संविधान संघ और उसकी इकाइयों का अधिकार-क्षेत्र निर्धारित कर देता है और न्यायपालिका को यह देख-रेख रखने का अधिकार दे देता है, वे एक दूसरे के अधिकार-क्षेत्र का अतिक्रमण न करने पावें। हमारे सिद्धान्त में इसी सिद्धान्त का अनुकरण किया गया है। (संघ और राज्यों में विधायिनी शक्तियों के वितरण का अध्ययन एक दूसरे अध्याय में किया गया है) लेकिन भारत की संसद उस अर्थ में प्रभुत्त्वपूर्ण न रहेगी। जिस अर्थ में ब्रिटेन की संसद है। ब्रिटेन में पार्लियामेंट के वनाये हुए कानूनों पर न्यायपालिका विचार नहीं कर सकती। लेकिन भारत में संसद के वनाये हुए कानूनों पर न्यायालय विचार कर सकते हैं। (नीचे देखो)

न्यायिक विचार (Judicial Review)—अमेरिका की तरह भारत में भी संसद के वनाये हुए कानूनों पर न्यायालय द्वारा विचार हो सकता है। संसद के वनाये हुए कानूनों को न्यायालय यह कह कर अवैध और अमान्य घोषित कर सकते हैं कि वे संविधान की धाराओं का उल्लंघन करते हैं। इससे नागरिकों की स्वतन्त्रता को वड़ा भारी संरक्षण प्राप्त होगा। इससे कार्यपालिका, जिसे संसद में वहुमत प्राप्त रहेगा, विधान का अतिक्रमण करके नागरिकों की स्वतन्त्रता पर आघात नहीं कर सकेगी। इस सम्वन्ध में ध्यान रखना चाहिये कि ब्रिटिश संविधान में न्यायिक विचार सम्वन्धी धारा नहीं है। पार्लियामेंट का वनाया हुआ कानून कोई ब्रिटिश न्यायालय अवैध घोषित नहीं कर सकता। लेकिन ब्रिटेन के न्यायालय, अधिकारियों के द्वारा वनाये हुए नियमों (Orders-in Council) को इस आधार पर अवैध घोषित कर सकते हैं कि वे प्रचलित कानूनों के विरोधी हैं और इसी आधार पर उनको लागू करने से इनकार कर सकते हैं।

लोक-सभा के निर्वाचन की प्रणाली (The System of Election for the House of the People)—संविधान के अनुसार लोक-सभा के लिये निर्वाचन प्रत्यक्ष (direct) प्रणाली से होगा। लेकिन विधान में

आनुपातिक प्रतिनिधित्व की चर्चा नहीं है। वास्तव में संविधान निर्माताओं का मत था कि संसद् प्रणाली के शासन के लिये आनुपातिक पद्धति उपयुक्त नहीं है। आनुपातिक पद्धति में कोई भी अल्पसंख्यक वर्ग जो आवश्यक मत संग्रह कर सकता है, अपने कुछ प्रतिनिधि लोक-सभा के लिये निर्वाचित कर सकता है। इससे यह हो सकता है कि लोक-सभा में वहुत से दल या गुट्ट हो जायँगे और कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक दल का पूर्ण वहुमत न रहेगा। फल यह होगा कि संयुक्त सरकार वनानी पड़ेगी और अनुभव यह कहता है कि संयुक्त सरकार प्रायः अस्थायी और अदृढ़ हुआ करती है। किसी भी समय कोई दल या गुट्ट स्वार्थवश संयुक्त सरकार से अलग हो सकता है और उसी समय संयुक्त सरकार खतम हो जायगी। इसी कारण संसदीय शासन-प्रणाली में आनुपातिक प्रतिनिधित्व ठीक नहीं जमता। संसदीय प्रणाली सवसे अच्छी तव रहती है, जव देश में केवल दो दल होते हैं। इंग्लैंड में ऐसा ही है। लेकिन आनुपातिक प्रतिनिधित्व में केवल दो दल नहीं वन पाते। इसलिये हमारे संविधान निर्माताओं ने यह अच्छा ही किया, जो लोक-सभा के निर्वाचन के लिये आनुपातिक पद्धति को ग्रहण नहीं किया। (लेकिन केन्द्र तथा राज्यों की उच्च सभाओं के लिये निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर ही होंगे।) सन् १९१८ में संसदों के अध्यक्षों की एक सभा ने आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को स्वीकार करने की सिफारिश की थी। लेकिन व्रिटेन की पार्लियामेंट ने उसे स्वीकार नहीं किया। पार्लियामेंट की राय थी कि अभी तक व्रिटेन में दो दलों की प्रणाली ने वहुत सफलतापूर्वक काम किया है, अव यदि आनुपातिक प्रतिनिधित्व को ग्रहण किया जायगा तो यह प्रणाली भी टूट जायगी।

फिर आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली वहुत उलझी हुई है और इस देश के अपढ़ मतदाताओं के लिये वह उपयुक्त न होगी। इसलिये लोक-सभा के निर्वाचन के लिये व्रिटेन को एक क्षेत्र से एक प्रतिनिधिवाली प्रथा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रथा की अपेक्षा अधिक उपयुक्त होगी।

विधि प्रक्रिया अर्थात् कानून वनाने की प्रणाली (The Legislative Procedure)—धन विधेयकों (Money Bills) तथा अन्य

प्रकार के वित्त-विधेयकों (Financial Bills) को छोड़ कर अन्य सब प्रकार के विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रथम पेश हो सकते हैं। धन-विधेयक तथा अन्य सब प्रकार के वित्त-विधेयक केवल लोक-सभा में ही प्रथम पेश होने चाहिये। साधारणतः जब तक कोई विधेयक संशोधनसहित या संशोधनरहित दोनों सदनों में स्वीकृत और पारित न हो जायगा, तब तक वह पारित या पास नहीं समझा जायगा। कुछ विधेयकों पर विचार करने के लिये संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक भी हो सकती है। यदि कोई विधेयक एक सदन में स्वीकृत हो जाता है और दूसरा सदन उसे स्वीकार नहीं करता, अथवा यदि उसके संशोधन के सम्बन्ध में दोनों सदनों में मतभेद है और वह तय नहीं होता ; अथवा एक सदन से कोई विधेयक दूसरे सदन में जाता है और ६ महीना बीत जाने पर भी दूसरा सदन उसे पास नहीं करता, तो राष्ट्रपति एक आदेश या विज्ञप्ति द्वारा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है। यदि संयुक्त बैठक में उपस्थित सदस्य साधारण बहुमत द्वारा उसे पास कर देते हैं, तो वह दोनों सदनों द्वारा पास हुआ समझा जायगा। संयुक्त बैठक में संशोधन पर विचार करने की भी एक शर्त है। यदि एक सदन में विधेयक में कुछ संशोधन स्वीकृत किये जाते हैं और दूसरा सदन उन संशोधनों को स्वीकार न करके उस विधेयक को पहिले सदन में वापिस भेज देता है तो संयुक्त बैठक में केवल उन विधेयकों पर तथा केवल उन बातों पर विचार करेगी, जिनके सम्बन्ध में दोनों सदनों में मतभेद है। परन्तु यदि विधेयकों के सम्बन्ध में मतभेद नहीं है और फिर भी विधेयक एक सदन द्वारा दूसरे सदन को लौटा दिया जाता है, तो संयुक्त बैठक में नये संशोधन नहीं रखे जा सकते हैं। केवल वे ही विधेयक रखे जा सकते हैं, जो इस देर के कारण आवश्यक हो गये हैं।

धन-विधेयकों के सम्बन्ध में एक विशेष प्रक्रिया रखी गयी है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, धन-विधेयक राज्य-परिषद् में पेश नहीं किया जा सकता। कोई भी धन-विधेयक जब लोक-सभा में पास हो चुकता है, तब वह राज्य-परिषद् में उसकी सिफारिश के लिये भेजा जाता है। राज्य-परिषद् को यह विधेयक अपनी सिफारिशों के साथ १४ दिन के भीतर भेज देना चाहिये। यदि

इस समय के भीतर परिषद् उसे अपनी सिफारिशों के साथ वापिस नहीं भेजती, तो वह लोक-सभा के दिये हुए रूप में दोनों सदनों द्वारा पास हुआ समझा जायगा। यदि इस समय के बीच में परिषद् अपनी सिफारिशों के साथ विधेयक को लोक-सभा के पास भेज देती है, तो उन सिफारिशों को स्वीकार करना या न करना लोक-सभा की इच्छा पर निर्भर है। इसके बाद वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास किया हुआ समझा जायगा। अनुच्छेद ११० में दिया गया है कि जिस विधेयक में निम्नलिखित में से कोई एक अथवा सब बातें होंगी, वह धन-विधेयक समझा जायगा।

(१) कोई नया कर लगाना, कोई कर कम करना, खतम करना, घटाना या बढ़ाना या नियन्त्रण करना। (२) रुपया उधार लेना। (३) भारत की आकस्मिकता निधि (Contingency fund of India) की संचित निधि (Consolidated fund) की देख-रेख; उस निधि में रुपया जमा करना या उसमें से निकालना। (४) उस निधि में से किसी काम के लिये रुपया लेना। (५) किसी खर्च का आकस्मिक निधि से लिया गया खर्च घोषित करना और ऐसे खर्च को बढ़ाना। (६) आकस्मिक निधि के लिये रुपया स्वीकार करना; भारत का सार्वजनिक आय-व्यय का खाता; इस सम्बन्ध में धन प्राप्त करना अथवा देना; संघ अथवा राज्य के आय-व्यय का हिसाब। (७) कोई भी बात जो (१) से लेकर (६) तक सम्बन्ध रखती हो। (आकस्मिकता और संचित निधियों के सम्बन्ध में अध्याय २२ देखो।)

अनुच्छेद ११० के खंड (२) में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि किसी विधेयक में अर्थदंड या जुरमाने आदि की धाराएं दी हुई हैं, अथवा यदि उनमें लाइसेंसों की फीस सम्बन्धी धाराएं हैं; अथवा किसी काम के लिये रुपया देने की बातें हैं; अथवा यदि किसी स्थानीय संस्था द्वारा या किसी स्थानीय काम के लिये किसी कर को घटाने, बढ़ाने, लगाने या नियंत्रित की धाराएं हैं, तो केवल इनके कारण वह विधेयक वित्त-विधेयक नहीं हो जायगा।

दोनों सदनों में पास होने के बाद कोई भी विधेयक राष्ट्रपति के पास उसकी स्वीकृति के लिये जायगा। राष्ट्रपति या तो उसे अपनी स्वीकृति देगा या स्वीकृति

देने से इनकार कर देगा। यदि वह वित्त-विधयक नहीं है, तो राष्ट्रपति उसे अपनी सिफारिशों के साथ संसद में वापिस भेज देगा। संसद उस पर फिर से विचार करेगी और उसकी सिफारिशों के सहित या उन सिफारिशों को स्वीकृति दिये विनाही उसे फिर से पास करेगी। तव वह विधेयक फिर से राष्ट्रपति के पास जायगा और तव राष्ट्रपति उसे स्वीकृति देने से इनकार नहीं कर सकता।

संविधान में दिया गया है, कि यदि विधान में स्पष्टरूप से न दिया गया हो, तो साधारणतः सव प्रश्नों पर संसद के प्रत्येक सदन में अथवा संयुक्त वैठक में भी निर्णय उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के साधारण वहुमत द्वारा होगा। अध्यक्ष अथवा सभापति अथवा उनके स्थान पर काम करनेवाला कोई व्यक्ति साधारणतः मतदान नहीं करेंगे। लेकिन यदि किसी प्रश्न पर पक्ष और विपक्ष में वरावर मत आवें तो उसका मत निर्णयक मत होगा। दोनों सदनों में आवश्यक उपस्थिति (Quorum) सदन के सदस्यों की कुल संख्या का दसवां भाग रखा गया है। परन्तु संसद को आवश्यक उपस्थिति की संख्या वदलने का अधिकार होगा।

संसद के प्रत्येक सदन को कार्य सम्पादन सम्वन्धी आवश्यक नियम वनाने का अधिकार होगा। संयुक्त वैठक के लिये राष्ट्रपति उच्च और निम्न सदन के सभापति और अध्यक्ष की राय लेकर नियम वनावेगा। दोनों सदनों की संयुक्त वैठकों में अध्यक्ष (Speaker) सभापति के आसन पर रहेगा।

संसद की कार्यवाही अंग्रेजी अथवा हिन्दी भाषा में होगी। संविधान में राज्यभाषा के सम्वन्ध में नियम दिये गये हैं (राज्यभाषा के सम्वन्ध में अध्याय देखो) यदि संसद इस सम्वन्ध में कोई नियम न वनावे तो संविधान प्रारम्भ होने के १५ वर्ष वाद संसद की कार्यवाही केवल हिन्दी में होगी। हिन्दी भारत की राज्यभाषा होगी। यदि किसी सदस्य को हिन्दी अथवा अंग्रेजी का उपयुक्त ज्ञान नहीं है, तो सभापति अथवा अध्यक्ष उसे अपनी मातृभाषा में वोलने का अधिकार दे सकता है।

संसद की कार्यवाही के सम्वन्ध में किसी न्यायालय को यह जांच करने का अधिकार न होगा, कि कार्यवाही नियमानुसार हुई है या नहीं। उच्चतम न्यायालय

अथवा उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कार्य अथवा चरित्र के सम्बन्ध में संसद में विवाद न होगा। लेकिन संविधान के अनुसार यदि किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने का प्रार्थना-पत्र राष्ट्रपति को दिया जाय, तो उस पर संसद में विवाद हो सकता है।

वित्त-सम्बन्धी प्रक्रिया (Financial Procedure)—वित्तीय प्रक्रिया में चार उल्लेखनीय बातें होंगी—(१) वार्षिक आय-व्यय विवरण ; (२) अनुदान की मांगें (Demands for Grants); (३) विनियोग विधेयक (Appropriation Bills) और अन्य वित्त-विधेयक।

प्रत्येक वर्ष राष्ट्रपति संसद में भारत सरकार का आय-व्यय सम्बन्धी विवरण पेश करेगा, उसमें अनुमानित आय और अनुमानित व्यय का विवरण रहेगा। अनुमानित व्यय में दो बातें अलग-अलग दिखलाई जावेंगी—(१) भारत की संचित निधि से लिये जानेवाले खर्च और (२) अन्य खर्च।

निम्नलिखित खर्च संचित निधि से लिये जावेंगे—(१) राष्ट्रपति के वेतन और भत्ते तथा उसके पद से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य खर्च, (२) राज्य-परिषद् के सभापति और उप-सभापति के वेतन और भत्ते तथा लोक-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते, (३) ऋण सम्बन्धी खर्च, (४) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को दिये जानेवाले वेतन, भत्ते और पेंशन सम्बन्धी खर्च, (५) संघ न्यायालय के न्यायाधीशों को दी जानेवाली पेंशन की रकम, (६) किसी भी ऐसे उच्च न्यायालय के जजों के वेतन, भत्ते और पेंशन जिसका अधिकार-क्षेत्र भारत के किसी भाग में हो अथवा संविधान प्रारम्भ होने के पहिले जिसका अधिकार-क्षेत्र किसी ऐसे भाग में रहा हो, जो अब भाग (क) की प्रथम अनुसूची में दिये गये राज्य में शामिल हो, (७) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor-General) के दिये जानेवाले वेतन, भत्ते और पेंशन संवन्धी खर्च, (८) वे सब खर्च जो किसी न्यायालय या मध्यस्थ न्यायालय के फैसले और आदेश या निर्णय को पूरा करने के संवन्ध में आवश्यक हों, (९) कोई भी खर्च जो संविधान अथवा कानून द्वारा संसद घोषित कर दे। उच्चतम न्यायालय के प्रवन्ध सम्बन्धी पूरा खर्च तथा रियासतों के राजाओं को मिलनेवाली

पेंशन (Privy Purses) के सम्बन्ध में अनुच्छेद १४६ और २९१ के सम्बन्ध में कहा गया है कि ये खर्च भारत की संचित निधि में से पूरे किये जायँगे। इसी प्रकार अनुच्छेद ३२२ में कहा गया है कि संघ के लोक-सेवायोग (Union Public Service Commission) का खर्च भी संचित निधि से लिया जायगा।

भारत की संचित निधि से जो खर्च लिया जायगा, उसके सम्बन्ध में संसद में मतदान नहीं हो सकता, लेकिन किसी भी सदन में उस पर वाद-विवाद हो सकता है। अन्य खर्चों के अनुमानित व्यय की मांग, अनुदान की मांगों के रूप में लोक-सभा में पेश की जायगी और लोक-सभा चाहे तो किसी मांग को स्वीकार या अस्वीकार अथवा कम कर सकती है। अनुदान की प्रत्येक मांग के लिये राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है। तभी वह लोक-सभा में पेश हो सकती है।

अनुदान देने के बाद लोक-सभा में एक विधेयक पेश किया जायगा, जिसमें यह बतलाया जायगा कि भारत की संचित निधि से अनुदान में कितनी रकम ली जायगी तथा उक्त निधि से अन्य खर्च कितनी मात्रा में लिये जायँगे। विनियोग कानून (Appropriation Act) के बिना भारत की संचित निधि से कोई भी खर्च नहीं लिया जा सकता।

प्रति वर्ष जो साधारण अनुदान हुआ करते हैं, उनके सिवा यदि अधिक आवश्यकता हो तो राष्ट्रपति संसद के सामने पूरक, सहायक अथवा अधिक अनुदान की मांग पेश कर सकता है और इसके लिये भी वही प्रक्रिया होगी जो साधारण वार्षिक मांगों के लिये होती है। लोक-सभा को पेशगी अनुदान (Advance Grants) और अपवाद अनुदान (Exceptional Grants) देने का भी अधिकार है और उनके सम्बन्ध में भी वही प्रक्रिया होगी, जो साधारण वार्षिक अनुदान के सम्बन्ध में होती है।

राज्य-परिषद् में कोई भी वित्त-विधेयक प्रथम पेश नहीं हो सकता और राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई भी वित्त-विधेयक पर विचार नहीं हो सकता। लेकिन यदि विधेयक में कोई ऐसा संशोधन हो, जिसमें किसी कर को घटाने या समाप्त करने का प्रस्ताव हो, तो उसमें राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति की या सिफारिश की आवश्यकता नहीं है।

वित्त पर नियंत्रण (Control Over Finance)—अब यह स्पष्ट हो गया है कि राज्य-परिषद् का वित्त सम्बन्धी बातों पर बहुत कम अधिकार या नियंत्रण रहेगा। अनुदान की मांगों के सम्बन्ध में उसकी कोई आवाज़ नहीं रहेगी। धन विधेयकों के सम्बन्ध में लोक-सभा को यह अधिकार होगा कि वह चाहे तो राज्य-परिषद् की सिफारिशों को स्वीकार करे और चाहे तो न करे। धन विधेयक के पास होने में यदि वह अड़ंगा भी लगाना चाहे, तो वह उसे केवल १४ दिनों तक ही रोक सकती है।

सिद्धान्त की दृष्टि से लोक-सभा के सदस्य राष्ट्र की जनता के प्रतिनिधि होंगे और राज्य-परिषद् के सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। इस तरह वित्त पर राष्ट्र के प्रतिनिधियों का वास्तविक नियंत्रण रहेगा, राज्यों के प्रतिनिधियों का नहीं।

वित्त के सम्बन्ध में राज्य-परिषद् के जो सीमित अधिकार हैं, उनकी तुलना इंग्लैंड के हॉउस ऑफ लॉर्ड्स से करना उपयुक्त होगा। वित्त के सम्बन्ध में हॉउस ऑफ लार्ड्स के अधिकार सन् १९११ के पार्लिवामेंट कानून द्वारा करीब-करीब छीन लिये गये। उस कानून में कहा गया है कि "पार्लियामेंट का अधिवेशन समाप्त होने के १ महीना पहिले यदि कोई धन-विधेयक हॉउस ऑफ कॉमन्स द्वारा पास होकर हॉउस ऑफ लार्ड्स में भेजा जाता है और यदि हॉउस ऑफ लार्ड्स उसे विना संशोधन के १ माह के भीतर पास नहीं करता, तो वह विधेयक हॉउस ऑफ कॉमन्स यदि अन्य आदेश न दे, राजा की स्वीकृति के लिये भेजा जायगा और स्वीकृति मिल जाने पर वह पार्लियामेंट का कानून हो जायगा। यद्यपि उसे हॉउस ऑफ लार्ड्स ने पास नहीं किया है।" इस प्रकार हम देखते हैं, कि हॉउस ऑफ लार्ड्स को धन-विधेयक संशोधित करने का अधिकार नहीं है और वह अधिक-से-अधिक उसे १ महीने तक रोक सकता है। भारत में उच्च सदन धन-विधेयक में संशोधन तो कर सकता है, पर उस संशोधन को स्वीकार करना लोक-सभा के हाथ में है। धन-विधेयक को उच्च सदन केवल १४ दिन अपने पास रोक सकता है।

अमेरिका की कांग्रेस में वित्त सम्बन्धी बातों में उच्च सदन अर्थात् सीनेट के अधिकार निम्न सदन अर्थात् हॉउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव्स के लगभग बराबर ही हैं।

निम्न सदन के वित्त सम्बन्धी अधिकार सीनेट से थोड़े ही ज्यादे हैं। वहां के संविधान में लिखा है कि 'आय प्राप्त करने के सब विधेयक केवल हॉउस ऑफ रिप्रे-जेन्टेटिव्स में प्रथम पेश होंगे।' लेकिन सीनेट को इन विधेयकों में संशोधन करने का अधिकार है। इस प्रकार सीनेट संशोधनों द्वारा आय प्राप्त करने का प्रायः नया विधेयक तैयार कर सकती है। खर्च सम्बन्धी विधयक दो में से किसी एक सदन में प्रथम पेश हो सकते हैं। लेकिन प्रथा के अनुसार इस प्रकार के विधेयक भी केवल हॉउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव्स में ही उत्पन्न होते हैं और वार्षिक आय-व्यय का विवरण अर्थात् बजट भी इसी सदन में ही पहिले पेश किया जाता है। लेकिन इन विधेयकों में सीनेट संशोधन कर सकती है। कभी-कभी सीनेट में इस प्रकार के विधेयक प्रथम पेश हो जाते हैं, जिनमें धन प्राप्त करने और खर्च करने का प्रश्न निहित होता है, यद्यपि उनका उद्देश्य दूसरा ही होता है। इस प्रकार अमेरिका में सीनेट के अधिकार वित्त सम्बन्धी बातों में लगभग हॉउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव्स के प्रायः बराबर रहते हैं, लेकिन भारत में वित्त सम्बन्धी प्रश्नों में भारत में राज्य-परिषद् लोक-सभा के अधीन रहती है। इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि आधुनिक शासन-प्रणालियों में वित्त का नियंत्रण यद्यपि अन्तिम रूप में विधानमंडलों के हाथ में रहता है, लेकिन व्यवहार में वास्तव में कार्यपालिका का ही पूर्ण नियंत्रण रहता है। आधुनिक राज्य दिनों-दिन कल्याणकारी राज्य (Welfare States) होते जा रहे हैं। वे अब सिर्फ शासन करनेवाले राज्य नहीं हैं। उनके समाज-सेवा सम्बन्धी कार्य बहुत बढ़ गये हैं और उसी तरह उनके आय और व्यय भी बहुत बढ़ गये हैं। आजकल यदि कोई साधारण सदस्य सरकार के खर्चों की सच्ची आलोचना करना चाहे, तो जबतक सरकार उसे आंकड़े न दे, तब तक उसे आंकड़े मिलने भी सम्भव नहीं हैं। इन सब बातों के लिये विधानमंडलों के सदस्यों को पूर्णरूप से कार्य-पालिका पर निर्भर रहना पड़ता है। इसलिये जिस कार्यपालिका का विधानमंडल में बहुमत रहेगा, उसका वित्त पर भी पूर्ण नियंत्रण रहेगा। इंग्लैंड की तरह भारत में भी यह आवश्यक होगा, कि विधानमंडल में पेश होने के पहिले सब वित्त-विधेयकों को कार्यपालिका की पूर्ण स्वीकृति मिलनी चाहिये। अनुदान की मांग

भी विना राष्ट्रपति की सिफारिश के अर्थात् कार्यपालिका के अनुमति के विना नहीं की जा सकती। इसलिये साधारणतः कार्यपालिका का ही वित्त पर पूर्ण नियंत्रण होगा।

अन्य विधि सम्वन्धी प्रक्रिया (Other Legislation)—वित्त को छोड़ कर अन्य वातों के सम्वन्ध में दोनों सदनों को कानून वनाने के समान अधिकार प्राप्त रहेंगे। निम्न सदन उच्च सदन की अवज्ञा नहीं कर सकता। लेकिन इंग्लैंड में सन् १९४९ के पार्लियामेंट के कानून के अनुसार एक विशेष प्रक्रिया द्वारा हॉउस ऑफ कॉमन्स, हॉउस ऑफ लार्ड्स की प्रायः प्रत्येक वातों में अवज्ञा कर सकता है। अर्थात् उसकी प्राय: प्रत्येक वातें काट सकता है। उस कानून के अनुसार यदि हाउस ऑफ लार्ड्स किसी विधेयक को पास नहीं करता तो हॉउस ऑफ कॉमन्स दो अधिवेशनों में पास करके एक वर्ष का समय लेकर उसे कानून वना सकता है। इस प्रकार यदि हॉउस ऑफ कॉमन्स चाहे तो अकेला कुछ कानून वना सकता है। लेकिन वित्त सम्वन्धी मामलों को छोड़ कर भारत में लोक-सभा अकेले कोई कानून नहीं वना सकती।

संयुक्त अधिवेशन (Joint Sittings)—कुछ परिस्थितियों में दोनों सदनों की संयुक्त वैठक का आदेश दिया गया है। इनमें से एक परिस्थिति यह भी है, जब दोनों सदनों में किसी वात पर समझौता या मतैक्य न हो सके। अमेरिका में जब दोनों सदनों में मतैक्य नहीं हो पाता, तो दोनों सदनों के कुछ प्रतिनिधि एक स्थान पर एक साथ वैठ कर वाद-विवाद करते हैं। प्रत्येक सदन के सब प्रतिनिधियों को केवल एक मत प्राप्त रहता है। इस प्रकार सभा में केवल दो इकाइयां होती हैं और प्रत्येक इकाई का एक-एक मत होता है। दोनों इकाइयां आपस में वातचीत करके समझौता कर लेती हैं। जो इकाई जितनी अधिक चतुर रहेगी, उसकी वात उतनी अधिक सफल होगी। भारत में दोनों सदनों के कुल उपस्थित सदस्यों की संयुक्त वैठक होगी और सदस्यों के साधारण वहुमत द्वारा निर्णय होगा। चूँकि लोक-सभा में सदस्यों की संख्या अधिक है, इसलिये अधिक सम्भावना यही है कि उसी के मत की प्रधानता रहेगी।

कार्यपालिका की निर्णायक शक्ति (The Executive Veto)—विधानमंडल जो कानून वनाता है, उन्हें प्रायः अन्तिम रूप में कार्यपालिका स्वीकार

या अस्वीकार करती है। इसे कार्यपालिका की निर्णायक-शक्ति (Veto Power) कहते हैं। इंग्लैंड के संविधान में राजा की निर्णायक शक्ति निरंकुश है, अर्थात् विधानमंडल उसकी उपेक्षा या अवहेलना नहीं कर सकता; लेकिन राजा इसका उपयोग नहीं करता और भविष्य में भी इसके उपयोग किये जाने की आशा नहीं है। अमेरिका में कांग्रेस जो भी प्रस्ताव पास करती है, या कानून बनाती है, उसे रद्द करने का अधिकार राष्ट्रपति को है। परन्तु राष्ट्रपति का यह अधिकार सीमित है। यदि कांग्रेस उस विधेयक को दो-तिहाई बहुमत से फिर से पास कर देती है, तो वह रद्द नहीं किया जा सकता। भारत में भी राष्ट्रपति को रद्द करने का अधिकार दिया गया है, परन्तु उसकी यह निर्णायक-शक्ति बहुत सीमित रखी गई है। उसका प्रभाव केवल देर करने का हो सकता है। यदि संसद के दोनों सदन राष्ट्रपति द्वारा रद्द किये गये विधेयक को साधारण बहुमत से फिर से पास कर देते हैं, तो फिर राष्ट्रपति उसे रद्द नहीं कर सकता। इसलिये भारत में राष्ट्रपति की निर्णायक शक्ति या अड़ंगा लगाने की शक्ति प्रभावपूर्ण न रहेगी।

तेरहवाँ अध्याय

उच्चतम न्यायालय

(The Supreme Court)

उच्चतम न्यायालय संघ शासन का आवश्यक अंग होता है। उच्चतम न्यायालय का मुख्य काम संविधान की अधिकारपूर्ण व्याख्या करना और संघ तथा राज्यों के बीच अधिकार-क्षेत्र सम्बन्धी झगड़ों का निबटारा करना है। इसलिये भारत के संविधान ने एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना की है।

उच्चतम न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधिपति तथा ७ अन्य न्यायाधीश रहेंगे। संसद कानून द्वारा इस संख्या में परिवर्तन कर सकती है। उच्चतम

न्यायालय के सब न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी। इसके लिये राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के उन न्यायाधीशों की सलाह लेगा, जिनको वह उपयुक्त समझे। प्रधान न्यायाधिपति को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में प्रधान न्यायाधिपति की राय लेनी आवश्यक है। न्यायाधीशों की अवकाश ग्रहण करने की आयु ६५ वर्ष रखी गई है। उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश होने के लिये किसी व्यक्ति को भारत का नागरिक होना चाहिये, तथा (१) कम से कम ५ वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो, अथवा (२) कम-से-कम १० वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय में अथवा दो या अधिक किसी ऐसे ही न्यायालयों में एडवोकेट रह चुका हो, अथवा (३) राष्ट्रपति की राय में कानूनशास्त्र या न्यायशास्त्र का श्रेष्ठ विद्वान हो। जो व्यक्ति उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका हो, वह फिर भारत में किसी न्यायालय अथवा अधिकारी के सामने वकालत नहीं करेगा। प्रधान न्यायाधिपति का मासिक वेतन ५,००० रु० होगा, तथा अन्य न्यायाधीशों का मासिक वेतन ४,००० रु० होगा। संविधान में कहा गया है कि कुछ विशेष अवसरों पर विशेष कार्यों के लिये तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा सकती है। इसी प्रकार किसी विशेष अवसर तथा किसी विशेष कार्य के लिये उच्चतम न्यायालय तथा संघ न्यायालय के अवसर प्राप्त अर्थात् पेंशनयाफ्ता न्यायाधीशों को भी बुलाया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय दिल्ली में बैठेगा। परन्तु राष्ट्रपति की सम्मति से प्रधान न्यायाधिपति समय-समय पर अन्य स्थानों पर भी उसकी बैठकें बुला सकता है। उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय (Court of Record) होगा। इस सम्बन्ध में उसे सब अधिकार प्राप्त होंगे। न्यायालय का अपमान करनेवाले को वह दंड दे सकता है। उसका क्षेत्राधिकार प्रारम्भिक (Original) तथा अपील सम्बन्धी (Appellate) दोनों तरह का होगा।

उसका प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार निम्नलिखित सम्बन्ध में होगा तथा यह अन्य किसी न्यायालय को प्राप्त न होगा—(१) भारत-सरकार तथा एक या एक से अधिक राज्यों के बीच में ; (२) भारत-सरकार तथा एक या एक से अधिक राज्य

बनाम अन्य राज्य ; (३) दो अथवा अधिक राज्यों के बीच कानूनी अधिकार तथा अन्य किसी बात (Fact) सम्बन्धी झगड़ा। निम्नलिखित बातों में उच्चतम न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है—

(१) प्रथम अनुसूची के भाग (ख) के राज्य द्वारा की गई किसी सन्धि या ससमझौता सम्बन्धी विवाद, यदि वह सन्धि या समझौता संविधान प्रारम्भ होने के पहिले किया गया था।

(२) यदि किसी राज्य ने कोई ऐसी सन्धि या समझौता किया है, जिसमें यह कहा गया है कि इस सम्बन्ध में उठनेवाला विवाद उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार में न आयेगा।

किसी भी उच्च न्यायालय के फैसले या आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकती है, यदि वह उच्च न्यायालय यह कह देता है कि इस मुकदमें में संविधान से सम्बन्ध रखनेवाले किसी कानून या धारा की व्याख्या का प्रश्न है। यदि उच्च-न्यायालय इस प्रकार का प्रमाण नहीं देता, परन्तु उच्चतम न्यायालय सोचता है कि उस फैसले में संविधान से सम्बन्ध रखनेवाले किसी कानून या धारा की व्याख्या का अर्थ निहित है, तो वह स्वयं अपील करने की आज्ञा दे सकता है।

इस विशेष शर्त को छोड़कर उच्चतम न्यायालय का अपील सम्बन्धी अधिकार-क्षेत्र दो भागों में बांटा जा सकता है—पहिला व्यवहार (Civil) और दूसरा दंड (Criminal)। व्यवहार के मुकदमों में किसी उच्च न्यायालय के फैसलों की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकती है, यदि वह उच्च न्यायालय इस बात का प्रमाण दे देता है कि (क) उस मुकदमे में २०,००० रु० से कम रकम, अथवा जो रकम संसद् निर्धारित कर दे, उससे कम रकम निहित नहीं है। (ख) अथवा उस रकम में उतनी कीमत की जायदार का प्रश्न है अथवा ; (ग) वह मुकदमा ऐसा है, जिसकी अपील उच्चतम न्यायालय में होनी चाहिये। लेकिन (ग) को छोड़कर यदि वह मुकदमा ऐसा है, जो उच्च न्यायालय में किसी अधीन न्यायालय के फैसले की अपील के रूप में आया हो और उच्च न्यायालय ने उस फैसले को बहाल रखा हो, तो उच्चतम न्यायालय में अपील होने के लिये उच्च न्यायालय को यह प्रमाण देना चाहिये कि उसमें कानून की व्याख्या का प्रश्न उठता है।

यदि उच्च न्यायालय का फैसला या आदेश केवल एक न्यायाधीश द्वारा दिया गया है, तो उसकी अपील उच्चतम न्यायालय में न होगी।

दंड के मुकदमों में उच्च न्यायालयों के फैसलों की अपील उच्चतम न्यायालय में तब हो सकती है, जब (१) उच्च न्यायालय ने अधीन न्यायालय का उन्मुक्ति का फैसला रद्द करके किसी व्यक्ति को मृत्युदंड दिया हो; (२) उच्च न्यायालय ने किसी अधीन न्यायालय से कोई मुकदमा अपने हाथ में लेकर किसी अभियुक्त को मृत्युदंड दिया हो; अथवा (३) यह प्रमाण-पत्र देता है कि इस मुकदमे की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकती है। दंड के मुकदमों के सम्बन्ध में संसद को उच्चतम न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र बढ़ाने का अधिकार है।

अपनी अदालत में अपील करने की आज्ञा देने के उच्चतम न्यायालय को विस्तृत अधिकार प्राप्त है। संविधान में कहा गया है, कि उच्चतम न्यायालय, सेना के सम्बन्ध में स्थापित न्यायाधिकरणों (Tribunals) को छोड़कर अन्य किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के फैसले या आदेश के विरुद्ध अपील करने की आज्ञा दे सकता है।

संसद को उच्चतम न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र और शक्तियां बढ़ाने का अधिकार है।

पीछे यह कहा जा चुका है, कि संविधान में उच्चतम न्यायालय को लेख या आदेश जारी करने के अधिकार दिये गये हैं। इनमें मूल अधिकारों की रक्षा के लिये वन्दी प्रत्यक्षीकरण और परमादेश सम्बन्धी लेख भी शामिल हैं। संविधान के अनुसार संसद को यह अधिकार है, कि वह अन्य बातों के सम्बन्ध में भी उच्चतम न्यायालय को इस प्रकार के लेख जारी करने के अधिकार दे सकती है।

उच्चतम न्यायालय के निर्णय या कानून भारत के अन्य सब न्यायालयों के लिये मान्य होंगे। उच्चतम न्यायालय को अपने दिये हुए फैसलों पर फिर से विचार करने का अधिकार होगा।

राष्ट्रपति को महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर उच्चतम न्यायालय की राय लेने का अधिकार है और संविधान में यह भी कहा गया है, कि उच्चतम न्यायालय के सब निर्णय और मत खुली अदालत (in open Court) में घोषित किये जायेंगे। यह

स्पष्ट नहीं किया गया है, कि उच्चतम न्यायालय का मत भी बाध्य होगा अथवा नहीं।

संविधान में यह कहा गया था, कि संविधान प्रारम्भ होते ही संघ-न्यायालय (Federal Court) के पदासीन न्यायाधीश, यदि वे अन्यथा न चाहें, तो तुरन्त उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश हो जायँगे।

न्यायपालिका की स्वाधीनता (Independence of the Judiciary)—जब तक न्यायाधीश कार्यपालिका के अधिकारियों के प्रभाव से पूर्णतया स्वतत्र न रहेंगे, तब तक अधिकार सुरक्षित न रहेंगे। ब्रिटेन और अमेरिका के संविधान के अनुसार कम-से-कम उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश शासन अधिकारियों के प्रभाव से स्वतन्त्र रहते हैं। भारत के संविधान ने भी शासनाधिकारों के विभाजन (Separation of Powers) के सिद्धान्त को स्वीकार करके उच्च न्यायालयों की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिये, कि देश की दृष्टि से पूरा शासन एक इकाई होता है। इसलिये शासनाधिकारों का पूरा-पूरा विभाजन कभी नहीं हो सकता। न्यायालय कार्यपालिका से पूर्णरूप से स्वतन्त्र कभी नहीं हो सकते, परन्तु उन्हें इतनी स्वतन्त्रता अवश्य रहनी चाहिये, कि वे निष्पक्षरूप से न्याय कर सकें।

संविधान में दो ऐसी बातें दी गई हैं, जिससे उच्चतम न्यायालय कार्यपालिका से एक उचित हद तक स्वतन्त्र रह सके। एक तो उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति की आज्ञा के विना पदच्युत नहीं किया जा सकता और राष्ट्रपति ऐसा आज्ञा तभी दे सकता है, जब संसद् का प्रत्येक सदन उससे इस सम्बन्ध में प्रार्थना करे और इस प्रार्थना का आधार उस न्यायाधीश की अयोग्यता या दुराचार बतलावे। संसद् के इस प्रकार के प्रार्थना-पत्र को न कि प्रत्येक सदन के कुल सदस्यों का बहुमत मिलना चाहिये, बल्कि प्रत्येक सदन में उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों को दो-तिहाई सदस्यों का समर्थन मिलना चाहिये। (अनुच्छेद १२४)। दूसरे, संविधान में यह स्पष्ट कहा गया है, कि नियुक्त होने के बाद किसी न्यायाधीश की उपलब्धियों, उन्मुक्तियों तथा भत्ताओं में और पेंशन, छुट्टी इत्यादि के अधिकारों में ऐसा कोई परिवर्त्तन नहीं किया जायगा, जो उसके लिये

हानिकर हो, अथवा असुविधाजनक हो (अनुच्छेद १२५)। लेकिन जब आपात की उद्घोषणा जारी हो, तब राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते कम करने का अधिकार होगा (अनु० १६०)। संविधान में यह भी स्पष्ट किया गया है, कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते भारत की संचित निधि से दिये जायँगे। अर्थात् संसद उन पर मत नहीं दे सकती। ठीक इसी प्रकार के उपबन्ध उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में भी बनाये गये हैं। इन उपबन्धों का उद्देश्य यह है, कि उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश आसानी से कार्यपालिका द्वारा इच्छानुसार पदच्युत नहीं किया जा सकता। इसी तरह इन न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते साधारण समय में कम नहीं किये जा सकते। केवल असाधारण समय में राष्ट्रपति को वेतन और भत्ते कम करने का अधिकार प्राप्त है। यह उपबन्ध भी उपयुक्त नहीं है। फिर भी यदि इन सब उपबन्धों पर विचार किया जाय तो हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि उपरोक्त दो ऊंची अदालतों के न्यायाधीशों पर कार्यपालिका के लिये दबाव या प्रभाव डालना बहुत ही कठिन होगा। ब्रिटेन में भी ऊंची अदालतों के न्यायाधीश तभी पदच्युत किये जा सकते हैं, जब संसद के दोनों सदन राजा से इस आशय की प्रार्थना करें। उनके वेतन भी संसद के मतदान से प्राप्त न होकर संचित निधि से प्राप्त होते हैं। अमेरिका के संविधान में भी इसी प्रकार के उपबन्ध हैं। उसमें लिखा है कि उच्चतम तथा अधीन न्यायालयों के न्यायाधीश सदाचार वर्तते अपने पद पर रहेंगे और उनकी सेवाओं के लिये निर्धारित समय पर वेतन मिलेगा, जो उनके सेवाकाल में कम नहीं किया जायगा।" इस प्रकार अमेरिका की संघ प्रणाली में न्यायाधीश जीवनपर्यंत या सदाचार-पालन-पर्यंत नियुक्त किये जाते हैं। वे केवल महाभियोग द्वारा पदच्युत किये जा सकते हैं। जब तक वे पद पर रहते हैं, तब तक उनके वेतन कम नहीं किये जा सकते।

उच्चतम न्यायालय का मंत्रणा क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction of the Supreme Court)—जैसा कि कहा जा चुका है, संविधान द्वारा उच्चतम न्यायालय को सलाह या मंत्रणा देने का अधिकार भी दिया

गया है। कानून सम्बन्धी अथवा अन्य कोई महत्वपूर्ण प्रश्न (Questions of Law or Fact) पर राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय की सम्मति मांग सकता है और अपनी सम्मति देने के लिये उच्चतम न्यायालय बाध्य है। (अनु० १४३) इस प्रकार की राय खुली अदालत में दी जायगी। सन् १९३५ के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट द्वारा भी संघ-न्यायालय को इस प्रकार की मंत्रणा देने का अधिकार दिया गया था। (धारा २१३) उस कानून के अनुसार गवर्नर-जनरल को यह अधिकार था कि वह कानून सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर संघ-न्यायालय की राय मांग सकता था। लेकिन ध्यान रहे गवर्नर-जनरल संघ-न्यायालय की राय केवल कानून सम्बन्धी प्रश्नों पर पूछ सकता था और नये विधान के अनुसार राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय की राय कानून (Law) तथा वस्तुस्थिति (Fact) दोनों पर पूछ सकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सन् १९३५ के शासन-कानून के अनुसार संघ न्यायालय के सामने सम्मति देने के लिये जो प्रश्न आते थे, उन पर सम्मति देने के लिये न्यायाधीश बाध्य नहीं थे। लेकिन वास्तव में उन्होंने सम्मति देने से कभी इनकार नहीं किया।

इस सम्बन्ध में यह बात जानने योग्य है कि संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के संविधान में उच्चतम न्यायालय को मंत्रणा देने का कोई ऐसा अधिकार नहीं दिया गया है और न्यायालय ऐसी मंत्रणा देने से इनकार भी कर देता है। वह केवल उन्हीं बातों पर अपनी सम्मति देता है, जो मुकदमे के सिलसिले में उसके सामने आती हैं। एक बार अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने उच्चतम न्यायालय से एक प्रस्तावित संधि के सम्बन्ध में बहुत से प्रश्नों पर राय मांगी। लेकिन न्यायाधीशों ने राय देने से इनकार कर दिया। लेकिन अमेरिका के कई राज्यों के संविधानों में अपने उच्चतम न्यायालयों को मंत्रणा देने के अधिकार दिये गये हैं, इन राज्यों में से किसी राज्य का गवर्नर अथवा विधान-मंडल कानून सम्बन्धी प्रश्नों पर अपने (उस राज्य के) उच्चतम न्यायालय की सम्मति मांग सकता है। लेकिन सम्भवतः कोलेरेडो राज्य को छोड़कर अन्य किसी राज्य में उच्चतम न्यायालयों के ऐसे प्रश्नों पर राय बाध्य नहीं समझी जाती।

कानूनशास्त्र के बहुत से पंडितों की यह राय है कि न्यायालयों के सामने कानून के प्रश्न जब तक मुकदमे के रूप में न आवें, तब तक उन्हें ऐसे प्रश्नों पर अपनी राय नहीं देनी चाहिये, इन पंडितों का विचार है कि कानून के प्रश्नों पर केवल सैद्धान्तिक राय देने से भविष्य में मुकदमा लड़नेवालों के हितों की हानि हो सकती है। प्रिवी काउंसिल की न्यायसमिति (Judicial Committee) ने ओनटेरियो के एटॉरनी जनरल बनाम केनेडा के गवर्नर-जनरल नामक मुकदमे में इसी प्रकार की राय दी थी।

लेकिन राज्य के उच्चतम न्यायालय को मंत्रणा-अधिकार देने में कुछ लाभ भी हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक कानून जो कई वर्षों से प्रचलित है, किसी मुकदमे के फैसले या कई मुकदमों के फैसलों के सम्बन्ध में न्यायालय द्वारा अवैध घोषित कर दिया जाता है, इससे लाखों मनुष्यों के लिये एकाएक कठिनाई उत्पन्न हो जाती है, उस फैसले के द्वारा बाध्य होकर उन्हें उलट-फेर करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में यदि राज्य के उच्चतम न्यायालय को मंत्रणा देने का अधिकार प्राप्त है, तो कानून बनाते समय उसकी राय पूछी जा सकती है, जिससे भविष्य में ऊपर बतलाई हुई कठिनाई न होवे।

यह स्पष्ट नहीं है कि मंत्रणा के रूप में भारत का उच्चतम न्यायालय जो राय देगा, वह कहां तक बाध्य होगी।

उच्चतम न्यायालय का अपील करने की छुट्टी देने का विशेष अधिकार (The Supreme Court's Power of Granting Special Leave to Appeal)—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, संविधान के अन्तर्गत कुछ बातों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार रहता है। इसके सिवा उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने निर्णय के आधार पर अर्थात् अपनी इच्छानुसार अपनी अदालत में अपील करने की छुट्टी या इजाजत दे सकता है। अनुच्छेद १३६ में कहा गया है कि "इस अध्याय में (संघ की न्यायपालिका सम्बन्धी अध्याय) किसी बात के होते हुए भी उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से भारत राज्य-क्षेत्र में के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या विषय में दिये हुए किसी

निर्णय, आज्ञप्ति, निर्धारण दंडादेश या आदेश की अपील के लिये विशेप इजाजत दे सकेगा।" यद्यपि इस अनुच्छेद द्वारा उच्चतम न्यायालय को अपील करने की इजाजत देने के विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन स्वयं उक्त न्यायालय ने यह तय किया हैं कि वह उन अधिकारों का उपयोग बहुत कम करेगा और केवल विशेप परिस्थितियों में करेगा। प्रीतमसिंह बनाम राज्य (१९५०) नामक मुकदमे के फैसले में न्यायालय ने इस सम्बन्ध में यह बात कही थी कि "अनुच्छेद १३६ (ऊपर दिया गया है) का पहिले के अन्य अनुच्छेदों के साथ ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस न्यायालय को स्वेच्छा सम्बन्धी जो विस्तृत अधिकार दिये गये हैं, उनका प्रयोग बहुत सोच-विचार कर और बहुत कम करना चाहिये और अपील करने की इजाजत देने के सम्बन्ध में जहां तक सम्भव हो एक-सी नीति और सिद्धान्त ग्रहण करना चाहिये कि किन बातों के सम्बन्ध में अपील करने की इजाजत दी जायगी। इस अनुच्छेद के आधार पर हम व्यवहार, अपराध तथा आय-कर सम्बन्धी मुकदमों में, तथा न्यायाधिकरणों के सामने आनेवाले बहुत से मुकदमों में अपील करने की इजाजत दे सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में हमारी राय में सबसे अधिक एक-सी नीति यही होगी कि यह न्यायालय केवल उन्हीं मुकदमों में अपील की विशेप इज़ाजत दे, जिनमें विशेप प्रकार की परिस्थितियां उपस्थित हों। समय-समय पर प्रिवी काउन्सिल ने अपराध सम्बन्धी मुकदमों में अपील की विशेप इजाजत देने के लिये कुछ सिद्धान्त ग्रहण करने का प्रयत्न किया है और इन सिद्धान्तों पर संघ-न्यायालय ने कपिलदेव बनाम राज्य (१९५०) नामक मुकदमे में विचार किया था। हम प्रिवी काउन्सिल की राय को अक्षरशः मानने के लिये बाध्य नहीं हैं, क्योंकि उसके सामने जो वैधानिक और शासन सम्बन्धी परिस्थितियां थीं, वे अब नहीं हैं, फिर भी अपील की विशेप इजाजत देने के लिये उनमें से कुछ सिद्धान्त इस न्यायालय के लिये अनुकरणीय हैं। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि यह न्यायालय तब तक अपील करने की विशेप इजाजत न देगा, जब तक यह प्रकट न हो जाय कि किसी मुकदमे के सम्बन्ध में कुछ विशेप परिस्थितियां मौजूद हैं, तथा उसमें विशेप अन्याय हुआ है और उसमें दिये गये फैसले पर फिर से विचार होना ही चाहिये।"

संविधान में न्यायपालिका की स्थिति (The Position of the Judiciary under the Constitution)—संविधान में न्यायपालिका को विस्तृत अधिकार दिये गये हैं। उसकी स्थिति वहुत कुछ अमेरिका की न्यायपालिका जैसी हैं। अमेरिका के समान भारत में भी न्यायालय कानूनों को अवैध और अमान्य इस आधार पर घोषित कर सकते हैं कि वे संविधान की धाराओं का अतिक्रमण कर सकते हैं। संविधान की अन्तिम व्याख्या और टीका करने का अधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया गया है। उच्चतम न्यायालय जिस कानून या नियम को निर्धारित करेगा, वह अन्य सब न्यायालयों के लिये मान्य और वाध्य होगा। लेकिन स्वयं उच्चतम न्यायालय के लिये वह वाध्य न होगा, क्योंकि उसे अपने फैसलों पर फिर से विचार करने का अधिकार है। फिर उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को मूल अधिकारों की रक्षा करने के लिये व्यक्तियों, संघों तथा सरकारों पर विभिन्न प्रकार के आदेश जारी करने का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कई वातों में भारत की न्यायपालिका की स्थिति सर्वोच्च तथा सर्वोपरि है। इंग्लेंड में ऐसा नहीं है, क्योंकि पार्लियामेंट की स्थिति सर्वोच्च है और न्यायपालिका उसके वनाये हुए कानूनों को अवैध घोषित नहीं कर सकती।

लेकिन कुछ वातों में भारत की न्यायपालिका की स्थिति अमेरिका की न्यायपालिका की अपेक्षा घटिया है। भारत के संविधान ने कुछ वातों को न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार के वाहर रख दिया है। इन वातों के सम्वन्ध में विधानमंडल जो कानून वनावेंगे, उन पर न्यायालय विचार नहीं कर सकते, तथा उन्हें अवैध घोषित नहीं कर सकते। इन वातों में निम्नलिखित तीन वातें महत्वपूर्ण हैं—

(१) व्यक्तियों की गिरफ्तारी, नज़रवंदी और उनके प्राणदंड के सम्वन्ध में जो कार्यप्रणाली कानून द्वारा स्थिर की जायगी, उस पर न्यायालय विचार नहीं कर सकते (अनुच्छेद २१)। लेकिन यदि इन कानूनों में कोई धारा ऐसी है, जो संविधान का अतिक्रमण करती है, तो न्यायालय उसे अमान्य घोषित कर सकते हैं।

(२) सरकार यदि किसी की सम्पत्ति प्राप्त करे, तो उसके लिये कानून द्वारा मुआवजा सम्वन्धी जो सिद्धान्त वनाये जायँगे, उन पर न्यायालय यह विचार नहीं कर

सकते कि यह मुआवजा कम, अथवा अन्यायपूर्ण अथवा अनुचित है। एक बार विधानमंडल मुआवजा सम्बन्धी जो सिद्धान्त निर्धारित कर देता है, वह अन्तिम रूप से मान्य हो जाता है। (अनु० ३१)

(३) निर्वाचन सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बातें न्यायपालिका के अधिकार-क्षेत्र के बाहर रख दी गई हैं। निर्वाचन-क्षेत्रों की जो सीमा तथा उससे निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियों की जो संख्या कानून द्वारा निर्धारित की जायगी, उस कानून पर कोई भी न्यायालय विचार नहीं कर सकता। राज्यों अथवा केन्द्रीय निर्वाचनों के सम्बन्ध में जो प्रार्थना-पत्र न्यायालयों के सामने आवेंगे, उनके लिये भी राज्यों अथवा केन्द्र के विधानमंडल न्यायालयों के अधिकार सीमित कर सकते हैं।

चौदहवां अध्याय

राज्यपाल तथा उसकी मन्त्रि-परिषद्

(The Governor And the Council of Ministers)

प्रथम अनुसूची के भाग 'क' में जिन राज्यों के नाम दिये गये हैं, उनमें से प्रत्येक में कार्यपालिका अर्थात् शासन का प्रधान राज्यपाल होगा। (प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' के राज्यों में राज्यपाल के स्थान में राजप्रमुख होगा। उसके अधिकार और कर्त्तव्य राज्यपाल के समान ही होंगे।)

राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी और उसी की इच्छा पर उसका कार्यकाल निर्भर होगा। वैसे साधारणतः राज्यपाल का कार्यकाल ५ वर्ष का होगा। राज्यपाल के पद पर नियुक्त होने के लिये किसी व्यक्ति को भारत का नागरिक होना चाहिये और उसकी आयु ३५ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये। राज्यपाल को सरकारी निवासस्थान मिलेगा और उसके वेतन और भत्ते संसद् कानून द्वारा निर्धारित करेगी। जब तक संसद् इन्हें निर्धारित न कर दे, तब तक प्रत्येक

राज्य के राज्यपाल को प्रतिमास ५,५०० रु० वेतन मिलेगा और वे सब भत्ते और सुविधाएं मिलेंगी, जो संविधान चालू होने के पहिले प्रान्तों के गवर्नरों को मिलते थे। राज्यपाल को संसद् के किसी सदन का अथवा राज्यों के विधानमंडलों का सदस्य नहीं होना चाहिये। यदि इनका कोई सदस्य राज्यपाल के पद पर नियुक्त हो जाय, तो जिस दिन से वह राज्यपाल का पद ग्रहण करेगा, उस दिन से विधानमंडल में उसका स्थान खाली हो जायगा। राज्यपाल को किसी लाभ के पद पर नहीं रहना चाहिये।

राज्यपाल की शक्तियां (Powers of the Governor)—संविधान में कहा गया है कि "संविधान के अनुसार राज्यपाल जिन बातों में स्वेच्छापूर्वक कार्य करेगा, उनको छोड़कर अन्य बातों में उसके कार्यों में सलाह देने और सहायता करने के लिये" एक मंत्रि-परिषद् होगी। लेकिन आसाम को छोड़कर अन्य किसी राज्य में राज्यपाल को स्वेच्छापूर्वक निर्णय करने के अधिकार नहीं दिये गये हैं और आसाम में भी राज्यपाल कुछ सीमा-क्षेत्रों के शासन में ही स्वेच्छापूर्ण निर्णय करेगा। इसी प्रकार जनजाति-क्षेत्रों (Tribal Areas) के शासन के सम्बन्ध में भी वह कुछ छोटी-मोटी वित्त सम्बन्धी बातों में राष्ट्रपति के एजेंट की तरह काम करेगा।

इसलिये यह कहा जा सकता है कि संविधान की मंशा यह है कि राज्यपाल अपना सब काम मंत्रियों की सलाह और सहायता से करेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या राज्यपाल हमेशा मंत्रिमंडल की सलाह लेने के लिये बाध्य है? यदि वह बाध्य है, तो वह केवल नाममात्र का प्रधान रहेगा। अन्यथा उसके हाथ में कुछ वास्तविक शक्ति रहेगी। संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी कि राज्यपाल नाममात्र का प्रधान रहेगा और इसी उद्देश्य से निर्वाचित राज्यपाल रखने का विचार त्याग दिया गया। लेकिन संविधान की भाषा से यह स्पष्ट नहीं है कि राज्यपाल हमेशा मंत्रि-परिषद् की राय लेने के लिये बाध्य है या नहीं। यदि इस सम्बन्ध में कनाडा तथा आस्ट्रेलिया जैसे देशों की प्रथाएं पथ-प्रदर्शन कर सकती हैं, तो यह कहा जा सकता है कि राज्यपाल केवल नाममात्र का प्रधान रहेगा। परन्तु यह कहना कठिन है कि ब्रिटेन की वैधानिक प्रथाएं तथा उनकी टीकाएं और

अर्थ हमारे संविधान में कहां तक लागू हो सकेंगी। इसलिये राज्यपाल की शक्तियों और सीमाओं का स्पष्टीकरण भारत के न्यायालयों को करना पड़ेगा।

परन्तु जब हम पूरे संविधान पर विचार करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि साधारणतः राज्यपाल एक वैधानिक प्रधान की तरह कार्य करेगा और अपनी मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार शासन करेगा। क्योंकि संविधान में स्पष्टरूप से कह दिया गया है कि मंत्रि-परिषद् सामूहिक रूप से विधानमंडल के प्रति जिम्मेदार होगी। इसका अर्थ यही होता है कि राज्यों में जिम्मेदार सरकार की शासन-प्रणाली होगी। इसमें शासन मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार होगा और यह मंत्रि-परिषद् जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की विश्वासपात्र होगी। फिर यह भी स्पष्ट है कि राज्यपाल एक नामनिर्देशित व्यक्ति होगा। इसलिये वह निर्वाचित विधानमंडल के प्रतिनिधियों की सलाह की उपेक्षा नहीं करेगा, क्योंकि उनकी आवाज़ जनता की आवाज़ होगी। क्योंकि सम्भव है कि उपेक्षा के फलस्वरूप मंत्रि-परिषद् अपना स्तीफा दे दे। तब राज्यपाल को दूसरी मंत्रि-परिषद् खोजनी पड़ेगी और वह मिलना आसान न होगा। परन्तु असाधारण परिस्थितियों में राज्यपाल अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है। उदाहरण के लिये यह कहा जा सकता है कि यदि मंत्रि-परिषद् विधान-सभा को विघटित करने की सलाह देती है, तो राज्यपाल उसे मानने के लिये हमेशा बाध्य न होगा।

संविधान के अन्तर्गत राज्यपाल की शक्तियों के सम्बन्ध में कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक विशेष बेंच ने सुनीलकुमार बोस वगैरह बनाम पश्चिम बंगाल सरकार के प्रधान सेक्रेटरी नामक मुकदमे (१९५०) में निम्नलिखित विचार प्रकट किये थे—

"वर्त्तमान संविधान के अनुसार राज्यपाल केवल अपने मंत्रियों की सलाह के अनुसार कार्य कर सकता है। सन् १९३५ के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट के अन्तर्गत परिस्थिति भिन्न थी। कुछ कार्य राज्यपाल अपनी इच्छा के अनुसार कर सकता था; अर्थात् उसे मंत्रियों की राय लेने की आवश्यकता नहीं थी। कुछ कार्य वह व्यक्तिगत रूप में कर सकता था। अर्थात् वह मंत्रियों की राय लेता था, परन्तु कार्य करते समय उसको मानना अनिवार्य न था। वर्त्तमान संविधान में अपनी इच्छानुसार तथा व्यक्तिगत रूप में काम करने की शक्ति

खतम हो गई है। इसलिये राज्यपाल केवल अपने मंत्रियों की सलाह के अनुसार कार्य कर सकता है। महाधिवक्ता (Advocate General) की राय में वैधानिक स्थिति यही है और हम इसे स्वीकार करते हैं।

यद्यपि ये विचार तथ्यपूर्ण हैं, फिर भी हम इन्हें अन्तिम निर्णय या टीका के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

राज्यपाल की सामान्य स्थिति को ध्यान में रखते हुए हमें इस वात पर विचार करना चाहिये, कि उसे कौन-कौन से विशिष्ट अधिकार दिये गये हैं। उसके अधिकारों को हम चार वर्गों में बांट सकते हैं—(१) कार्यपालिका सम्वन्धी ; (२) विधि सम्वन्धी ; (३) वित्त सम्वन्धी और (४) न्याय सम्वन्धी। अब हम इन पर एक-एक करके विचार करेंगे—

कार्यपालिका या शासन सम्वन्धी अधिकार (Executive Powers)—राज्य की शासन-शक्ति राज्यपाल के हाथ में रहेगी और वह उसका प्रयोग स्वयं अथवा अपने अधीन अधिकारियों द्वारा करेगा। ध्यान रहे कि राज्य की शासन-शक्ति केवल उन्हीं वातों तक सीमित रहेगी, जिनके सम्वन्ध में राज्य का विधानमंडल कानून वना सकते हैं। समवर्ती सूची में दी हुई वातों के सम्वन्ध में राज्य की कार्यपालिका शक्ति संघ की शक्ति के अधीन होती है। राज्यपाल मंत्रियों में कार्य का वितरण करेगा और शासन को सुविधापूर्वक चलाने के लिये नियम वनावेगा।

विधायिनी शक्तियाँ (Legislative Powers)—राज्य के विधान-मंडल के सदन या सदनों में जव कोई विधेयक पारित अर्थात् पास हो जाता है, तव वह राज्यपाल की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। राज्यपाल उसे स्वीकृति देता है, अथवा स्वीकृति देने से इनकार कर सकता है, अथवा उसे राष्ट्रपति विचार करने के लिये रोक सकता है। यदि वह धन-विधेयक नहीं है, तो राज्यपाल उसे विधानमंडल के पास फिर से विचार करने के लिये वापिस भेज सकता है। लेकिन यदि विधानमंडल उसे संशोधित रूप में अथवा विना संशोधन किये फिर से पास कर देता है, तो फिर राज्यपाल उसे स्वीकृति देने से इनकार नहीं कर सकता। कोई भी धन-विधेयक अथवा अन्य वित्त-विधेयक राज्यपाल की पूर्ण स्वीकृति के विना विधान सभा में पेश नहीं किया जा सकता। वित्त के सम्वन्ध में संशोधन भी

राज्यपाल की पूर्व स्वीकृति के बिना पेश नहीं किये जा सकते। लेकिन यदि संशोधन किसी कर को कम करने अथवा हटाने के सम्बन्ध में है, तो राज्यपाल की पूर्व स्वीकृति या सिफारिश की आवश्यकता नहीं है।

जब विधानमंडल के सदनों या सदन की बैठक न होती हो, तब राज्यपाल अध्यादेश (Ordinance) जारी कर सकता है। लेकिन विधानमंडल की बैठक आरम्भ होने के ६ हफ्तों के अन्दर ऐसे सब अध्यादेश समाप्त हो जायँगे; अथवा यदि ६ हफ्तों के भीतर विधान सभा उस अध्यादेश को अस्वीकृत करने का प्रस्ताव पास करती है और विधान-परिषद् उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है, तो वह अध्यादेश रद्द या समाप्त हो जायगा। राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के बिना राज्यपाल कोई ऐसा अध्यादेश जारी न करेगा—(१) यदि उसी प्रकार का विधेयक विधान सभा में पेश करने के लिये राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती, अथवा (२) यदि उसी प्रकार के विधेयक का राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा विचार होना आवश्यक समझता, अथवा (३) यदि विधानमंडल का उसी प्रकार का कानून राष्ट्रपति द्वारा विचार करने के लिये रोका जाता और राष्ट्रपति की स्वीकृति न मिलने पर वह अमान्य समझा जाता। शर्त (१) के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है, कि अनुच्छेद ३०४ के अनुसार जिन विधेयकों द्वारा दो राज्यों के बीच में अथवा एक ही राज्य के भीतर उद्योग, व्यवसाय अथवा आवागमन पर सार्वजनिक हित में प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, उन विधेयकों को राज्य विधानमंडल में पेश होने के लिये राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होती है। शर्त नं० ३ के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये, कि (क) सरकार द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करने सम्बन्धी कानून; (ख) समवर्ती सूची के विषयों के सम्बन्ध में ऐसे कानून, जो संघ के कानूनों का विरोध करते हों और (ग) वे जो ऐसी वस्तुओं के क्रय और विक्रय पर कर लगाते हों, जिन्हें संसद् कानून द्वारा देश के जीवन के लिये आवश्यक घोषित कर चुकी हो, तब तक मान्य न होंगे जब तक कि राष्ट्रपति के विचाराधीन होने के उपरान्त उन्हें राष्ट्रपति की स्वीकृति न मिल चुकी हो।

वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)—प्रत्येक आर्थिक वर्ष के सम्बन्ध में राज्यपाल राज्य के विधानमंडल के सामने राज्य के आय-व्यय का

विवरण पेश करवाता है। राज्यपाल की सिफारिश के बिना अनुदान की मांग नहीं की जा सकती। इसी प्रकार विधानमंडल के सदन या सदनों के सामने राज्यपाल पूरक अथवा अतिरिक्त खर्च सम्बन्धी विवरण पेश कराता है तथा अधिक अनुदान की मांग भी पेश कराता है।

न्याय सम्बन्धी शक्तियां (Judicial Powers) जिन बातों के सम्बन्ध में राज्य को कार्यपालिका के अधिकार प्राप्त हैं, उनके कानूनों के विरुद्ध अपराध करनेवाले व्यक्तियों के दंड को राज्यपाल कम कर सकता है, स्थगित कर सकता है, बदल सकता है, तथा क्षमा कर सकता है।

मंत्रि-परिषद् (The Council of Ministers)—अनुच्छेद १६३ में कहा गया है, कि एक मंत्रि-परिषद् होगी—जिसका प्रधान मुख्य मंत्री (Chief Minister) होगा। संविधान के अनुसार राज्यपाल जिन कार्यों को स्वेच्छानुसार करेगा, उनको छोड़कर शेष कार्यों में मंत्रि-परिषद् राज्यपाल के कार्यों में सलाह और सहायता देगी। मुख्य मंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल मुख्य मंत्री की सलाह के अनुसार करेगा। मंत्रि-परिषद् सामूहिक रूप से राज्य के विधानमंडल के प्रति जिम्मेदार होगी। लेकिन साथ ही यह भी कहा गया है, कि मंत्रियों का कार्यकाल राज्यपाल की इच्छा पर निर्भर होगा। लेकिन यह स्पष्ट है, कि सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धान्त के कारण कोई भी राज्यपाल किसी एक मंत्री को पदच्युत नहीं करेगा और जब तक मंत्रि-परिषद् विधानमंडल की विश्वासपात्र बनी रहेगी, तब तक वह पूरी मंत्रि-परिषद् को भी पदच्युत नहीं कर पायेगा। यदि लगातार ६ महीने तक कोई मंत्री विधानमंडल का सदस्य नहीं होता, तो उसे अपना पद छोड़ना पड़ेगा। बिहार, मध्य-प्रदेश और उड़ीसा में जन-जातियों के कल्याण-कार्य के लिये एक मंत्री होगा। जब तक संसद अन्यथा निर्धारित न करे तब तक मंत्रियों को वही वेतन और भत्ते मिलेंगे, जो संविधान प्रारम्भ होने के पहिले विभिन्न प्रान्तों के मंत्रियों को मिलते थे।

(जिम्मेदार सरकार, सामूहिक जिम्मेदारी इत्यादि पर टिप्पणियों के लिये 'मंत्रि-परिषद्' सम्बन्धी अध्याय देखो।)

पन्द्रहवाँ अध्याय

प्रथम अनुसूची के भाग 'क' के राज्यों के विधानमंडल

(The Legislature of the States in Part A of the First Schedule)

प्रथम अनुसूची के भाग 'क' के प्रत्येक राज्य के विधानमंडल में राज्यपाल तथा एक या दो सदन होंगे। मद्रास, बम्बई, पश्चिम बंगाल, उत्तर-प्रदेश, बिहार तथा पंजाब में विधानमंडल में दो-दो सदन होंगे तथा उड़ीसा, आसाम और मध्य-प्रदेश में केवल एक सदन होगा।

जिन राज्यों के विधानमंडलों में दो सदन होंगे, उनमें निम्न सदन को विधान-सभा (Legislative Assembly) तथा उच्च सदन को विधान-परिषद् (Legislative Council) कहेंगे। जहां केवल एक सदन होगा, उसे विधान-सभा कहा जायगा।

राज्य के सदन या सदनों की बैठक वर्ष में कम-से-कम दो बार होगी और एक अधिवेशन की अन्तिम बैठक और दूसरे अधिवेशन की पहली बैठक के बीच में ६ महीने से अधिक का अन्तर नहीं होगा। राज्यपाल समय-समय पर किसी भी सदन की बैठक करा सकता है, सदन या सदनों को सत्तावसान या स्थगित (Proroque) करा सकता है, विधान-सभा को विघटित (Dissolve) कर सकता है।

विधान-सभा (Legislative Assembly)—राज्य की विधान-सभा में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे। निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा। अर्थात् प्रत्येक नागरिक को, जिसकी आयु २१ वर्ष से कम नहीं है और जो निवास, स्थान, पागलपन, अपराध और भ्रष्टाचार के कारण मतदान करने से वंचित नहीं कर दिया गया है, मताधिकार प्राप्त होगा। निर्वाचन-क्षेत्र क्षेत्रफल के आधार पर होंगे और (आसाम के स्वायत्तपूर्ण जिलों को छोड़कर

तथा शिलांग के म्युनिसिपल बोर्ड और कैंटूनमेंट के क्षेत्रों को छोड़कर) प्रतिनिधित्व का आधार प्रति ७५,००० पीछे एक प्रतिनिधि होगा। किसी भी राज्य की विधान-सभा में ५०० से अधिक और ६० से कम प्रतिनिधि न होंगे। संविधान में विभिन्न राज्यों की विधान-सभाओं में प्रतिनिधियों की संख्या नहीं दी गई है। इसका निर्धारण नागरिकों के प्रतिनिधित्व कानून, (१९५०) (Representation of Peoples Act, 1950) द्वारा किया गया है। (आगे देखो) जहाँ तक सम्भव हो, प्रतिनिधित्व का अनुपात राज्य-भर में एक-सा होना चाहिये। प्रत्येक जनगणना के बाद राज्य के विधानमंडल के निर्वाचन क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व का अनुपात कानून द्वारा दुरुस्त हो जाना चाहिये।

इन साधारण उपबन्धों को छोड़कर राज्यों के विधानमंडलों में अल्पसंख्यक वर्गों के प्रतिनिधित्व के लिये कुछ विशेष उपबन्ध बनाये गये हैं। अनुच्छेद ३३२ में कहा गया है, कि प्रथम अनुसूची के भाग (क और ख) राज्यों के विधान-मंडलों में—(१) अनुसूचित जातियों और (२) अनुसूचित जन-जातियों के लिये (आसाम के जन-जातियों के क्षेत्रों को छोड़कर) स्थान सुरक्षित रहेंगे। आसाम की विधान-सभा में उस राज्य के स्वायत्तपूर्ण जिलों के लिये स्थान सुरक्षित रहेंगे, (देखो अध्याय २४ और २७)। यह संरक्षण अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों की जनसंख्या की आधार पर किया जायगा। आसाम में स्वायत्तपूर्ण जिलों के लिये संरक्षण उन जिलों की जनसंख्या का पूरे राज्य की जन-संख्या से जो अनुपात है, उसके आधार पर दिया जायगा। यह भी कहा गया है, कि जो व्यक्ति आसाम के किसी स्वायत्तपूर्ण जिले की अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं है, वह उस जिले के किसी भी निर्वाचन-क्षेत्र से (शिलांग के कैंटूनमेंट तथा म्युनिसिपल बोर्ड से बने हुए निर्वाचन-क्षेत्र को छोड़कर) राज्य की विधान-सभा के लिये चुनाव नहीं लड़ सकता। एंग्लो इंडियन जाति के लिये भी एक विशेष उपबन्ध बनाया गया है। यदि किसी राज्य के राज्यपाल का यह मत है, कि उस राज्य की विधान-सभा में एंग्लो इंडियन जाति का प्रतिनिधित्व उपयुक्त रूप में नहीं हुआ है, तो वह उस जाति के उपयुक्त व्यक्ति या व्यक्तियों को विधान-सभा के लिये नामनिर्देशित कर सकता है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों

तथा एंग्लो-इंडियन जातियों के लिये जो ये विशेष उपबन्ध बनाये गये हैं, वे संविधान प्रारम्भ होने के १० वर्ष बाद समाप्त हो जायँगे।

किसी राज्य की विधान-सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिये किसी उम्मीद-वार को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी चाहिये—(१) भारत का नागरिक हो; (२) उसकी आयु २५ वर्ष से कम न हो; (३) वह वे सब शर्तें पूरी करता हो, जिन्हें राज्य का विधानमंडल निर्धारित करे। यदि किसी व्यक्ति में निम्नलिखित कारणों में से कोई एक कारण उपस्थित हो, तो वह राज्य की विधान-सभा (या विधान-परिषद्) का सदस्य निर्वाचित नहीं हो सकता—१) यदि वह भारत सरकार या किसी राज्य-सरकार के अन्तर्गत किसी ऐसे लाभ के पद पर हो, जिसका विवरण प्रथम अनुसूची में दिया गया है और जिस पद को कानून द्वारा राज्य के विधानमंडल ने उन्मुक्ति नहीं दी है; (२) यदि उसका दिमाग ठीक नहीं है तथा किसी उपयुक्त न्यायालय ने इस बात की घोषणा कर दी है; (३) यदि वह दिवालिया है; (४) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है, अथवा स्वेच्छापूर्वक किसी अन्य राज्य की नागरिकता प्राप्त कर ली है, अथवा यदि उसकी राज्यभक्ति किसी अन्य विदेशी राज्य के प्रति है; (५) यदि वह राज्य के विधानमंडल के किसी कानून द्वारा इस अधिकार से वंचित हो गया है। शर्त नं० (१) के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया है, कि यदि कोई व्यक्ति भारत-सरकार का अथवा किसी अन्य राज्य का मंत्री है, तो उसका पद इस सम्बन्ध में लाभ का पद नहीं समझा जायगा।

यदि कभी यह प्रश्न उठे, कि किसी राज्य के विधानमंडल के किसी सदन के सदस्य पर इनमें से कोई शर्त लागू होती है या नहीं, तो निर्वाचन आयोग (Election Commission) की राय के आधार पर राज्यपाल का निर्णय इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय होगा।

संविधान में कुछ ऐसे उपबन्ध दिये गये हैं, जिनके आधार पर राज्यों के विधानमंडलों के लिये निर्वाचित सदस्यों के स्थान खाली या रिक्त समझे जावेंगे। जैसे कि अनुच्छेद १९० में यह कहा गया है, कि कोई भी व्यक्ति राज्य के विधान-मंडल के दो सदनों का एक साथ सदस्य नहीं हो सकता और यदि वह दोनों सदनों

के लिये चुन लिया जाता है, तो राज्य के बनाये हुए कानून के अनुसार उसे एक अथवा दूसरे सदन में अपना स्थान खाली कर देना चाहिये। उसी अनुच्छेद में यह भी कहा गया है, कि कोई भी व्यक्ति एक से अधिक राज्यों के विधानमंडल का सदस्य नहीं हो सकता। यदि वह एक से अधिक राज्यों के विधानमंडलों का सदस्य चुन लिया जाता है, तो उसे राष्ट्रपति द्वारा बनाये हुए नियमों द्वारा निर्धारित समय के भीतर एक को छोड़कर अन्य सब राज्यों के विधानमंडलों की सदस्यता छोड़ देनी चाहिये। अन्यथा उसकी सब विधानमंडलों की सदस्यता छिन जायगी। फिर यदि कोई व्यक्ति अपना त्यागपत्र अपने हस्ताक्षर सहित अध्यक्ष (Speaker) अथवा सभापति (Chairman) के पास भेजता है, तो उसका स्थान रिक्त हो जायगा। यदि ऊपर दी हुई अनर्हता (Disqualification) की ५ शर्तों में से कोई भी एक किसी सदस्य पर लागू होती है, तो उसका स्थान रिक्त हो जायगा। फिर अन्त में राज्य के विधानमंडल के किसी सदन का कोई सदस्य सदन की आज्ञा के बिना लगातार ६० दिनों तक उसकी बैठकों से अनुपस्थित रहता है, तो सदन उसका स्थान खाली घोषित कर सकता है।

प्रत्येक विधान-सभा अपने सदस्यों में से दो सदस्यों को अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के पद के लिये चुनेगी।

यदि उसका विघटन पहिले न हो, तो विधान-सभा का कार्यकाल उसकी पहली बैठक की तारीख से ५ वर्ष का होगा और ५ वर्ष समाप्त होने पर उसका विघटन काल समझा जायगा। यदि आपात की उद्घोषणा जारी हो, तो संसद कानून द्वारा विधान-सभा की अवधि एक बार में अधिक-से-अधिक एक वर्ष के लिये बढ़ा सकती है और आपात की उद्घोषणा समाप्त होते ही यह अवधि ६ मास से अधिक नहीं बढ़ सकती।

विधान-परिषद् (The Legislative Council)—विधान-परिषद् एक स्थायी संस्था होगी। उसका विघटन नहीं होगा। उसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अपना स्थान खाली कर देंगे। उसके सदस्यों की संख्या राज्य के विधान-सभा के सदस्यों की संख्या के एक-चौथाई से अधिक नहीं होगी। लेकिन कुल संख्या ४० से कम भी नहीं होगी। जब तक संसद कानून द्वारा

अन्यथा निर्धारित न करे तब तक विधान-परिषद् का संगठन निम्न-लिखित होगा—

(१) यथाशक्य एक-तिहाई संख्या उस राज्य की नगरपालिकाओं, जिला-मंडलियों तथा अन्य ऐसे स्थानीय प्राधिकारियों (L-cal Authorities) के, जैसे कि संसद कानून द्वारा निर्धारित करे, सदस्यों से मिलकर बने निर्वाचक मंडलों द्वारा निर्वाचित करेगा।

(२) यथाशक्य बारहवां भाग उस राज्य में निवास करनेवाले ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बने हुए निर्वाचक-मंडलों द्वारा चुना जायगा, जो भारत राज्य-क्षेत्र के किसी विश्वविद्यालय के कम-से-कम ३ वर्ष से स्नातक हैं, अथवा जो कम-से-कम ३ वर्ष से ऐसी शर्तों को पूरा करते हैं, जो संसद-निर्मित किसी कानून के द्वारा या अधीन वैसे किसी विश्वविद्यालय के स्नातक की उपाधियों या अर्हनाओं के बराबर ठहराई गई हों।

(३) यथाशक्य बारहवां भाग ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बने निर्वाचक-मंडलों द्वारा निर्वाचित होगा, जो राज्य के भीतर माध्यमिक पाठशालाओं से अनिम्न स्तर की ऐसी शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाने के काम में कम-से-कम ३ वर्ष से लगे हुए हैं, जैसी की संसद निर्मित कानून द्वारा या अधीन निर्धारित की जायँ।

(४) यथाशक्य तृतीयांश राज्य की विधान-सभा के सदस्यों द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से निर्वाचित होगा, जो सभा के सदस्य नहीं हैं।

(५) शेष सदस्य अर्थात् छठवां भाग राज्यपाल द्वारा उस रीति से नामनिर्देशित होंगे, जो कि इस अनुच्छेद के खंड (५) में उपवन्धित हैं। ये सदस्य ऐसे होंगे, जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला, सरकारी आन्दोलन और सामाजिक सेवा के बारे में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो।

ऊपर जितने तरह के निर्वाचक गण बतलाये गये हैं, वे सब आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली से एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) द्वारा निर्वाचन करेंगे। पहले ३ वर्गों में अर्थात् स्थानीय संस्थाओं, शिक्षकों तथा स्नातकों निर्वाचन-क्षेत्र भूमिगत (Territorial) होंगे, जिन्हें संसद-निर्मित कानून के आधार पर बनाया जायगा। संविधान में विभिन्न राज्यों

की विधान-परिषदों के सदस्यों की संख्या निर्धारित नहीं की गई है। यह संख्याः नागरिकों के प्रतिनिधित्व कानून १९५० (Representation of Peoples Act, 1950) के आधार पर निश्चित की गई है, (आगे दी हुई सूची देखो)।

विधान-परिषद् का सदस्य निर्वाचित होने के लिये किसी व्यक्ति को—(१) भारत का नागरिक होना चाहिये ; (२) उसकी आयु ३० वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये और (३) उसे वे सब शर्तें पूरी करनी चाहिये, जो राज्य का विधान-मंडल निर्धारित करे।

विधान-परिषद् अपने सदस्यों में से २ व्यक्ति सभापति और उप-सभापति के पद के लिये चुनेगी।

संविधान में विधान-परिषद् बनाने तथा समाप्त करने की प्रक्रिया दी गई है। यदि किसी राज्य की विधान-सभा अपने कुल सदस्यों के बहुमत से और उपस्थित मत देनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से विधान-परिषद् स्थापित करने का (अथवा समाप्त करने का) प्रस्ताव पास करती है, तो संसद उसके लिये कानून बना सकती है। विधान-परिषद् स्थापित करने अथवा मिटाने के लिये ऐसा जो कानून संसद द्वारा बनाया जायगा, वह संविधान का संशोधन नहीं समझा जायगा ; अर्थात् संविधान में संशोधन करने की जो प्रक्रिया दी गई है, वह आवश्यक नहीं समझी जायगी। (संशोधन सम्बन्धी अध्याय देखो।)

सदस्यों के विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां (Privileges and Immunities of Members)—कार्यप्रणाली के नियमों का पालन करते हुए प्रत्येक राज्य के विधानमंडल में भाषण की स्वतन्त्रता रहेगी। विधानमंडल में अथवा उसकी किसी कमेटी में कोई सदस्य जो कुछ कहेगा अथवा जैसा भी अपना मत दे, उसके लिये उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। इसी प्रकार विधानमंडल के अन्तर्गत जो कुछ भी प्रकाशन होगा, उसके लिये भी न्यायालय में कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। अन्य बातों के सम्बन्ध में जब तक राज्य का विधानमंडल निर्धारित न कर दे, तब तक सदस्यों के विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां वही रहेंगी, जो संविधान प्रारम्भ होने के समय ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाउस ऑफ कॉमन्स अर्थात् निम्न-सभा के सदस्यों को प्राप्त थीं।

प्रत्येक राज्य के विधानमंडल के सदस्यों को वे सब वेतन और भत्ते इत्यादि मिलेंगे, जो कानून द्वारा समय-समय पर विधानमंडल निर्धारित करे।

कानून बनाने की प्रक्रिया (The Legislative Procedure)—धन-विधेयकों तथा अन्य अर्थ-विधेयकों को छोड़कर अन्य सब प्रकार के विधेयक विधानमंडल के किसी भी सदन में प्रथम पेश किये जा सकते हैं। धन-विधेयकों के नियमों तथा विधान-परिषद् के सम्बन्ध में जो उपबन्ध बनाये गये हैं, (आगे देखो अनु० १९७) उनका पालन करते हुए जिन राज्यों में विधान-परिषदें हैं, उनमें कोई विधेयक तब तक विधानमंडल द्वारा पास नहीं समझा जायगा, जब तक दोनों सदन उसे स्वीकार न कर लें, या तो दोनों सदन उसे बिना किसी संशोधन के स्वीकार करें अथवा उसमें ऐसे संशोधन हों, जो दोनों सदनों को स्वीकृत हों।

कानून बनाने में विधान-परिषद् को अधीन दर्जा दिया गया है। धन-विधेयकों तथा अन्य विधेयकों के सम्बन्ध में उसके अधिकार बहुत सीमित कर दिये गये हैं। धन-विधेयकों को छोड़कर अन्य प्रकार के विधेयकों के सम्बन्ध में विधान-परिषद् के अधिकारों पर जो सीमाएं लगा दी गई हैं, उनका वर्णन अनुच्छेद १९७ में किया गया है। जो विधेयक विधान-सभा में पास हो गया है और विधान-परिषद् में विचार के लिये भेजा गया है, उसमें संशोधन करने की विधान-परिषद् की शक्ति अनुच्छेद १९७ द्वारा बहुत ही सीमित कर दी गई है। उस अनुच्छेद में कहा गया है, कि जब ऐसा कोई विधेयक—(क) विधान-परिषद् द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है, अथवा (ख) ऐसे संशोधनों सहित पास किया जाता है, जिन्हें विधान-सभा स्वीकार नहीं करती, अथवा (ग) उस विधेयक को विधान-परिषद् में पेश हुए ३ मास से अधिक हो गया है और परिषद् ने उसे पास नहीं किया है, तो विधान-सभा उस विधेयक को अपने उसी अधिवेशन अथवा बाद के अधिवेशनों में परिषद् द्वारा सुझाये गये संशोधनों सहित अथवा उनके बिना फिर से पास कर सकती है और उसे फिर से विधान-परिषद् में भेजेगी। अब यदि परिषद् उसे स्वीकार नहीं करती, अथवा ऐसे संशोधनों सहित पास करती है, जो विधान-सभा को स्वीकार नहीं हैं, अथवा परिषद् के सामने विधेयक को पेश हुए १ मास से अधिक हो गया है और परिषद् ने उसे स्वीकार नहीं किया है, तो

वह विधेयक राज्य के विधानमंडल के दोनों सदनों द्वारा उसी रूप में पास समझा जायगा, जिस रूप में विधान-सभा ने उसे पास किया था, और उसमें केवल वही संशोधन होंगे, जिन्हें विधान-सभा ने स्वीकार किया है।

धन-विधेयकों (Money Bills) के सम्बन्ध में विधान-परिषद् के अधिकार वही हैं, जो संसद में उच्च सदन अर्थात् राज्य-परिषद् (Council of States) के हैं। विधान-परिषद् में कोई भी धन-विधेयक प्रथम पेश नहीं हो सकता। जब विधान-सभा में कोई धन-विधेयक पास हो जाता है, तब वह विधान-परिषद् में उसकी सिफारिशों के लिये भेजा जाता है। परिषद् में पेश होने के १४ दिन के भीतर यदि वह विधेयक परिषद् की सिफारिशों सहित सभा में वापिस नहीं आता, तो वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास हुआ माना जायगा। यदि इस समय के भीतर परिषद् उस विधेयक को अपनी सिफारिशों सहित सभा में भेज देती है, तो उन सिफारिशों को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अधिकार सभा को होगा। तब वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा उसी रूप में पास समझा जायगा, जिस रूप में सभा उसे पास करे, चाहे उसमें वह परिषद् की कोई सिफारिश सम्मिलित करे या नहीं। धन-विधेयक की परिभाषा वही होगी, जो संसद के लिये दी गई है।

अनुच्छेद १९९ में कहा गया है, कि कोई भी विधेयक धन-विधेयक समझा जायगा, यदि उसमें निम्नलिखित विषयों में से सब अथवा किसी से सम्बन्ध रखनेवाले उपबन्ध शामिल हों—

(१) किसी कर का लगाना, खतम करना, कम करना, बदलना या विनियमन (Regulation);

(२) राज्य द्वारा धन उधार लेने का, अथवा कोई गारंटी देने का, अथवा राज्य द्वारा लिये गये, अथवा दिये जानेवाले किन्हीं वित्तीय आभारों से सम्बद्ध कानून के संशोधन करने का विनियमन ;

(३) राज्य की संचित निधि अथवा आकस्मिकता निधि की रक्षा, ऐसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना ;

(४) राज्य की संचित निधि में से धन व्यय करना ;

(५). किसी व्यय को राज्य की संचित निधि में से लेना, अथवा किसी व्यय की मात्रा को बढ़ाना ;

(६) राज्य की संचित निधि के या राज्य के लोक लेखे मद्दे धन प्राप्त करना, अथवा ऐसे धन की अभिरक्षा (Custody) या निकासी करना ; अथवा

(७) उपखंड (१) से (६) तक में उल्लिखित विषयों में से किसी विषय से सम्बन्धित कोई बात।

यह बात स्पष्ट कर दी गई है, कि कोई विधेयक केवल इस कारण से धन-विधेयक न समझा जायगा, कि वह जुरमानों या अन्य अर्थदंडों के आरोपण का ; अथवा लाइसेंसों के लिये फीसों की, सेवा के बदले धन देने का उपबन्ध करता है ; अथवा इस कारण से कि वह स्थानीय अधिकारी या संस्था द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिये किसी कर का आरोपण, समाप्ति, घटाने, बदलने या विनियमन का उपबन्ध करता है। यदि कभी यह प्रश्न उठता है, कि कोई विधेयक धन-विधेयक है अथवा नहीं, तो उस पर विधान-सभा के अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होगा।

जब कोई विधेयक विधानमंडल के एक या दोनों सदनों (जिस राज्य में दो सदन हों या जहाँ जैसा हो) द्वारा पास हो जायगा, तब वह राज्यपाल के सामने पेश किया जायगा, तब राज्यपाल या तो उसे अपनी स्वीकृति देगा या स्वीकृति नहीं देगा अथवा उसे राष्ट्रपति द्वारा विचार कराने के लिये रोक लेगा। यदि वह विधेयक धन-विधेयक नहीं है, तो राज्यपाल उसे अपनी सिफारिशों समेत विधान-मंडल में वापिस भेज सकता है। तब विधानमंडल उस विधेयक को संशोधन करके, अथवा पहिले के रूप में फिर से पास कर सकता है और उसे फिर राज्यपाल के पास भेजेगा। अब इस बार राज्यपाल उस विधेयक को अपनी स्वीकृति देने से इनकार नहीं कर सकता। जब कोई विधेयक राष्ट्रपति के विचार के लिये रोका जाता है तब, यदि वह धन-विधेयक नहीं है, तो राष्ट्रपति राज्यपाल को सिफारिशों सहित उस विधेयक को विधानमंडल में वापिस भेजने का आदेश दे सकता है। तब विधानमंडल को ६ महीने के भीतर उस पर विचार करना चाहिये और यदि वह विधेयक संशोधन सहित या बिना संशोधन के फिर से पास हो जाता है, तब वह फिर राष्ट्रपति के पास उसकी अनुमति के लिये भेजा जायगा।

वित्तीय विषयों में प्रक्रिया (The Financial Procedure)—संघ के समान राज्य में भी वित्तीय विषयों की प्रक्रिया के ४ अंग हैं—(१) वार्षिक वित्त-विवरण ; (२) अनुदान की मांगें ; (३) विनियोग विधेयक तथा (४) अन्य वित्त-विधेयक ।

प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे में, राज्य के विधानमंडल के सदन अथवा सदनों के सामने राज्यपाल उस वर्ष के लिये अनुमानित प्राप्तिओं और व्ययों (Estimated Receipts and Expenditure) का विवरण रखवायेगा । व्यय के अनुमान में ये दो बातें अलग-अलग दिखाई जावेंगी—(१) जो व्यय राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय के रूप में वर्णित है, उसके लिये आवश्यक रकमें ; तथा (२) संचित निधि से अन्य जो खर्च किये जायँगे, उनके लिये आवश्यक रकमें । अनुच्छेद २०२ के खंड (३) में बतलाया गया है, कि निम्नलिखित व्यय प्रत्येक राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय होगा—(१) राज्यपाल की उपलब्धियां और भत्ते तथा उसके पद से सम्बद्ध अन्य व्यय । (२) विधान-सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के तथा जहां विधान-परिषद् है, वहां विधान-परिषद् के सभापति और उप-सभापति के वेतन और भत्ते ; (३) ऋण-भार और तत्सम्बन्धी खर्च ; (४) किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतनों और भत्तों सम्बन्धी खर्च ; (५) किसी न्यायालय या मध्यस्थ-न्यायाधिकरण के निर्णय, आज्ञप्ति (Decree) या पंचाट (Award) के भुगतान के लिये आवश्यक कोई राशियां ; (६) अन्य कोई खर्च जो इस संविधान द्वारा या राज्य के विधानमंडल के कानून द्वारा इस प्रकार घोषित किया जाय । अनुच्छेद २२९, २९१ तथा ३२२ में निम्नलिखित व्यय भी संचित निधि पर भारित किये गये हैं । (१) उच्च न्यायालयों के प्रबन्ध सम्बन्धी खर्च ; (२) राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित शासकों की निजी थैली (Privy Purse) के लिये आवश्यक रकमें ; (३) राज्य के लोक-सेवा आयोग के प्रबन्ध के लिये आवश्यक खर्च । ऊपर (१) से (६) उपखंडों में जो खर्च दिखाये गये हैं, उन पर मतदान नहीं हो सकता, लेकिन विधानमंडल में उन पर विवाद हो सकता है । अन्य खर्च विधान-सभा के सामने अनुदान की मांग के रूप में आना चाहिये । तब

सभा उस मांग को स्वीकार कर सकती है, अथवा अस्वीकार, अथवा कम कर सकती है।

मांगें पेश होने के बाद एक विधेयक पेश किया जायगा, जिसमें मांगें पूरी करने के लिये संचित निधि से धन विनियोग किया जायगा, अर्थात् लिया जायगा तथा संचित निधि से होनेवाला खर्च दिखाया जायगा। इस स्थिति में मांगों अथवा उनकी रकमों को बदलने के सम्बन्ध में कोई संशोधन पेश नहीं किया जा सकता। संचित निधि से केवल विनियोग कानून (Appropriation Act) की धाराओं के आधार पर रकम ली जा सकती है।

राज्यपाल को यह अधिकार है, कि जब वह आवश्यक समझे, तब विधानमंडल के सदनों या सदन के सामने वित्त सम्बन्धी एक पूरक विवरण पेश करवा सकता है और विधान-सभा से अनुपूरक, अपर या अतिरिक्त अनुदान (Supplimentary or Additional or Excess Grants) की मांग कर सकता है। लेकिन इस सम्बन्ध में भी वही प्रक्रिया लागू होगी, जो वार्षिक वित्तीय विवरण या अनुदान की साधारण मांगों के सम्बन्ध में लागू होगी।

राज्य की विधान-सभाओं को यह अधिकार दिया गया है, कि वे पेशगी अनुदान (Advance Grants) अथवा अपवादानुदान (Exceptional Grants) दे सकती हैं।

कार्य-संचालन (Conduct of Business)—जिन विषयों के सम्बन्ध में विधान में अन्यथा निर्धारित कर दिया जाय, उनको छोड़कर सब बातों का निर्णय सदन में उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के साधारण मत द्वारा होगा। यही नियम दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों के सम्बन्ध में भी लागू होगा। सदन की कार्यवाही के लिये गणपूर्ति (Quorum) १० सदस्य अथवा सदन के समस्त सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का दशांश, इनमें से जो भी अधिक हो, वही रहेगी। अध्यक्ष अथवा सभापति प्रथमतः मत न देगा, परन्तु मतसाम्य की अवस्था में उसका निर्णयक मत (Casting Vote) होगा और वह उसका प्रयोग करेगा।

इन तथा अन्य निर्धारित नियमों का पालन करते हुए राज्य के विधानमंडल का कोई भी सदन अपने कार्य-संचालन के सम्बन्ध में नियम बना सकता है। राज्यपाल को यह अधिकार है, कि अध्यक्ष तथा सभापति की राय से वह संयुक्त बैठकों के सम्बन्ध में नियम बनायेगा तथा दोनों सदनों के बीच में कार्यवाही तथा परस्पर सम्बन्ध के बारे में भी नियम बनावेगा। जब दोनों सदनों की संयुक्त बैठकें होंगी, तब विधान-सभा का अध्यक्ष सभापतित्व करेगा और उसकी ग़ैरहाजिरी में वह व्यक्ति सभापति होगा, जो नियमानुसार निर्धारित हो।

राज्य के विधानमंडल में उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कार्य के सम्बन्ध में कोई विवाद न होगा तथा विधानमंडल की कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी प्रकार की अदालती कार्यवाही नहीं हो सकती।

राज्य के विधानमंडलों की कार्यवाही की भाषा के सम्बन्ध में अनुच्छेद २१० में कहा गया है, कि विधानमंडलों की कार्यवाही उस राज्य की राज्यभाषा या राज्य-भाषाओं या हिन्दी या अंग्रेजी में होंगी। परन्तु यदि कोई सदस्य इनमें से कोई भी भाषा नहीं बोल सकता, तो अध्यक्ष उसे अपनी मातृभाषा में बोलने का अधिकार दे सकता है। संविधान प्रारम्भ होने के १५ वर्ष बाद, जब तक राज्य का विधान-मंडल अन्यथा निर्धारित न करे, अंग्रेजी भाषा विधानमंडल की कार्यवाही के लिये अधिकृत भाषा न रहेगी। (विधेयकों की भाषा के सम्बन्ध में अनुच्छेद ३४८ में नियम दिये गये हैं। राजकीय भाषा के सम्बन्ध में अध्याय देखो।)

राज्यों के विधानमंडलों की शक्तियों पर उपबन्ध (Limitations on the Powers of the State Legislatures)—यद्यपि अपने अधिकार-क्षेत्र में राज्यों के विधानमंडल सर्वोपरि अर्थात् पूर्ण प्रभुत्वमय रहेंगे, फिर भी उनकी शक्तियों पर निम्नलिखित उपबन्ध ध्यान में रखने योग्य हैं—

(१) राज्यों के कुछ कानून तब तक मान्य न होंगे, जब तक एक बार राष्ट्रपति के विचाराधीन होने के बाद उन्हें राष्ट्रपति की अनुमति न मिल जाय। इस श्रेणी में चार प्रकार के कानून होंगे—(क) वे कानून जिनका सम्बन्ध राज्य द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करने से हो (अनु० ३१); (ख) समवर्ती सूची के विषयों सम्बन्धी वे कानून जो संसद द्वारा पहले बनाये हुए कानूनों के विरोधी हों (अनु० २५४);

(ग) वे कानून जो ऐसी वस्तुओं की खरीद और बिक्री पर कर लगावें, जिन्हें संसद समाज के लिये आवश्यक घोषित कर चुकी हो (अनु० २८६)।

(२) कुछ विधेयकों को राज्य के विधानमंडल में पेश होने के पहले राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक होगी। इस श्रेणी में वे विधेयक आवेंगे, जो सार्वजनिक हित में राज्य की सीमा के भीतर होनेवाले व्यवसाय और आवागमन पर रोक-थाम या उपबन्ध लगावें (अनु० ३०४)।

(३) यदि राज्य-परिषद् अपने सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से यह घोषित कर दे, कि राज्य-सूची (State List) के किसी विषय पर संसद को कानून बनाना चाहिये, तो संसद उस विषय पर कानून बना सकती है। लेकिन इस प्रकार के कानूनों की अवधि निश्चित रहेगी (अनु० २४९। देखो अध्याय १८)।

(४) जब आपात की उद्घोषणा जारी रहेगी, तो संसद को राज्य-सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार रहेगा।

(५) राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है, कि किसी राज्य में शासन-विधान सफलतापूर्वक नहीं चल रहा है और वह राज्य के विधानमंडल के सब अधिकार छीनकर संसद के हाथ में दे सकता है।

वित्त इत्यादि के ऊपर अनुशासन (Control Over Finance etc.)—जैसा कि होना चाहिये राज्यों के विधानमंडलों को राज्य के वित्त पर पूरा अधिकार दिया गया है। विधान-परिषद् का अधिकार ऐसी बातों में प्रायः नहीं के बराबर है। अन्य कानूनों के सम्बन्ध में भी परिषद् को बहुत कम दर्जा और अधिकार दिये गये हैं। उसकी स्थिति एक अधीन सदन की है। यदि सभा चाहे तो परिषद् की कोई परवाह न करके अकेले ही कानून बना सकती है। फिर सभा को यह अधिकार भी दिया गया है, कि वह आवश्यक बहुमत (ऊपर देखो) द्वारा प्रस्ताव पास करके परिषद् का अस्तित्व ही मिटा सकती है। इन सब धाराओं और उपबन्धों पर विचार करके बहुत लोगों का विचार है, कि विधान-परिषदों की रचना व्यर्थ ही की गई है। उनके अधिकार और उपयोगिता बहुत कम होगी, परन्तु राज्य को उनके कारण बहुत अधिक खर्च करना पड़ेगा।

उच्च सदनों की समस्या (The Problem of the Upper House)—द्वितीय सदनों की उपयोगिता या उपादेयता पर काफी विवाद हो चुका है। कुछ आलोचकों का कहना है, कि द्वितीय सदनों की कोई उपयोगिता नहीं है। एक आलोचक ने कहा है, कि या तो द्वितीय सदन प्रथम सदन से सहमत होता है, तब उसका अस्तित्व बेकार होता है; अथवा वह प्रथम सदन से सहमत नहीं होता, तब भी उसका कोई मूल्य नहीं होता।

लेकिन वास्तव में यह समस्या इतनी सरल नहीं है। यह कहा जा सकता है, कि प्रथम सदन के साथ सहमत या असहमत होने के सिवा द्वितीय सदन और कुछ काम भी कर सकता है। द्वितीय सदन यह काम कर सकता है, कि कोई कानून जल्दबाज़ी में न बनने देगा। द्वितीय सदन के कार्यों में निम्नलिखित कार्य शामिल हैं। प्रथम सदन से जो विधेयक आवें, उन पर विचार करना और उनमें संशोधन करना; ऐसे विधेयक आरम्भ करना, जो विवादग्रस्त न हों, तथा किसी विधेयक के पास होने में इतनी देर लगा देना कि जनता उस पर अपने विचार प्रकट कर सके।

जिन राज्यों में दो सदनों के विधानमंडल बनाये गये हैं, उनमें द्वितीय सदनों से ये कार्य करने की आशा की जायगी। यह आशा की जा सकती है, कि उच्च सदनों में कई विषयों के विशेषज्ञ रहेंगे, इसलिये उनमें ऊँचे दर्जे का और लाभदायक विवाद होगा।

दूसरी तरफ इस तर्क में भी काफी जोर है, कि द्वितीय सदनों के कारण किसी विधेयक के पास होने में काफी और अनावश्यक देर लग सकती है और उनके कारण राज्य के कोष को काफी खर्च करना पड़ेगा।

यह बात स्पष्ट है, कि देश का बहुत बड़ा जनमत द्वितीय सदनों को बुरा नहीं तो बेकार समझता है। उड़ीसा, मध्य-प्रदेश और आसाम जैसे राज्यों ने द्वितीय सदन न रखने का निश्चय किया, इससे इन देशों में इस प्रश्न पर जनमत की प्रवृत्ति मालूम होती है और विधान-सभा भी इनकी उपयोगिता के बारे में निश्चित नहीं थी, तभी तो उनके मिटाने के सम्बन्ध में भी कुछ धाराएं रख दी गई हैं।

लेकिन उनकी उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता इस बात पर निर्भर करेगी, कि संविधान के अन्तर्गत वे किस प्रकार कार्य करते हैं। यदि हम सन् १९३५ के शासन-कानून के अनुभव की ओर ध्यान देवें, तो उनकी उपयोगिता के सम्बन्ध में हमें निराशा ही होगी।

विधान-सभाओं में कुल स्थानों की संख्या

(ये स्थान निर्वाचन द्वारा भरे जायँगे)

भाग (क) के राज्य	कुल स्थानों की संख्या
१. आसाम	१०८
२. बिहार	३३०
३. बम्बई	३१५
४. मध्य-प्रदेश	२३२
५. मद्रास	३७५
६. उड़ीसा	१४०
७. पंजाब	१२६
८. उत्तर-प्रदेश	४३०
९. पश्चिम बंगाल	२३८
भाग (ख) के राज्य	
१. हैदराबाद	१७५
२. मध्य-भारत	९९
३. मैसूर	९९
४. पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य संघ	६०
५. राजस्थान	१६०
६. सौराष्ट्र	६०
७. ट्रावनकोर-कोचीन	१०८

विधान-परिषदों में स्थानों का वितरण

राज्य का नाम	स्थानों की कुल संख्या	स्थानीय संस्थाओं के लिये स्थान	स्नातकों के लिये स्थान	अध्यापकों के लिये स्थान	विधान-सभा के सदस्यों के लिये स्थान	नाम-निर्देशित
१	२	३	४	५	६	७
भाग 'क' के राज्य						
१. विहार	७२	२४	६		२४	१२
२. बम्बई	७२	२४	६	६	२४	१२
३. मद्रास	७२	२४	६	६	२४	१२
४. पंजाब	४०	१३	३	३	१३	८
५. उत्तर-प्रदेश	७२	२४	६	६	२४	१२
६. पश्चिम-बंगाल	५१	१७	४	४	१७	९
भाग 'ख' के राज्य						
१. मैसूर	४०	१३	३	५	१३	८

विधान-परिषदों के निर्वाचनों के लिये स्थानीय संस्थाएं और प्राधिकारी

(लोक प्रतिनिधित्व कानून १९५० के कानून द्वारा निर्धारित)

विहार

(१) नगरपालिकाएं

(२) जिलाबोर्ड

(३) केन्टूनमेंट बोर्ड

(४) नोटिफाइड एरिया कमेटियां

(५) पटना एडमिनिस्ट्रेशन कमेटी

बम्बई

(१) नगरपालिकाएं
(२) जिला बोर्ड
(३) केन्टूनमेंट बोर्ड

मद्रास

(१) नगरपालिकाएं
(२) जिला स्थानीय बोर्ड
(३) केन्टूनमेंट बोर्ड
(४) बड़ी पंचायतें, अर्थात् वे पंचायतें जिनकी विज्ञप्ति सरकारी गज़ट में की गई है और जिनके अधिकार-क्षेत्र में कम-से-कम ५००० जनता है और विज्ञप्ति प्रकाशित होने के पहले जिनकी वार्षिक आय १०,००० रुपये से कम नहीं थी ।

पंजाब

(१) नगरपालिकाएं
(२) जिला बोर्ड
(३) केन्टूनमेंट बोर्ड
(४) कस्बा कमेटियां (Small Town Committees)
(५) नोटीफॉइड एरिया कमेटियां

उत्तर-प्रदेश

(१) नगरपालिकाएं
(२) जिला बोर्ड
(३) केन्टूनमेंट बोर्ड
(४) क़सबा कमेटियां (Town Area Committees)
(५) नोटीफॉइड एरिया कमेटियां

पश्चिम बंगाल

(१) नगरपालिकाएं
(२) जिला बोर्ड
(३) केन्टूनमेंट बोर्ड
(४) स्थानीय बोर्ड

मैसूर

(१) नगरपालिकाएं
(२) जिला बोर्ड

सोलहवाँ अध्याय

प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' के राज्य

(The States In Part 'B' of the First Schedule)

स्वतन्त्र भारत में एक बड़ा भारी काम यह हुआ है, कि पहिले जो देशी रियासतें थीं, उनको एक सूत्र में बांधकर उनमें प्रजातन्त्र स्थापित किया गया है। स्वतन्त्रता के पहिले सैकड़ों देशी रियासतें थीं, जिनमें राजाओं का सामन्तशाही राज्य था। उनको या तो पहिले के प्रान्तों में मिला दिया गया या कई रियासतें मिलाकर बड़े-बड़े राज्य स्थापित किये गये। शासन-शक्ति राजाओं से छीनकर जनता को सौंप दी गई। हिमाचल-प्रदेश तथा ३ अन्य बड़ी रियासतों को छोड़कर इन सब रियासतों के संघों को संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग ख के अन्तर्गत रखा गया है। (बाद में विन्ध्य-प्रदेश को चीफ कमिश्नर का राज्य बना दिया गया। अर्थात् वह केन्द्र द्वारा शासित कर दिया गया) प्रथम अनुसूची के इस भाग में ९ राज्य हैं; वे इस प्रकार हैं—(१) हैदराबाद,

(२) जम्मू और काश्मीर, (३) मध्यभारत, (४) मैसूर, (५) पटियाला और पूर्वी पंजाब का राज्य-संघ, (६) राजस्थान, (७) सौराष्ट्र, (८) ट्रावनकोर-कोचीन और (९) विन्ध्य-प्रदेश। इनमें से मैसूर, हैदरावाद और जम्मू तथा काश्मीर को छोड़कर शेष सब राज्य पहिले की रियासतों के संघ हैं।

राज्यों का शासन (The Govt. of States)—संविधान में प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' के राज्यों को भाग 'क' के राज्यों के वाद ही स्थिति दी गई है। भाग 'ख' के राज्यों के लिये कार्यपालिका, विधानमंडल तथा न्यायपालिका सम्वन्धी धाराएं वही हैं, जो भाग 'क' के राज्यों के लिये रखी गई हैं। दोनों में केवल थोड़ा-सा अन्तर है।

कार्यपालिका (The Executive)—प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' के राज्यों के अधिकार लगभग वही रहेंगे, जो भाग 'क' राज्यों के हैं। प्रत्येक राज्य में राज्यपाल की जगह राजप्रमुख होंगे। हैदरावाद राज्य में राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत निजाम ही राजप्रमुख होंगे। इसी प्रकार मैसूर तथा जम्मू-काश्मीर के राज्यों में राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत उन राज्यों के राजा ही राजप्रमुख होंगे। अन्य राज्यों में वही व्यक्ति राजप्रमुख होगा, जिसे राष्ट्रपति स्वीकार करे। राजप्रमुख को राज्य की संचित निधि से भत्ते मिलेंगे।

विधानमंडल (The Legislature)--इनमें से प्रत्येक राज्य में एक विधानमंडल होगा, जिसमें (१) राजप्रमुख, (२) मैसूर और हैदरावाद के राज्य में दो सदन तथा (३) अन्य राज्यों में एक सदन होगा। लोक-प्रतिनिधित्व कानून (१९५०) में यह निर्धारित किया गया है, कि विधानमंडल के सदन अथवा सदनों में सदस्यों की संख्या कितनी होगी। (पिछले अध्याय में सूची देखो) चूंकि संविधान में जम्मू-काश्मीर राज्य की स्थिति अभी अनिश्चित है, इसलिये वहां के विधानमंडल के सदस्यों की संख्या लोक-प्रतिनिधित्व कानून (१९५०) के अनुसार निर्धारित नहीं की गई है।

अन्य वातों में भाग 'क' के विधानमंडलों के सम्वन्ध में जो धाराएं और उपवन्ध लागू होते हैं, वही भाग 'ख' के विधानमंडलों के सम्वन्ध में भी लागू होंगे।

न्यायपालिका (The Judiciary)--इन राज्यों की न्यायपालिका भी भाग 'ख' के राज्यों की न्यायपालिका के समान होगी तथा उसमें वही धाराएं लागू होंगी। (उच्च न्यायालय इत्यादि सम्बन्धी अध्याय देखो)। केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों के सम्बन्ध में कुछ अन्तर रहेगा। इन राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन राष्ट्रपति राजप्रमुख की सलाह से निर्धारित करेगा। लेकिन भाग 'क' के राज्यों के न्यायाधीशों के वेतन संविधान द्वारा निर्धारित कर दिये गये हैं। भाग 'ख' के राज्यों के न्यायाधीशों के भत्ते तथा पेंशन, छुट्टी इत्यादि सम्बन्धी अधिकार संसद कानून द्वारा निश्चित करेगी और जब तक संसद ऐसा न करे, तब तक राष्ट्रपति राजप्रमुख की सलाह से इन्हें निर्धारित करेगा।

केन्द्र के साथ सम्बन्ध (Relations With the Centre)—भाग 'ख' के राज्यों के केन्द्र के साथ लगभग वही सम्बन्ध रहेंगे, जो कि प्रथम अनुसूची के भाग 'क' के राज्यों के हैं। इनके विधानमंडल भी राज्य-सूची (विधायिनी शक्तियों के वितरण के सम्बन्ध में अध्याय देखो) के सब विषयों पर कानून बना सकते हैं और समवर्ती सूची के विषयों पर संघ के समान ही कानून बना सकते हैं और जैसा कि भाग 'क' के राज्यों में होगा। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय कानूनों को प्रथम मान्यता प्राप्त होगी। इन बातों का स्पष्टीकरण अध्याय १८ में किया गया है। लेकिन जम्मू-काश्मीर के सम्बन्ध में इस साधारण नियम का एक अपवाद रखा गया है। इस राज्य के सम्बन्ध में संसद केवल उन विषयों के सम्बन्ध में कानून बना सकेगी, जो—(१) संघ-सूची और समवर्ती-सूची में हैं, और जो लिखित प्रवेश-पत्र (Instrument of Accession) द्वारा राज्य ने संघ को प्रदान कर दिये थे तथा (२) अन्य बातें, जो राष्ट्रपति राज्य-सरकार की राय से निर्धारित कर दे।

शासन के सम्बन्ध में ये राज्य, संविधान आरम्भ होने से १० वर्ष तक संघ के साधारण अनुशासन में रहेंगे और समय-समय पर राष्ट्रपति जो आदेश दे, इन सरकारों को उनका पालन करना पड़ेगा। ध्यान रहे, कि यह शर्त भाग 'क' के राज्यों के सम्बन्ध में नहीं रखी गई है। संसद को यह अधिकार है, कि १० वर्ष

की इस अवधि को वह किसी राज्य विशेष के सम्बन्ध में घटा या बढ़ा सकती है और राष्ट्रपति किसी राज्य को केन्द्र के इस अनुशासन से मुक्त कर सकता है ।

वित्त के सम्बन्ध में यह उपबन्ध रखा गया है, कि इनमें से किसी राज्य की सरकार केन्द्र के साथ वित्त सम्बन्धी समझौते कर सकती है, लेकिन ये समझौते संविधान प्रारम्भ होने से १० वर्ष से अधिक नहीं चलेंगे । (वित्तीय उपबन्धों सम्बन्धी अध्याय देखो ।)

'नया प्रभुत्व' ('The New Paramountcy')—संविधान के कुछ विशेषज्ञों का मत है, कि इस संविधान ने भाग 'ख' के राज्यों के सम्बन्ध में एक 'नया प्रभुत्व' स्थापित किया है । उनका मत है, कि ये राज्य केन्द्र के अनुशासन में रहेंगे । इसका अर्थ यह है, कि उन पर केन्द्र का असीमित अनुशासन या नियंत्रण रहेगा । किसी भी राज्य के सम्बन्ध में संसद यह अवधि बढ़ा सकती है ; अर्थात् वह सभी राज्यों के सम्बन्ध में यह अवधि बढ़ा सकती है । इसलिये उनका मत है, कि जहां तक इन राज्यों का सम्बन्ध है, ये धाराएं संघ को एकात्मक शासन (Unitary Government) बना देती हैं । यह भी कहा गया है, कि केन्द्र में जिस दल की सरकार होगी, वह भाग 'ख' के राज्यों की स्थिति से लाभ उठाकर अपनी स्थिति दृढ़ बना सकती है और इस प्रकार प्रगतिशील परिस्थितियों की प्रगति में बाधा पड़ेगी ।

यह तो मानना ही पड़ेगा, कि इस तर्क में काफी तथ्य है ; लेकिन यह डर बेकार है, कि इन राज्यों की वैधानिक स्थिति का लाभ उठाकर प्रतिक्रियागामी शक्तियों को प्रोत्साहन मिल सकता है । भारत में जनमत अब काफी जागृत है और वह इस प्रकार की प्रवृत्तियों को उठने नहीं देगा । भाग 'ख' के राज्य अभी तक पिछड़े हुए थे । उनमें सामन्तशाही का राज्य था । इन राज्यों में यह परिवर्तन का युग है । उनमें प्रजातन्त्र स्थापित करना है । इस उद्देश्य से उनमें केन्द्र का अनुशासन रखा गया है । संविधान निर्माताओं का विचार था, कि इस परिवर्तन काल को पूरा होने में १० वर्ष लगेंगे । इसीलिये केन्द्रीय अनुशासन की अवधि १० वर्ष रखी गई है । इस अनुशासन के १० वर्ष से अधिक रहने की आशा नहीं है ।

सतरहवाँ अध्याय

केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्र

(Centrally Administered Areas)

प्रथम अनुसूची के भाग 'ग' के राज्य (The States In Part 'C' of the First Schedule)—प्रथम अनुसूची के भाग 'ग' में निम्नलिखित राज्य शामिल हैं—अजमेर, भोपाल, बिलासपुर, कूचविहार, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल-प्रदेश, कच्छ, मनीपुर और त्रिपुरा। इन राज्यों का शासन केन्द्र द्वारा होता है। (अब कूचविहार पश्चिम बंगाल में मिला दिया गया है, तथा विन्ध्य-प्रदेश भाग 'ग' का राज्य हो गया है।)

संविधान में कहा गया है, कि इन राज्यों का शासन राष्ट्रपति करेगा। इन राज्यों का शासन राष्ट्रपति चीफ कमिश्नर अथवा लेफ्टिनेंट-गवर्नर द्वारा कर सकता है, जिनकी नियुक्ति वही करेगा ; अथवा इन राज्यों का शासन वह किसी पास के राज्य के द्वारा कर सकता है। इसके लिये पहिले तो, उसे उस सरकार की राय जाननी चाहिये, फिर उपयुक्त उपायों द्वारा भाग 'ग' के उस राज्य के लोगों की राय जाननी चाहिये।

जिन राज्यों का शासन चीफ कमिश्नर अथवा लेफ्टिनेंट-गवर्नर द्वारा होगा, उनके लिये संसद को विधानमंडल बनाने का अधिकार दिया गया है। संसद इन विधानमंडलों के अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित करेगी। ये विधानमंडल या तो नामनिर्देशित किये जा सकते हैं, या निर्वाचित अथवा अंशरूप में निर्वाचित और अंशरूप में नामनिर्देशित। इनमें से प्रत्येक राज्य के लिये संसद एक मंत्रि-परिषद् या सलाहकार-समिति भी स्थापित कर सकती है।

भाग 'ग' के राज्यों में जनता ने प्रतिनिधि संस्थाएं स्थापित करने की मांग की थी। इसलिये संसद ने इन राज्यों में विधानसंडल स्थापित करने के लिये कानून बनाया।

भाग 'ग' के राज्यों में विधानमंडल और मंत्रि-परिषद्—भाग 'ग' का शासन कानून (१९५१) में कहा गया है, कि बिलासपुर को छोड़कर भाग 'ग'

के सव राज्यों में विधानमंडल और मंत्रि-परिषदें स्थापित होंगी। कच्छ, मनीपुर तथा त्रिपुरा में ये धाराए' तव तक कार्यान्वित न होंगी, जव तक केन्द्रीय सरकार एक विज्ञप्ति द्वारा इनके लिये तारीख निश्चित न करे।

इसलिये फिलहाल इनमें से केवल ६ राज्यों में, अर्थात् अजमेर, भोपाल, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल-प्रदेश तथा विन्ध्य-प्रदेश में विधानमंडल और मंत्रि-परिषदें स्थापित होंगी। इन राज्यों के विधानमंडलों में स्थानों की संख्या आगे सूची में दी हुई है। विधानमंडलों के निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे। इन राज्यों के विधानमंडल राज्य सूची तथा समवर्ती-सूची के विषयों पर कानून वना सकेंगे, (देखो अध्याय १८) लेकिन निम्नलिखित वातों पर दिल्ली राज्य का विधानमंडल निम्नलिखित में से किसी भी विषय पर कानून नहीं वना सकेगा। सार्वजनिक शान्ति और सुरक्षा ; पुलिस तथा रेलवे पुलिस, नगरपालिकाओं का संगठन तथा उनके अधिकार, दिल्ली और नई दिल्ली से सम्वन्ध रखनेवाली इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, पानी की पूर्ति, सफाई और नालियां, विजली तथा सार्वजनिक उपयोगिता की अन्य वातें, दिल्ली में स्थित संघ की इमारतें तथा जमीनें ; उन जमीनों पर कर वसूली तथा उनकी खरीद और विक्री के सम्वन्ध में किसी प्रकार का कर ; ऊपर दी हुई वातों के सम्वन्ध में वने हुए कानूनों के विरुद्ध किये गये अपराधों के सम्वन्ध में कार्यवाही ; इन वातों से सम्वन्धित न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र के सम्वन्ध में ; इन विषयों से सम्वन्ध रखनेवाली वातों पर फीस (इनमें न्यायालयों में लगनेवाली फीस शामिल नहीं है।) यदि इन विधानमंडलों के तथा संसद के वनाये हुए कानूनों में कोई विषमता या विरोध हो, तो संसद के कानूनों को ही मान्यता मिलेगी। यदि विधानमंडलों का विघटन पहिले न हो जाय, तो उनका कार्यकाल ५ वर्ष का रहेगा। यदि आपात की उद्घोषणा जारी हो, तो राष्ट्रपति एक वार में उसकी अवधि अधिक-से-अधिक १ वर्ष के लिये वढ़ा सकता है और उद्घोषणा समाप्त होने पर ६ मास से अधिक उसकी अवधि नहीं वढ़ा सकता। लगभग अन्य सव वातों में इन राज्यों की विधान-सभाओं के अधिकार, कर्त्तव्य और कार्यप्रणाली भाग 'क' के राज्यों की विधान-सभाओं के समान होंगे।

प्रत्येक राज्य में एक मंत्रि-परिषद् होगी, जो चीफ कमिश्नर को सलाह और सहायता देगी। चीफ कमिश्नर के कार्य उन बातों से सम्बन्धित होंगे, जिन पर राज्य की विधान-सभा कानून बनावेगी। लेकिन कानून के अनुसार न्याय सम्बन्धी कार्य वह स्वेच्छानुसार करेगा। मुख्य मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति मुख्य मंत्री की सलाह के अनुसार करेगा। मंत्रि-परिषद् विधान-सभा के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार रहेगी। यदि भाग 'क' और 'ख' के राज्यों की परिषदों के साथ तुलना करें तो हम देखेंगे कि भाग 'ग' के राज्यों की मंत्रि-परिषदों के हाथ में वास्तविक अधिकार बहुत कम रहेंगे। यदि चीफ कमिश्नर और मंत्रियों में मतभेद हो, तो उस प्रश्न को चीफ कमिश्नर राष्ट्रपति के सामने रखेगा तथा राष्ट्रपति के निर्णय के अनुसार कार्य करेगा। यदि आवश्यक परिस्थिति आ पड़े, तो चीफ कमिश्नर अपने निर्णय के अनुसार कार्य करेगा और राष्ट्रपति के निर्णय की प्रतीक्षा करेगा। यदि चीफ कमिश्नर उपस्थित हो, तो वह मंत्रि-परिषद् की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करेगा। उसकी गैरहाजिरी में राष्ट्रपति के बनाये हुए नियमों के अनुसार कोई मंत्री सभापति होग।

मुख्य-आयुक्त (Chief Commissioner)—मुख्य-आयुक्त अर्थात् चीफ कमिश्नर की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और वह राज्य की कार्यपालिका का प्रधान होगा। वह जो कुछ भी कार्य मंत्रियों की सलाह से अथवा उनकी सलाह के बिना करेगा, वे सब राष्ट्रपति के नाम से होंगे। समय-समय पर चीफ कमिश्नर विधान-सभा की बैठकें करावेगा, लेकिन एक अधिवेशन की अन्तिम बैठक की अन्तिम तिथि और अगली बैठक की प्रथम दिन की तिथि में ६ महीने से अधिक का अन्तर नहीं होगा। चीफ कमिश्नर समय-समय पर विधान-सभा को स्थगित या विघटित कर सकता है। वह विधान-सभा में अपना भाषण दे सकता है और उसके लिये सदस्यों को उपस्थित होने का आदेश दे सकता है। वह विधान-सभा में अपना संदेश भेज सकता है और सभा उस पर विचार करेगी। राष्ट्रपति की सम्मति से चीफ कमिश्नर प्रत्येक आर्थिक वर्ष के सम्बन्ध में विधान-सभा में एक विवरण पेश करावेगा, जिसमें उस वर्ष में अनुमानित आय

और व्यय का विवरण रहेगा। उसकी सिफारिश के बिना विधान-सभा में कोई धन विधेयक पेश नहीं हो सकता।

जित बातों पर विधान सभा कानून बना सकती है, उन पर चीफ कमिश्नर को सलाह और सहायता देने के लिये एक मंत्रि-परिषद् होगी। लेकिन उसके न्यायपालिका सम्बन्धी कार्यों में सलाह देने का अधिकार मंत्रि-परिषद् को नहीं है। कानून के अनुसार कोई कार्य वह न्यायपालिका या उसके समान रूप में कर रहा है अथवा नहीं, इस बात पर अन्तिम निर्णय उसी का रहेगा।

जब चीफ कमिश्नर उपस्थित रहेगा, तब वह मंत्रि-परिषद् की बैठकों का सभापतित्व करेगा। यदि उसके और उसके मंत्रियों के बीच में कोई मतभेद हो, तो वह इसकी रिपोर्ट राष्ट्रपति को देगा और राष्ट्रपति के निर्णय के अनुसार काम करेगा। यदि किसी ऐसी बात पर मतभेद होता है, जिसमें तुरन्त कार्य करने की आवश्यकता है, तो वह राष्ट्रपति के निर्णय की प्रतीक्षा करते हुए तुरन्त अपने निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है। दिल्ली राज्य में नई दिल्ली के सम्बन्ध में कोई मंत्री या मंत्रि-परिषद् जो निर्णय लेगी, उसमें चीफ कमिश्नर की सहमति आवश्यक है। और कोई बात नई दिल्ली के सम्बन्ध में है अथवा नहीं, इस पर चीफ कमिश्नर का निर्णय अन्तिम रहेगा।

केन्द्र का पूर्ण अनुशासन (The Retains Complete Control) —यद्यपि भाग 'ग' राज्यों के शासन-कानून (Government of Part 'C' States Act) के अनुसार इन राज्यों में प्रतिनिधि संस्थाएं होंगी, फिर भी केन्द्र का उन पर पूर्ण अनुशासन होगा। इन राज्यों के सम्बन्ध में संसद को कानून बनाने का पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त है। इन राज्यों के बनाये हुए कानूनों को संसद प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से बदल सकती है, अथवा समाप्त कर सकती है तथा आवश्यकता पड़ने पर उपयुक्त कानून भी उनके लिये बना सकती है। फिर कानून में स्पष्टरूप से यह कह दिया गया है कि चीफ कमिश्नर तथा मंत्रि-परिषद् दोनों राष्ट्रपति के नियंत्रण या अनुशासन में रहेंगे और समय-समय पर वह जो आदेश देगा, उनका पालन करेंगे। यदि चीफ कमिश्नर की रिपोर्ट पर अथवा अन्य किसी कारण से राष्ट्रपति की यह धारणा है कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो

गई है कि राज्य का शासन 'भाग 'ग' राज्य कानून' के अनुसार नहीं चल सकता, तो वह अपने आदेश द्वारा उस कानून की कोई भी धारा अथवा सब धाराएं स्थगित कर सकता है। इसका अर्थ यह होगा कि विधान-सभा तथा मंत्रि-परिषद् दोनों की सत्ता स्थगित हो जायगी।

भाग 'ग' राज्यों की विधान-सभाओं में स्थानों का वितरण

(Table of Seats in the Legislative Assemblies of Part 'C' States)

राज्य	स्थानों की कुल संख्या	अनुसूचित जातियों के लिये सुरक्षित स्थानों की संख्या	अनुसूचित आदिम जातियों के लिये सुरक्षित स्थानों की संख्या
१	२	३	४
(१) अजमेर	३०	६	...
(२) भोपाल	३०	५	२
(३) कुर्ग	२४	३	३
(४) दिल्ली	४८	६	...
(५) हिमाचल-प्रदेश	३६	८	...
(६) विन्ध्य-प्रदेश	६०	६	६

प्रथम अनुसूची के भाग 'घ' के क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्र (Territories in Part 'D' of the First Schedule and other Territories not Specified in the Schedule)—प्रथम अनुसूची के भाग 'घ' में अंडमान और निकोबर द्वीपसमूह हैं। इन क्षेत्रों का तथा अन्य क्षेत्रों का जिनका उल्लेख प्रथम अनुसूची में नहीं है, शासन राष्ट्रपति चीफ कमिश्नर अथवा अन्य किसी अधिकारी द्वारा करेगा। उस अधिकारी की नियुक्ति भी वही करेगा। इन क्षेत्रों के सुशासन और शान्ति के लिये राष्ट्रपति नियम बनावेगा; तथा इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में पहले के बने हुए तथा संसद के बनाये हुए कोई भी कानून वह बदल सकता है, अथवा समाप्त कर सकता है।

अठारहवाँ अध्याय

विधायिनी शक्तियों का वितरण

(Distribution of Legislative Powers)

प्रत्येक संघ-शासन में केन्द्र तथा राज्यों की इकाइयों के अधिकार-क्षेत्र अलग-अलग स्पष्टरूप से निर्धारित कर दिये जाते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जाता है, कि केन्द्र तथा राज्यों के बीच में विधायिनी शक्तियों का बंटवारा कर दिया जाता है।

साधारणतः संघ-शासन तथा राज्यों के बीच में शक्तियों या अधिकारों का बंटवारा करने के दो तरीके होते हैं। एक तो संघ सरकार के अधिकारों का उल्लेख स्पष्टरूप से कर दिया जाय तथा शेष सब अधिकार राज्यों के हाथ में छोड़ दिये जायँ। अमेरिका और आस्ट्रेलिया के संविधान में ऐसा ही किया गया है। दूसरा यह कि राज्यों की शक्तियों का स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाय तथा शेष अधिकार केन्द्र के हाथ में छोड़ दिये जायँ। कनाडा के संविधान में इस तरीके पर अमल किया गया है।

भारत में विधायिनी शक्तियों का विभाजन लगभग कनाडा के तरीके पर किया गया है। लेकिन हमारे संविधान में इस सम्बन्ध में कुछ नई बातें हैं। हमारे संविधान में तीन विधायिनी सूचियां हैं। अर्थात् संघ-सूची (Union List), राज्य-सूची (State List) और समवर्ती-सूची (Concurrent List), (ये सूचियां अध्याय के अन्त में दी हुई हैं) जैसा कि अनुच्छेद २४६ में कहा गया है, संघ-सूची के विषयों पर केवल संसद ही कानून बना सकती है। राज्य-सूची में जिन विषयों का उल्लेख है, उन पर फिलहाल प्रथम अनुसूची के केवल भाग 'क' और 'ख' राज्य ही अपने सम्पूर्ण अथवा कुछ क्षेत्रों के लिये कानून बना सकते हैं। समवर्ती सूची के विषयों पर दोनों अर्थात् संसद और

प्रथम अनुसूची के भाग 'क' और 'ख' के राज्य कानून बना सकते हैं। जो क्षेत्र प्रथम अनुसूची के भाग 'क' और 'ख' में नहीं आते, उनके सम्बन्ध में संसद किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। कानून बनाने के अवशिष्ट अधिकार (Residual Powers) केन्द्र अर्थात् संसद के हाथ में रहेंगे। यदि संसद और राज्यों के विधानमंडलों द्वारा बनाये हुए कानूनों में कोई विषमता या विरोध होवे तो संसद के कानूनों को ही मान्यता मिलेगी और जिस हद तक विषमता होगी, उस हद तक राज्यों के कानून अमान्य होंगे। समवर्ती-सूची के किसी विषय पर यदि प्रथम अनुसूची के भाग 'क' और 'ख' के किसी राज्य के विधानमंडल ने कोई कानून बनाया है और यदि वह कानून संसद के बनाये हुए पहिले के किसी कानून का विरोध करता है, तो उस राज्य के विधानमंडल के बनाये हुए कानून को ही मान्यता प्राप्त होगी। लेकिन इसमें शर्त यह है, कि वह कानून ऐसा हो, जो राष्ट्रपति के विचाराधीन किया गया था और राष्ट्रपति ने उसे अपनी अनुमति दे दी थी। साथ ही संसद् को यह अधिकार भी दिया गया है, कि वह ऐसे किसी भी कानून को एक नये कानून द्वारा संशोधित या समाप्त कर सकती है। इन उपबन्धों के सिवा संविधान ने संसद् को यह अधिकार दिया है, कि यदि वह सोचती है, कि राज्य-सूची का कोई विषय राष्ट्रीय महत्त्व का है, अर्थात् उसका महत्व सारे राष्ट्र के लिये है, तो वह उस पर कानून बना सकती है। साथ ही एक अथवा अधिक राज्य अपने अधिकार-क्षेत्र का कोई भी विषय स्वेच्छापूर्वक केन्द्र को कानून बनाने के लिये दे सकते हैं।

अनुच्छेद २४९ में कहा गया है कि यदि राज्य-परिषद् में उपस्थित और मतदान करनेवाले दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पास हो कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक है कि राज्य-सूची के किसी विषय पर संसद कानून बनावे, तो जब तक वह प्रस्ताव वैध रहेगा, तब तक संसद को उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार रहेगा। प्रस्ताव की यह अवधि बाद में प्रस्तावों द्वारा एक बार में एक वर्ष के लिये बढ़ाई जा सकती है और जब प्रस्ताव की मान्यता समाप्त हो जायगी, तब इस अनुच्छेद के अनुसार संसद द्वारा बनाये हुए कानून की अवधि भी उसके ६ महीने बाद समाप्त हो जायगी। इस बात को ध्यान में रखना

चाहिये कि यदि संसद को राज्य-सूची के किसी विषय पर कानून बनाने का अधिकार मिल जाता है, तो उससे उस विषय पर कानून बनाने की किसी राज्य की शक्ति खत्तम नहीं हो जाती। लेकिन यदि इस सम्बन्ध में संसद के कानून या राज्य के कानून में कोई विषमता उत्पन्न हो, तो संसद के कानून को ही मान्यता प्राप्त होगी।

अनुच्छेद २५२ के अनुसार यदि दो अथवा अधिक राज्यों के विधानमंडल इस आशय के प्रस्ताव पास करें कि उनके अधिकार-क्षेत्र में आनेवाले किसी विषय पर संसद कानून बनाकर उस विषय का विनियमन करे तो संसद ऐसा कर सकती है। इस कानून को अन्य राज्य भी ग्रहण कर सकते हैं, यदि उनके विधान-मंडल के सदन भी इस प्रकार के प्रस्ताव पास कर लें। ऐसा कानून केवल संसद द्वारा संशोधित या समाप्त हो सकता है।

अध्याय १० में कहा जा चुका है कि जब आपात की उद्घोषणा जारी हो, तो संसद सारे देश के लिये अथवा उसके किसी भाग के लिये राज्य-सूची के किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। उद्घोषणा समाप्त होने के ६ माह बाद इस प्रकार के कानून भी समाप्त हो जायँगे। लेकिन इसको ध्यान में रखना चाहिये कि संसद की इस शक्ति से राज्यों के अपने अधिकार-क्षेत्र में कानून बनाने की शक्ति समाप्त नहीं हो जाती। हां, यदि संघ-कानून तथा राज्य-कानून में किसी प्रकार का विरोध हो, तो संघ-कानून को ही मान्यता प्राप्त होगी।

अपने क्षेत्र में प्रत्येक का प्रभुत्व (Each Sovereign in Its Sphere)—यह बात स्पष्ट है कि संविधान की धाराओं का पालन करते हुए संघ तथा (प्रथम अनुसूची के भाग 'क' और 'ख' के) राज्यों को अपने-अपने क्षेत्र में सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त है। संसद राज्यों के विधायक क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं कर सकती और राज्य संसद के विधायक क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं कर सकते। यदि एक दूसरे के क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं, तो न्यायपालिका उन्हें ऐसा करने से रोकेगी। यदि संविधान के विपरीत संघ का कोई कानून किसी ऐसी बात का विनियमन करने का प्रयत्न करता है, जो राज्यों के लिये सुरक्षित है, तो न्यायपालिका उस कानून को अवैध और अमान्य घोषित कर सकती है। इसी

प्रकार न्यायपालिका राज्यों को भी उनकी अधिकार-सीमा के भीतर रखेगी वे भी संघ की अधिकार-सीमा का अतिक्रमण नहीं करने पावेंगे। इस प्रकार संविधान के अन्तर्गत संघ तथा राज्य अपने-अपने अधिकार-प्रदेश में अपना काम करेंगे। लेकिन इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिये कि यह सम्बन्ध केवल संघ तथा प्रथम अनुसूची के भाग 'क' और 'ख' के राज्यों के बीच में ही रहेगा। अन्य राज्यों तथा क्षेत्रों के सम्बन्ध में संसद् को किसी भी विषय पर कानून बनाने का अधिकार रहेगा, चाहे वह विषय भले ही राज्य-सूची में शामिल हो ।

अन्य संघ संविधानों के साथ तुलना (Comparison With Other Federal Constitution)—शक्तियों के विभाजन की दृष्टि से हमारे विधान में तथा संसार के अन्य संघ विधानों में तीन बातों में अन्तर दिखाई पड़ता है।

(क) संसार के अन्य संविधानों की अपेक्षा हमारे संविधान में शक्तियों का केन्द्रीयकरण कहीं अधिक है। संघ इतना अधिक शक्तिशाली बना दिया गया है कि कई जगह इस बात की शिकायत की गई है कि राज्य केवल 'शानदार संस्थाएं' (Glorified Corporations) रह गई हैं। यद्यपि इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति है, फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि संघ बहुत अधिक शक्तिशाली बना दिया गया है। संघ-सूची में ९७ विषय रखे गये हैं; जिन पर केवल संसद् ही कानून बना सकती है; फिर समवर्ती-सूची में भी संघ को सर्वोपरि अधिकार दिये गये हैं और अवशिष्ट अधिकार भी संघ को ही दिये गये हैं। फिर आपात सम्बन्धी अधिकार भी संघ ही को दिये गये हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि राज्यों की जनता अपने शासन अधिकारों का बहुत सावधानी के साथ उपयोग न करे तो यह डर है कि राज्य निर्बल और शक्तिहीन हो जायंगे और देश में एक तानाशाही शासन-प्रणाली जड़ पकड़ लेगी। हमारे संविधान में आपात सम्बन्धी जो अधिकार हैं, वे संसार के अन्य विधानों में नहीं पाये जाते।

(ख) आपात सम्बन्धी अधिकार (देखो अध्याय १०) हमारे संविधान की बड़ी महत्वपूर्ण विशेषता है। ऐसे उपबन्ध संसार के अन्य किसी संविधान में नहीं

हैं। उनकी सहायता से संकटकाल में संघ-शासन को एकात्मक शासन बनाया जा सकता है। मालूम होता है कि विधान निर्माताओं का यह विचार था कि संकट या आपात के काल में संघ-प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। लेकिन इन उपबन्धों के कारण हमारे संविधान में तथा अमेरिका और आस्ट्रेलिया के संविधानों में कुछ मौलिक अन्तर आ जाते हैं।

(ग) तीसरे हमारे संविधान में विधायिनी शक्तियों की जैसी सूचियां दी गयी हैं, उतनी बड़ी शक्तियां संसार के अन्य किसी संविधान में नहीं दी गई हैं। इसका एक सुफल यह होगा कि संघ तथा राज्यों के बीच में अधिकारों के सम्बन्ध में संघर्ष नहीं होगा।

संसार की अन्य संघ-प्रणालियों में शक्तियों का जो वितरण किया गया है, उन पर संक्षेप में विचार करना यहां अनुपयुक्त न होगा।

पहिले संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के संविधान पर विचार करना चाहिये। अमेरिका में कुछ राज्यों ने मिलकर संघ बनाया था और अपने कुछ अधिकार संघ के विधानमंडल अर्थात् कांग्रेस को दे दिये थे। इन अधिकारों का उल्लेख संविधान में कर दिया गया था और शेष अधिकार राज्यों के हाथ में छोड़ दिये गये थे। अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में कांग्रेस तथा राज्यों के विधानमंडल पूर्ण प्रभुत्व रखते हैं। एक दूसरे के अधिकार-क्षेत्रों का अतिक्रमण नहीं करते। हमारे संविधान में संसद को जितने अधिकार दिये गये हैं, अमेरिका में कांग्रेस को उससे कहीं कम और सीमित अधिकार प्राप्त हैं। फिर भारत में अवशिष्ट अधिकार संसद को प्राप्त हैं, लेकिन अमेरिका में अवशिष्ट अधिकार राज्यों को प्राप्त हैं। अमेरिका में कांग्रेस के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अधिकारों का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद १ खंड ८ में है। इस खंड में १८ विषयों की सूची दी हुई है। इसके सिवा कांग्रेस के अन्य अधिकारों का उल्लेख संविधान में अन्यत्र भी किया गया है। कर इत्यादि कुछ बातों में कांग्रेस तथा राज्यों के विधान-मंडलों को समवर्ती अर्थात् समान अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन यदि संघ तथा राज्यों के कानूनों में विषमता हो तो संघ के कानूनों को ही मान्यता प्राप्त होगी। अमेरिका में एक बात यह भी हुई है कि समय-समय पर न्यायालयों ने संविधान की धाराओं

का जो अर्थ लगाया है, उसके कारण कांग्रेस को बहुत अधिक अधिकार मिल गये हैं; इतने अधिक कि जितने संविधान निर्माताओं की मंशा उसे देने की नहीं थी।

आस्ट्रेलिया का संविधान भी संघात्मक है। वहां केन्द्रीय विधानमंडल अर्थात् पार्लियामेन्ट को बहुत कम अधिकार हमारी संघ-सूची की तरह दिये गये हैं, जिन पर केवल पार्लियामेंट ही कानून बना सके। इसका कारण यह था कि जिन राज्यों ने मिलकर संघ बनाया था, वे केन्द्र को कम से कम अधिकार देना चाहते थे। आज आस्ट्रेलिया की पार्लियामेंट केवल निम्नलिखित विषय ही ऐसे हैं, जिन पर केवल वह हो कानून बना सकती है। (१) संघ-शासन की राजधानी, (२) देश या कामनवेल्थ की देश सेवाएं (Public Services), (३) आयात-निर्यात कर, आबकारी तथा निर्यात सहायता (Duties of Customs and Excise and Export Bounties), (४) सेना और नौसेना, (५) मुद्रा तथा करेंसी, (६) संविधान संशोधन सम्बन्धी कुछ अधिकार। समवर्ती क्षेत्र में राज्यों के साथ-साथ पार्लियामेंट को इससे कहीं अधिक अधिकार प्राप्त हैं। और साथ में यह भी है, कि यदि राज्यों और संघ के कानून में विरोध होता है, तो संघ के कानून को ही मान्यता प्राप्त होगी। इस प्रकार भारत के विपरीत आस्ट्रेलिया में कमजोर केन्द्र है और अवशिष्ट अधिकार राज्यों को प्राप्त हैं। फिर संघ में रहते हुए आस्ट्रेलिया के विभिन्न राज्य अपने-अपने विधान में संशोधन कर सकते हैं, लेकिन भारत में राज्यों को ऐसे कोई वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। आस्ट्रेलिया में पार्लियामेंट तथा राज्यों के विधानमंडलों को अपने-अपने अधिकार-क्षेत्रों में पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त है।

कनाडा में राज्यों की विधायिनी शक्तियां निर्धारित कर दी गई हैं और शेष सब विधायिनी शक्तियां केन्द्र के हाथ में छोड़ दी गई हैं। इस प्रकार शक्तियों का वितरण कनाडा में अमेरिका और आस्ट्रेलिया से भिन्न है तथा बहुत कुछ भारत के समान है। लेकिन कनाडा में समवर्ती-सूची पर कृषि और आवास (Immigration) केवल दो विषय हैं और भारत में समवर्ती-सूची में ४७ विषय हैं। कनाडा में केन्द्र शक्तिशाली है और अवशिष्ट अधिकार उसी को प्राप्त हैं।

फिर राज्य के विधानमंडलों द्वारा राज्य-सूची के विषयों पर बनाये हुए कानूनों को कौंसिल सहित गवर्नर-जनरल रद्द कर सकता है। अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय क्षेत्रों में इस प्रकार हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। यद्यपि भारत में केन्द्र राज्यों के क्षेत्र में इस प्रकार प्रत्यक्षरूप से दखल नहीं दे सकता, परन्तु विधान में यह उपबन्ध रखे गये हैं, कि राज्यों के बनाये हुए कुछ कानून यदि राष्ट्रपति के विचाराधीन किये जायँ, तो जब तक उन्हें राष्ट्रपति की अनुमति नहीं मिल जायगी, तब तक वे मान्य न होंगे। इसी प्रकार राज्य के विधानमंडल में पेश होने के पहिले कुछ विधेयकों को राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है।

कभी-कभी लोगों में यह गलतफहमी हो जाती है, कि दक्षिण-अफ्रिका संघ का विधान संघात्मक है। पर वास्तव में वह एकात्मक है। दक्षिण अफ्रिका में वास्तव में शक्तियों का विभाजन नहीं है। वास्तव में केन्द्र द्वारा कुछ अधिकार राज्यों को दिये गये हैं। यद्यपि केन्द्र ने राज्यों को कुछ विशिष्ट अधिकार दे दिये हैं, परन्तु केन्द्र के हाथ में सब विषयों पर कानून बनाने के अधिकार हैं। केन्द्रीय संसद राज्यों के जारी किये हुए किसी भी अध्यादेश को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से रद्द कर सकती है। दक्षिण अफ्रिका में केन्द्र और राज्यों के बीच में विधायिनी शक्तियों के सम्बन्ध में संघर्ष नहीं हो सकता। कानून बनाने के सम्बन्ध में संघ-संसद की स्थिति सर्वोच्च है।

कहा जाता है कि "संघ शासन का मूल तत्व यह है कि संघ और राज्यों के बीच में विधायिनी शक्तियों का बंटवारा हो जाता है और केन्द्र इस बंटवारे में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता।" इस दृष्टि से अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा कनाडा के विधान संघात्मक हैं, तथा भारत का संविधान भी संघात्मक है। क्योंकि संकटकाल में संसद राज्य-सूची के विषयों पर कानून तो बना सकती है, और यदि राज्य-परिषद् एक प्रस्ताव द्वारा राज्य-सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे, तो उस पर भी संसद कानून बना सकती है, लेकिन संविधान ने विधायिनी शक्तियों का जो विभाजन किया है तथा प्रथम अनुसूची के भाग 'क' और 'ख' के राज्यों को जो अधिकार दिये हैं, उनमें संसद कोई परिवर्त्तन नहीं

कर सकती। जब तक इन राज्यों के विधानमंडलों में से कम से कम आधे विधानमंडलों की स्वीकृति न मिल जाय, तब तक संसद इन विधायिनी सूचियों में परिवर्त्तन नहीं कर सकती।

लेकिन जहां तक प्रथम अनुसूची के भाग 'ग' के राज्यों का सम्बन्ध है, यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि इन राज्यों के विधानमंडलों तथा संसद के बीच में विधायिनी शक्तियों का कोई बँटवारा नहीं है। कानून बनाने के क्षेत्र में संसद सर्वोपरि है। भाग 'घ' के राज्यों या क्षेत्रों में तो कोई विधानमंडल ही न होंगे। लेकिन हमारे देश में केन्द्र द्वारा शासित इस प्रकार के क्षेत्र बहुत कम हैं।

विधायिनी सूचियां

(The Legislative List)

सूची १—संघ-सूची

(List I—Union List)

(१) भारत की और भारत के हर भाग की सुरक्षा, जिसमें सुरक्षा की तैयारी और सब काम शामिल हैं, जिनसे युद्ध के समय में युद्ध चलाने और उसकी समाप्ति के बाद सफलतापूर्वक सेना घटाने में सहायक हों।

(२) नौ, स्थल और हवाई सेना; तथा संघ की कोई अन्य सशस्त्र सेना।

(३) छावनी क्षेत्रों की हदबन्दी, ऐसे क्षेत्रों में स्थानीय स्वायत्तशासन, उन क्षेत्रों में छावनी अधिकारियों का संगठन और शक्तियां तथा ऐसे क्षेत्रों में निवास-स्थानों की कायदाबन्दी या विनियमन (जिसके अन्तर्गत किराये का नियन्त्रण भी है)।

(४) नौ, स्थल और हवाई-सेना की इमारतें।

(५) हथियार, आग-हथियार, गोला-बारूद और विस्फोटक ।

(६) अणुशक्ति और उसे पैदा करने के लिये आवश्यक खनिज साधन ।

(७) वे उद्योग जिन्हें संसद कानून द्वारा सुरक्षा के लिये अथवा युद्ध के लिये आवश्यक घोषित कर दे ।

(८) केन्द्रीय गुप्त वार्ता और अनुसंधान विभाग ।

(९) भारत की सुरक्षा, विदेशीय कार्य या सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध या नज़रबन्दी तथा इस तरह से नज़रबन्द किये हुए लोग ।

(१०) विदेशीय कार्य ; वे सब विषय जिनके द्वारा संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध होता है ।

(११) राजनैतिक, वाणिज्य दूतिक और व्यापारिक प्रतिनिधित्व ।

(१२) संयुक्तराष्ट्र-संगठन ।

(१३) अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संस्थाओं और अन्य सभाओं में भाग लेना और उनमें जो फैसले या प्रस्ताव स्वीकृत हों, उन्हें पूरा कराना ।

(१४) विदेशों से संधि और करार करना तथा विदेशों के साथ जो संधि-नामे, समझौते और माने हुए रिवाज़ हों, उन पर अमल करना ।

(१५) युद्ध और शान्ति ।

(१६) विदेशीय क्षेत्राधिकार (Jurisdiction)

(१७) नागरिकता, देशीयकरण (Naturalisation) और विदेशी लोग ।

(१८) प्रत्यर्पण (Extradition)

(१९) भारत में प्रवेश, भारत से बाहर जा बसना (Emigration) और भारत से निकाला जाना (Expulsion) ; पासपोर्ट और वीसा ।

(२०) भारत के बाहर की तीर्थ-यात्राएं ।

(२१) समुद्री डकैतियां और जुर्म जो बीच समुद्र या हवा में किये जायँ, स्थल या महासमुद्र या वायु में अन्य देशों के कानूनों के विरुद्ध अपराध ।

(२२) रेल ।

(२३) राज-पथ (Highways) जिन्हें संसद निर्मित कानून द्वारा या उसके अधीन बने हुए कानून द्वारा राष्ट्रीय राज्य-पथ घोषित किया गया है ।

(२४) यंत्र-चालित जलयानों के विषय में अन्तर्देशीय ऐसे जल-पथों में जहाजवानी (Shipping) और जहाज़रानी (Navigation) जो संसद निर्मित कानून द्वारा राष्ट्रीय जल-पथ घोषित किये गये हैं, तथा ऐसे जल-पथों के पथ-नियम।

(२५) समुद्री जहाजवानी और जहाजरानी जिसमें ज्वारजल की जहाजवानी और जहाजरानी भी शामिल है ; व्यापारी वेड़े के लिये शिक्षा और ट्रेनिंग का प्रवन्ध तथा राज्यों और दूसरी एजेंसियों द्वारा ऐसी शिक्षा और ट्रेनिंग का जो प्रवन्ध हो, उसकी कायदावन्दी या विनियमन।

(२६) प्रकाश-स्तम्भ जिसमें दीप-जहाज, मार्ग संकेत और जहाजों तथा हवाईजहाजों की सुरक्षा के लिये दूसरे प्रवन्ध शामिल हैं।

(२७) वह वन्दरगाह जो संसद-निर्मित किसी कानून द्वारा या किसी मौजूदा कानून द्वारा या उसके अधीन 'वड़े वन्दरगाह' ठहरा दिये गये हैं। और जिनमें उनकी हदवन्दी और उन वन्दरगाहों के अधिकारियों का संगठन और उनकी शक्तियां शामिल हैं।

(२८) वन्दरगाह चालीसिया (Port Quarantine) जिसमें उस सम्बन्ध के अस्पताल शामिल हैं। मल्लाही और समुद्रीय अस्पताल।

(२९) वायु-पथ ; वायुयान और वायु जहाजरानी ; हवाई अड्डों का प्रवन्ध ; हवाई यातायात और हवाई अड्डों का विनियमन और संगठन ; वैमानिक शिक्षा और ट्रेनिंग का प्रवन्ध ; तथा इस तरह की शिक्षा और ट्रेनिंग का राज्य और दूसरी एजेंसियां जो प्रवन्ध करें उसका विनयमन।

(३०) सवारियों और माल का रेल मार्ग, समुद्र और हवा के रास्ते, मशीनों से चननेवाले जहाजों में राष्ट्रीय जल-पथों से यात्रियों और वस्तुओं का वहन।

(३१) डाक और तार, टेलीफोन, वेतार, रेडियो ब्रॉडकास्टिंग और आवाजाई के ऐसे दूसरे रूप।

(३२) संघ की सम्पत्ति और उससे प्राप्त राजस्व ; किन्तु प्रथम अनुसूची के भाग (क) और (ख) में उल्लिखित किसी राज्य में स्थित सम्पत्ति के विषय में,

जहां तक संसद कानून अन्यथा उपबन्ध न करे वहां तक, उस राज्य के अधीन रहते हुए।

(३३) संघ के मतलबों के लिये सम्पत्ति प्राप्त करना या अधिग्रहण (Requisition) करना ।

(३४) देशी राज्यों के शासकों की सम्पत्ति के लिये प्रतिपालक अधिकरण (Courts of Wards).

(३५) संघ का लोक-ऋण ।

(३६) सिक्का-चलन, सिक्का-गढ़न और कानूनी-सिक्का ; विदेशी विनिमय।

(३७) विदेशी-ऋण।

(३८) भारत का रिजर्व बैंक।

(३९) डाकघर बचत बैंक।

(४०) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार द्वारा चलाई लाटरी ?

(४१) विदेशों के साथ व्यापार और वाणिज्य ; शुल्क सीमान्तों (Customs Frontier) को पार करनेवाले आयात और निर्यात ; शुल्क सीमान्तों की परिभाषा।

(४२) देश में विभिन्न राज्यों के बीच में व्यापार और वाणिज्य ।

(४३) व्यापारिक कम्पनियों या निगमों का जिनके अन्तर्गत महाजनी (Banking), बीमाई (Insurance) और वित्तीय (Financial) कम्पनियां भी हैं, किन्तु सहकारी संस्थाएं नहीं हैं, निगमन, विनियमन तथा समापन (Incorporation, Regulation and Winding up)।

(४४) विश्वविद्यालयों को छोड़ कर ऐसे नियमों का, चाहे वे व्यापारिक हों या नहीं, जिनके उद्देश्य एक राज्य तक सीमित नहीं हैं, निगमन, विनियमन और समापन।

(४५) बैंकदारी या महाजनी (Banking)।

(४६) विनिमय-हुंडिया, चेक, प्रामिसरी-नोट या वचन-पत्र तथा इसी तरह के दूसरे पट्टे ।

(४७) बीमा।

(४८) शेयर-बाजार और वादा-बाजार।

(४९) पेटेंट, आविष्कार और डिज़ाइन, कापीराइट, व्यापार-चिह्न (Trade-marks) और सौदागरी माल-चिह्न।

(५०) बाटों और मापों का माप-स्थापन।

(५१) भारत के बाहर निर्यात की जानेवाली अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजी जानेवाली वस्तुओं के गुणों का मान-स्थापन (Standardisation)।

(५२) वे उद्योग जिनके लिये संसद ने कानून द्वारा घोषणा की है कि लोक-हित के लिये उन पर संघ का नियन्त्रण आवश्यक है।

(५३) तेल-क्षेत्रों और खनिज तेल साधनों का विनियमन और विकास पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पादन; संसद से कानून द्वारा भयानक रूप से ज्वालाग्रही घोषित अन्य तरल और द्रव्य।

(५४) उस हदतक खानों का विनियमन और खनिजों का विकास जिस तक संघ के नियंत्रण में वैसे विनियमन और विकास को संसद कानून द्वारा लोक-हित के लिये आवश्यक घोषित करे।

(५५) श्रम का विनियमन तथा खानों और तेल-क्षेत्रों में सुरक्षितता।

(५६) उस हदतक अन्तर्राज्यिक नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास जिस तक संघ के नियंत्रण में ऐसे विनियमन और विकास को संसद के कानून द्वारा लोक-हित के लिये समयोचित घोषित करे।

(५७) भूसागी समुद्र से परे मछली पकड़ना और मछली-क्षेत्र।

(५८) संघ की एजेंसियों द्वारा नमक का निर्माण, सम्भरण और वितरण, अन्य एजेंसियों द्वारा नमक के निर्माण, सम्भरण (Supply) और वितरण का विनियमन और नियंत्रण।

(५९) अफीम की खेती, निर्माण तथा निर्यात के लिये विक्रय।

(६०) सिनेमा फिल्मों को दिखाने की मंजूरी।

(६१) संघ के कर्मचारियों सम्बन्धी औद्योगिक विवाद।

(६२) इस संविधान के प्रारम्भ पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय साम्राज्यिक युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया स्मारक, भारतीय युद्ध स्मारक नामों से

ज्ञात संस्थाएं तथा भारत सरकार द्वारा पूर्णतः या अंशतः वित्त पोषित तथा संसद से कानून द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित ऐसी कोई अन्य संस्था।

(६३) इस संविधान के प्रारम्भ पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा संसद से कानून द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व की घोषित कोई अन्य संस्था।

(६४) भारत सरकार से पूर्णतः या अंशतः वित्त पोषित तथा संसद से कानून द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था घोषित वैज्ञानिक या शिल्पिक शिक्षा संस्थाएं।

(६५) संघ एजेंसिया और संस्थाएं जो—

(क) पेशाई, रोजगारी या टेकनिकल ट्रेनिंग जिनके अन्तर्गत पुलिस अफसरों की ट्रेनिंग शामिल है ; अथवा

(ख) विशेष अध्ययनों या गवेषणा के लिये हैं ; अथवा

(ग) अपराध के अनुसन्धान या पता लगाने में वैज्ञानिक शिल्पिक सहायता के लिये हैं।

(६६) उच्चतर शिक्षा या गवेषणा की संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और शिल्पिक संस्थाओं में एकसूत्रता (Co-ordination) लाना और मान (Standard) का निर्धारण।

(६७) संसद से कानून द्वारा राष्ट्रीय महत्व के घोषित प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक लेख और पूरातत्त्वी स्थान और खंडहर।

(६८) भारत की सरवे (Survey), भारत की भूविद्या, वनस्पति-विद्या, जन्तु-विद्या और नर-विद्या (Anthropology) सम्बन्धी अलग-अलग सरवे, खगोल-विद्या (Meteorological) सम्बन्धी संस्थाएं।

(६९) जन-गणना।

(७०) संघ-लोक सेवाएं ; अखिल भारतीय सेवाएं या नौकरियां ; संघ-लोक सेवा-आयोग।

(७१) संघ निवृत्ति वेतन (Union pensions) अर्थात् भारत-सरकार द्वारा या भारत की संचित निधि में से दिये जानेवाले निवृत्ति वेतन।

(७२) संसद और राज्यों के विधान-मंडलों के लिये तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के लिये निर्वाचन ; निर्वाचन आयोग।

(७३) संसद के सदस्यों, राज्य-परिषद् के सभापति और उपसभापति तथा लोक-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते।

(७४) संसद के प्रत्येक सदन की, तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ; संसद की समितियों अथवा संसद द्वारा नियुक्त आयोगों के सामने गवाही देने या दस्तावेज पेश करने के लिये व्यक्तियों की उपस्थिति बाध्य करना।

(७५) राष्ट्रपति और राज्यपालों की उपलब्धियां, भत्ते, विशेषाधिकार तथा छुट्टी के बारे में अधिकार ; संघ के मंत्रियों के वेतन और भत्ते ; नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के वेतन, भत्ते और छुट्टी के बारे में अधिकार तथा अन्य सेवा-शर्तें।

(७६) संघ के और राज्यों के लेखाओं की लेखा-परीक्षा (Audit of Accounts).

(७७) उच्चतम न्यायालय का गठन, संगठन, क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां (जिसके अन्तर्गत इस न्यायालय का अवमान भी है) तथा उसमें ली जानेवाली फीसें ; उच्चतम न्यायालय के सामने वकालत करने का हक रखनेवाले व्यक्ति।

(७८) उच्च न्यायालयों के पदाधिकारी और नौकरों सम्बन्धी उपबन्धों को छोड़कर उच्च न्यायालयों का गठन और संगठन ; उच्च न्यायालयों के सामने वकालत करनेवाले व्यक्ति।

(७९) किसी राज्य में मुख्यस्थान रखनेवाले किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का उस राज्य से बाहर किसी क्षेत्र में विस्तार तथा ऐसे किसी उच्च-न्यायालय के क्षेत्राधिकार का ऐसे किसी क्षेत्र से अलग कर देना।

(८०) किसी राज्य के पुलिस बल की शक्तियां और क्षेत्राधिकार का उस राज्य में न होनेवाले किसी क्षेत्र पर विस्तार, पर इस तरह नहीं कि एक राज्य की पुलिस उस राज्य के बाहर के किसी क्षेत्र में, उस राज्य की सरकार की अनुमति बिना जिसके अन्दर वह क्षेत्र है, अपनी शक्तियों और अमलदारी से काम ले सके।

किसी राज्य के पुलिस वल के मेम्वरों की शक्तियों और क्षेत्राधिकार अर्थात् अमलदारी को उस राज्य से वाहर के रेल-मार्ग क्षेत्रों तक वढ़ा देना।

(८१) एक राज्य से दूसरे राज्य में जा वसना, अन्तर्राज्य निरोध या चालीसिया (Quarantine).

(८२) कृषि आय को छोड़ कर अन्य आय पर कर।

(८३) सीमा शुल्क जिसके अन्तर्गत निर्यात शुल्क भी है।

(८४) तम्वाखू पर और भारत में वने या पैदा हुए नीचे लिखे मालों के सिवा, दूसरे माल पर उत्पादन-शुल्क (Duties of Excise)—

(क) मानव उपभोग के मद्य सारिक पानों,

(ख) अफीम, गांजा और दूसरी पीनकवाली जड़ी वूंटियां और पीनक-वाली चीजें,

पर दवा और सिंगार की वह तयार की हुई वस्तुएं इसमें शामिल हैं, जिनमें अलकोहल अथवा इस नम्वर की उपखंडिका (ख) में आई हुई कोई चीज़ है।

(८५) निगम-कर (Corporation Tax).

(८६) कृषि की जमीन को छोड़कर अलग-अलग व्यक्तियों और कम्पनियों के मूलधन-मूल्य पर कर, कम्पनियों की पूंजी पर कर।

(८७) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के वारे में सम्पत्ति-शुल्क (Estate Duty).

(८८) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार के वारे में शुल्क।

(८९) रेल या समुद्र या वायु से ले जाये जानेवाली वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा कर, रेल के जन-भाड़े और वस्तु-भाड़े पर कर।

(९०) शेयर वाज़ारों और पेश वाज़ारों के सौदों पर स्टाम्प महसूल को छोड़कर दूसरे टैक्स।

(९१) विनिमय हुंडियों, चेकों, प्रामिसरी नोटों, वहन-पत्रों (Bills of Lading) साख-पत्रों, वीमा पालिसियों, शेयरों के तवादलों, ऋण-पत्रों (Debentures), एवजियों (Proxies) और रसीदों के वारे में स्टाम्प महसूल की दरें।

(९२) समाचार-पत्रों के क्रय या विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनों पर कर।

(९३) इस सूची के विषयों में से किसी के बारे में बने हुए कानूनों के विरुद्ध जुर्म।

(९४) इस सूची के विषयों में से किसी के मतलब के लिये पूछ-ताछ, सरवे और आंकड़े।

(९५) उच्चतम न्यायालय को छोड़कर अन्य न्यायालयों के इस सूची में के विषयों में से किसी के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार और शक्तियां, समुद्री (Admiralty) या नावाधिकरण क्षेत्राधिकार।

(९६) किसी न्यायालय में ली जानेवाली फीसों को छोड़कर इस सूची में के विषयों से किसी के बारे में फीस।

(९७) कोई दूसरा विषय जो सूची २ या ३ में नहीं गिनाया गया, जिसमें ऐसा कर शामिल है, जिसका वर्णन उन सूचियों में से किसी में नहीं आया।

सूची २—राज्य-सूची

(List II—State List)

(१) सार्वजनिक व्यवस्था (किन्तु असैनिक शक्ति की सहायता के लिये संघ के नौ, स्थल या विमान बलों या किन्हीं अन्य बलों के प्रयोग को अन्तर्गत न करते हुए)।

(२) पुलिस जिसके अन्तर्गत रेलवे और ग्राम पुलिस भी है।

(३) न्याय-प्रशासन ; उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों का गठन और संगठन, उच्च न्यायालय के पदाधिकारी और सेवक, लगान और मालगुजारी की अदालतों की प्रक्रिया, उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों में ली जानेवाली फीसें।

(४) जेलखाने, सुधार-घर, वोरस्टल संस्थाएं और इसी प्रकार की दूसरी संस्थाएं, और वह लोग जो उनमें रोक कर रखे जायँ ; जेलखानों और दूसरी संस्थाओं के उपयोग के लिये अन्य राज्यों से प्रवन्ध ।

(५) स्थानीय शासन अर्थात् नगर-निगम, नगर-सुधार-ट्रस्ट, जिला मंडलों, खदान-आवादी के अधिकारियों तथा स्थानीय स्वशासन या ग्राम-शासन के मतलव के लिये अन्य स्थानीय अधिकारियों का गठन और उनकी शक्तियां ।

(६) सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता ; चिकित्सालय और औषधालय ।

(७) भारत के वाहर के स्थानों की तीर्थ-यात्राओं को छोड़ कर अन्य तीर्थ यात्राएं ।

(८) नशीले तरल, यानी नशीले तरलों का पैदा करना, वनाना, रखना, लाना, ले जाना, खरीदना और वेचना ।

(९) अंगहीनों और नौकरी के लिये अयोग्य व्यक्तिओं की सहायता ।

(१०) शव गाड़ना और कव्रस्थान ; शव-दाह और श्मशान ।

(११) सूचो १ के नं० ६३, ६४, ६५ और ६६ तथा सूची ३ के नं० २५ के उपवन्धों के अधीन रहते हुए शिक्षा जिसके अन्तर्गत विश्वविद्यालय भी हैं ।

(१२) राज्य से नियंत्रित या वित्त पोषित पुस्तकालय, संग्रहालय या अन्य ऐसी संस्थाएं ; संसद से कानून द्वारा राष्ट्रीय महत्व के घोषित से भिन्न प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और लेख ।

(१३) आवागमन के साधन अर्थात् सड़कें, पुल, नौका घाट तथा आवागमन के दूसरे साधन जो सूची में दर्ज नहीं हैं ; नगर, ट्राम-मार्ग ; रस्सा मार्ग ; देश की अन्दर के जल-मार्ग और उन पर यातायात, वैसे जल-मार्गों के विषय में सूची १ और सूची ३ में के उपवन्धों के अधीन रहते हुए ; मशीनों से चलनेवाली गाड़ियों को छोड़ कर अन्य गाड़ियां ।

(१४) कृषि, जिसमें कृषि की शिक्षा और गवेषणा, महामारी से रक्षा और पौदों की वीमारियों से रोक-थाम शामिल है ।

(१५) पशुओं की रक्षा और उसकी नस्ल में सुधार ; जानवरों की वीमारियों की रोक-थाम ; पशु इलाज की शिक्षा और उनका पेशा ।

(१६) कांजीहौस और मवेशियों के हद लांघने की रोक-थाम।

(१७) सूची १ के नं० ५६ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए जल अर्थात् पानी पहुंचाना, सिंचाई और नहरें, पानी का निकास और बांध, पानी इकट्ठा करना और जल-शक्ति।

(१८) भूमि अर्थात् भूमि में या भूमि पर अधिकार, भूमिदारी, जिसमें भूस्वामी और किसानों का सम्बन्ध भी है, और लगान वसूल करना, कृषि-भूमि का दाखिल-खारिज और दूसरों को दे डालना ; जमीन को सुधारना और खेती-बारी के लिये उधारियां ; बस्तियां बसाना (Colonisation).

(१९) जंगलात।

(२०) जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा।

(२१) मछली-क्षेत्र।

(२२) सूची १ के नं० ३४ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए कोरट कचहरियां (Courts of wards) कर्ज़ से दबी और कुर्क सम्पत्तियां।

(२३) संघ के नियंत्रण में विनियमन और विकास के सम्बन्ध में सूची १ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए खानों का विनियमन और खनिजों का विकास।

(२४) सूची १ के नं० ६४ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उद्योग (Industries)।

(२५) गैस और गैस के कारखाने।

(२६) सूची ३ के नं० ३३ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य के अन्दर व्यवसाय और वाणिज्य।

(२७) सूची नं० ३३ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए वस्तुओं का उत्पादन सम्भरण (Supply) और वितरण।

(२८) बाजार और मेले।

(२९) मान स्थापन को छोड़ कर, बाट और माप।

(३०) साहूकारी और साहूकार ; किसानों की कर्ज़दारी को हल्का करना।

(३१) सराय और सराय रखनेवाले।

(३२) सूची १ में उल्लिखित निगमों से भिन्न निगमों का और विश्व-

विद्यालयों का निगमन, विनियमन और समापन, व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक और अन्य अनिगमित समाजें और संस्थाएं और सहकारी समाजें।

(३३) नाट्यशाला, नाटक अभिनय, प्रथम अनुसूची १ नं० ६० के उपबन्धों के अधीन रहते हुए सिनेमा, खेल, मनोरंजन और तमाशे।

(३४) शर्त बदना और जुआ।

(३५) कारखानें, जमीनें और इमारतें जो राज्य को प्राप्त हैं, या जो राज्य के कब्जे में हैं।

(३६) सूची ३ के नं० ४२ के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संघ प्रयोजनों के अतिरिक्त सम्पत्ति प्राप्त कर लेना या अधिग्रहण (Requisition)।

(३७) संसद के बनाये हुए किसी कानून के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य के विधानमंडल के लिये निर्वाचन।

(३८) राज्य के विधानमंडल के सदस्यों के विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के तथा, यदि विधान-परिषद् है, तो उसके सभापति और उपसभापति के वेतन और भत्ते।

(३९) विधान-सभा और उसके सदस्यों और समितियों की तथा यदि विधान-परिषद् हो तो, उस परिषद् और उसके सदस्यों और समितियों की शक्तियां विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां, राज्य के विधानमंडल की समितियों के सामने गवाही देने या दस्तावेज़ (Documents) पेश करने के लिये व्यक्तियों की उपस्थिति बाध्य करना।

(४०) राज्यों के मंत्रियों के वेतन और भत्ते।

(४१) राज्य-लोक सेवाएं, राज्य-लोक-सेवा-आयोग।

(४२) राज्य की पेंशनें अर्थात् राज्य द्वारा अथवा राज्य की संचित निधि में से दी जानेवाली पेंशनें।

(४३) राज्य का लोक-ऋण अर्थात् सरकारी कर्ज़।

(४४) गड़े हुए और लावारिसी खजाने।

(४५) भू-राजस्व अर्थात् जमीन की मालगुजारी, जिसमें मालगुजारी का तय करना और जमा करना, जमीन के लेखे रखना, मालगुजारी के मतलबों के लिये

सरवे और अधिकारों के लेखे और मालगुजारी दूसरों के नाम करना, सब शामिल है।

(४६) कृषि-आय पर कर।

(४७) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क।

(४८) कृषि भूमि के विषय में सम्पत्ति-शुल्क।

(४९) भूमि और भवनों पर कर।

(५०) संसद से विधि द्वारा खनिज-विकास के सम्बन्ध में लगाई गई सीमाओं के अधीन रहते हुए खनिज-अधिकार पर कर।

(५१) राज्य में निर्मित या उत्पादित निम्नलिखित वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क तथा भारत में अन्यत्र निर्मित या उत्पादित उसी तरह की वस्तुओं पर उसी या कम दर से प्रति शुल्क (Countervailing Duties)।

(क) मानव उपभोग के लिये मद्यसारिक:पान या अलकोहली तरल ;

(ख) अफीम, भांग और अन्य पिनक लानेवाली औषधियां और पिनक-वाली चीजें।

(५२) किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग या विक्रय के लिये वस्तुओं के प्रयोग पर कर।

(५३) विद्युत के उपयोग या विक्रय पर कर।

(५४) समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर।

(५५) समाचार-पत्रों में प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनोंको छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर।

(५६) सड़कों या अन्तर्देशीय जल-पथों पर ले जाये जानेवाले वस्तुओं और यात्रियों पर कर।

(५७) सड़कों पर उपयोग के योग्य गाड़ियों पर, चाहे वे मशीन से चलती हों या अन्यथा, तथा जिनमें सूची ३ के नं० ३५ के उपबन्धों के अधीन ट्रामगाड़ियां भी शामिल हैं, कर।

(५८) पशुओं और नौकाओं पर कर।

(५९) पथ-कर (Tolls)

(६०) पेशों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर।

(६१) प्रति व्यक्ति या आदमीवार कर (Capitation Taxes).

(६२) विलास-वस्तुओं पर कर, जिनमें मनोरंजनों, तमाशों, शर्त बदने और जूए पर टैक्स शामिल है।

(६३) स्टाम्प-महसूल की दरों के सम्बन्ध में सूची (१) के उपबन्धों में उल्लिखित दस्तावेज़ों को छोड़कर अन्य दस्तावेज़ों के बारे में महसूल की दरें।

(६४) इस सूची में के विषयों में से किसी से सम्बद्ध कानूनों के विरुद्ध अपराध।

(६५) इस सूची के विषयों में से किसी के बारे में उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों का क्षेत्राधिकार और शक्तियां।

(६६) किसी न्यायालय में ली जानेवाली फीस या शुल्कों को छोड़कर इस सूची में के विषयों में से किसी के बारे में शुल्क।

सूची ३—समवर्ती सूची

(List III—Concurrent List)

(१) दंड विधि अर्थात् फौजदारी कानून जिसमें वह मामले शामिल हैं, जो इस विधान के आरंभ के समय दंड-संहिता (ताजीरात हिंद) में शामिल हों, सूची १ और सूची २ में उल्लिखित विषयों में से किसी के बारे में कानूनों के खिलाफ जुर्म इसमें शामिल नहीं हैं और न असैनिक शक्ति की सहायता के लिये नौ, स्थल और हवाई सेनाओं का प्रयोग इसमें शामिल हैं।

(२) दंड-प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत वे सब विषय हैं, जो इस संविधान के प्रारम्भ पर दंड-प्रक्रिया-संहिता (जाब्ता फौजदारी) के अन्तर्गत हैं।

(३) राज्य की सुरक्षा से, सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने से अथवा समाज

के लिये जरूरी रसद और नौकरियों को बनाये रखने से संबन्ध रखनेवाले कारणों के लिये निवारक निरोध, वह लोग जो इस तरह नजरबंद रखे जायँ।

(४) कैदियों, अभियुक्त व्यक्तियों तथा इस सूची के नं० ३ में उल्लिखित कारणों से निवारक निरोध में किये गये व्यक्तियों का एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाया जाना।

(५) विवाह और विवाह-विच्छेद, शिशु और अवयस्क, दत्तक ग्रहण, इच्छा-पत्र, इच्छापत्रहीनत्व और उत्तराधिकार, अविभक्त कुटुम्ब और विभाजन, वे सब विषय जिनके सम्बन्ध में न्यायिक कार्यवाहियों में पक्ष इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले अपने निजी कानून (Personal Law) के अधीन थे।

(६) कृषि की जमीन छोड़कर अन्य जायदाद का इस्तान्तरण या तबादला, विलेखों (Deeds) और दस्तावेजों की रजिस्ट्री।

(७) ठेके, जिनमें साझेदारी एजेंसी, माल ढोने के ठेके और ठेकों के दूसरे खास रूप शामिल हैं, पर जिनमें खती-वारी की जमीन के वारे में ठेके शामिल नहीं हैं।

(८) कानूनी कार्रवाई के काविल गलत काम।

(९) दिवाला और नादार हो जाना।

(१०) ट्रस्ट और ट्रस्टी।

(११) महाप्रशासक या सरप्रबन्धक (Administrators General) और सरकारी ट्रस्टी।

(१२) गवाही और हलफ़ें या शपथें, कानूनों, सरकारी कामों और सरकारी लेखों, और अदालती कार्रवाइयों का माना जाना।

(१३) दीवानी या व्यवहार प्रक्रिया, जिसमें वह सब मामले शामिल हैं, जो इस विधान के आरंभ के समय जाब्ता दिवानी या व्यवहार-प्रक्रिया संहिता में शामिल हों, मियादबंदी और पंचनामा।

(१४) न्यायालय-अवमान, किन्तु जिसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय का अवमान शामिल नहीं है।

(१५) आवारागर्दी (Vagrancy), खानाबदोश और मौसिमी कबीले अर्थात् आदिमजातियां।

(१६) पागलपन और दिमागी कमी, जिसमें वह जगहें शामिल हैं, जहां पागलों और दिमागी कमीवालों को लिया जाय या उनका इलाज किया जाय।

(१७) पशुओं के प्रति निर्दयता का निवारण।

(१८) खाद्य-पदार्थों और अन्य वस्तुओं में अपमिश्रण।

(१९) अफीम के सम्बन्ध में सूची १ नं० ५९ में के उपबन्धों के अधीन रहते हुए औषधि और विष।

(२०) आर्थिक और सामाजिक योजना।

(२१) वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिपत्य, गुट्ट (Combines) और न्यास (Ttrusts).

(२२) ट्रेड-यूनियन, उद्योगी और मजदूरी झगड़े।

(२३) सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, नौकरी और बेकारी।

(२४) मजदूरों की भलाई, जिसमें काम की शर्तें, प्रविडेन्ट फंड, मालिकों की देनदारी (Employers' Liability), मजदूरों की नुकसान भरपाई, निबल और बुढ़ापा सम्बन्धी पेंशनें और प्रसूति-सुविधाएं शामिल हैं।

(२५) मजदूरों को व्यवसायी और शिल्पी-शिक्षा।

(२६) कानूनी, डाक्टरी और दूसरे पेशे।

(२७) भारत और पाकिस्तान के डोमीनियनों के स्थापित होने के कारण अपने मूल निवास-स्थान से स्थानान्तरित हुए व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास।

(२८) खैरात और खैराती संस्थाएं, खैराती और धार्मिक देन और धार्मिक संस्थाएं।

(२९) उड़नी बीमारियों या छूत की बीमारियों या आदमियों, जानवरों या पौदों पर असर करनेवाली महामारियों के एक राज्य से दूसरे राज्य में फैलने की रोक-थाम।

(३०) जीवन-आंकड़े, जिसमें जन्म और मृत्यु की रजिस्ट्री शामिल है।

(३१) बन्दरगाह, उन बन्दरगाहों को छोड़कर जिनको संसद निर्मित कानून द्वारा या मौजूदा कानून में या उसके अधीन बड़े बन्दरगाह ठहरा दिया गया हो।

(३२) देश के अन्दर के जल-मार्गों पर, जहां तक मशीन से चलनेवाले जहाजों का सम्बन्ध है, जहाज़बानी और जहाज़रानी और उन पर तथा जल-मार्गों पर कानून और राष्ट्रीय जल-मार्गों के बारे में सूची १ के उपबन्धों का ध्यान रखते हुए देश के अन्दर के जल-मार्गों पर सवारियों और माल का लाना और ले जाना।

(३३) जहां संसद से कानून द्वारा किन्हीं उद्योगों का संघ द्वारा नियंत्रण लोक-हित में आवश्यक घोषित किया गया है, उन उद्योगों में व्यापार और वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, पूर्ति और वितरण।

(३४) मूल्य-नियंत्रण।

(३५) मशीनों से चलनेवाली गाड़ियां, जिसमें वह सिद्धान्त शामिल हैं, जिनके अनुसार ऐसी गाड़ियों पर टैक्स लगाये जायँगे।

(३६) कारखाने।

(३७) वाष्पयन्त्र का बॉयलर।

(३८) बिजली।

(३९) समाचार-पत्र, पुस्तकें और छापाखाने।

(४०) संसद से कानून द्वारा राष्ट्रीय महत्त्व के घोषित भिन्न पुरातत्त्व सम्बन्धी स्थान और अवशेष।

(४१) उस जायदाद की रखवाली, प्रबन्ध और निवटारा (जिसमें कृषि की जमीनें शामिल हैं) जिसे कानून द्वारा निष्क्राम्य (Evacuee) सम्पत्ति घोषित किया गया है।

(४२) वह सिद्धान्त जिन पर संघ के या किसी राज्य के मतलबों के लिये या किसी दूसरे मतलब के लिये जो सम्पत्ति प्राप्त की जाय या मंगनी ले ली जाय उसकी नुकसान भरपाई तय की जानी है, और जिस रूप में तथा जिस ढंग से वह भरपाई दी जानी है।

(४३) किसी राज्य में टैक्सों और दूसरी सरकारी मांगों के बारे में, जिनमें जमीन की मालगुजारी की बकाया और ऐसी बकाया के रूप में जो रकमें वसूल करनी हैं, वह शामिल हैं, उन दावों (Claims) की वसूली, जो उस राज्य के बाहर पैदा हुए हों।

(४४) अदालती स्टाम्पों से जो महसूल या फीस जमा की जाय, उनको छोड़कर दूसरे स्टाम्प महसूल, पर इसमें स्टाम्प महसूल की दरें शामिल नहीं हैं।

(४५) सूची २ या सूची ३ में उल्लिखित विषयों में से किसी के प्रयोजनों के लिये जांच और आंकड़े।

(४६) उच्चतम न्यायालय को छोड़कर अन्य न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी के बारे में क्षेत्राधिकार और शक्तियां।

(४७) इस सूची में के विषयों में से किसी के बारे में फीसें, किन्तु इनके अन्तर्गत किसी न्यायालय में ली जानेवाली फीसें नहीं हैं।

उन्नीसवां अध्याय

संघ और राज्यों के बीच में शासन-प्रबन्ध

(Administrative Relations Between the Union and the States)

संविधान में यह कहा गया है कि राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करेंगे, जिससे कि संसद के बनाये हुए कानूनों का पालन हो सके और संघ की कार्यपालिका शक्ति से विरोध या संघर्ष न हो। इस सम्बन्ध में संघ राज्यों को उपयुक्त आदेश दे सकता है। राष्ट्रीय महत्त्व के आवागमन के जो साधन हों, उनके बनाने और उनकी रक्षा करने का आदेश भी संघ राज्यों को दे सकता है। इसी तरह राज्यों की सीमा के भीतर जो रेलवे लाइनें हों, उनकी रक्षा करने का आदेश भी संघ राज्यों को दे सकता है। इन आदेशों का पालन करने में राज्यों को जो अतिरिक्त खर्च करना होगा, वह संघ राज्यों को देगा।

जो विषय संघ की कार्यपालिका शक्ति के अन्तर्गत आते हैं, उनमें से किसी का भी प्रबन्ध राष्ट्रपति किसी राज्य सरकार की अनुमति से उस राज्य के

अधिकारियों को सौंप सकती है। संसद द्वारा बनाया हुआ कोई कानून किसी राज्य के अधिकारियों को शक्तियां और कर्त्तव्य दे सकता है, चाहे वह कानून राज्य के विधानमंडल के क्षेत्राधिकार के बाहर भले ही हो। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये, कि इस प्रकार के कानूनों के कारण राज्य को जो अतिरिक्त खर्च सहना पड़ेगा, उसे संघ सरकार ही देगी।

अनुच्छेद २५९ में कहा गया है, कि प्रथम अनुसूची के भाग (ख) के राज्यों में जो सैनिक बल संविधान प्रारम्भ होने के समय थे, उन्हें राज्य तब तक बनाये रखेंगे, जब तक संसद इस सम्बन्ध में अन्य कोई निर्णय न करे और ये सैनिक बल संघ के सैनिक बल के अंग होंगे।

अनुच्छेद २६० के अनुसार संघ का क्षेत्राधिकार भारत की सीमा के बाहर के क्षेत्रों पर उनकी सरकारों के साथ समझौता के द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

अनुच्छेद २६१ में कहा गया है, कि भारत के क्षेत्र में संघ तथा राज्यों के बनाये हुए कानूनों, लेखों तथा न्यायिक प्रक्रियाओं को पूर्ण मान्यता मिलनी चाहिये।

जो नदियां या नदियों की घाटियां दो या दो से अधिक राज्यों की सीमाओं में हैं, यदि उनके सम्बन्ध में कभी उन राज्यों के बीच झगड़े हों, तो उन्हें तय करने के लिये संसद अनुच्छेद २६२ के अन्तर्गत कानून बना सकती है। इस प्रकार के झगड़ों को संसद कानून द्वारा उच्चतम न्यायालय तथा अन्य न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के बाहर कर सकती है।

अनुच्छेद २६३ के अनुसार राष्ट्रपति अन्तर्राज्य समिति (Inter-State Council) स्थापित कर सकता है, जो ऐसे झगड़ों या विवादों में जांच करेगी और सिफारिशें करेगी, जिसमें कुछ अथवा सब राज्यों के अथवा संघ और एक अथवा एक से अधिक राज्यों के स्वार्थ निहित हों।

अनुच्छेद ३६५ में यह कहा गया है, कि यदि कोई राज्य कानून के अन्तर्गत दिये गये संघ के कार्यपालिका सम्बन्धी आदेशों का पालन नहीं करता, तो राष्ट्रपति इसे उस राज्य में संविधान द्वारा निर्धारित शासन-प्रणाली की असफलता मान सकता है और वह राज्य के अधिकारियों की शासन-शक्तियां इस आधार पर छीन सकता है।

बीसवां अध्याय

आर्थिक उपबन्ध

(Financial Provisions)

इस अध्याय में प्रथम अनुसूची के भाग (क) और (ख) के राज्य स्वायत्त्वपूर्ण राज्य कहे जायँगे और अन्य राज्य केन्द्रीय-शासित राज्य कहे जायँगे।

संविधान द्वारा 'भारत की संचित निधि' तथा 'राज्य की संचित निधि' स्थापित की गई हैं। अनुच्छेद २६६ में कहा गया है, कि भारत-सरकार की जो आय होगी, वह जो ऋण लेगी और ऋण चुकाने के सम्बन्ध में उसे जो आय होगी, उन सबसे मिलकर 'भारत की संचित निधि' बनेगी। इसी प्रकार स्वायत्त्वपूर्ण राज्यों में भी आय, ऋणों तथा ऋणों की चुकौती द्वारा आय होगी, उससे 'राज्य की संचित निधि' बनेगी।

इनके सिवा संघ सरकार को जो आय होगी, वह सार्वजनिक या सरकारी खाते में रखी जायगी। इसी प्रकार स्वायत्त्वपूर्ण राज्यों में ऊपर कहे हुए मदों को छोड़कर अन्य मदों से जो धन प्राप्त होगा, वह राज्य के सरकारी खाते में जमा होगा।

इन निधियों में से केवल कानून के अनुसार नियमित रूप से धन लिया जा सकता है।

संसद अथवा किसी राज्य का विधानमंडल कानून द्वारा 'आकस्मिकता निधि' (Contingency Fund) स्थापित कर सकते हैं। उसे क्रमशः भारत की आकस्मिकता निधि और राज्य की आकस्मिकता निधि कहा जायगा। इन निधियों पर राष्ट्रपति और राज्यपाल अथवा राज-प्रमुख के अधिकार रहेंगे। यदि एकाएक किसी खर्च की आवश्यकता पड़ जाय, तो वे इस आशा पर इन निधियों में से धन दे सकते हैं, कि बाद में विधानमंडल इसे अपनी मंजूरी दे देंगे।

संघ और राज्यों के बीच आय का वितरण
(Distribution of Revenues Between the Union and the States)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (The Historical Background)—यदि हमें इस बात का थोड़ा-सा ज्ञान हो जाय, कि भारत-सरकार और प्रान्तों के बीच वित्त के बारे में क्या सम्बन्ध रहे हैं, तो संविधान में आय के वितरण के सम्बन्ध में जो उपबन्ध दिये गये हैं, वे आसानी से समझ में आ जायँगे।

भारत में ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत आर्थिक विकास की धारा एकात्मक प्रणाली से संघात्मक प्रणाली की ओर रही है। आरम्भ में पूरे आर्थिक ढांचे पर भारत-सरकार का नियंत्रण था। प्रान्तीय सरकारों की आय का एकमात्र साधन केन्द्रीय-सरकार से प्राप्त होनेवाले अनुदान थे। बाद में प्रान्तीय सरकारों को आय के कुछ साधन पूर्ण अथवा अंशरूप में दिये गये थे, इनमें से निम्नलिखित साधन प्रधान थे—जंगल, आबकारी, लाइसेंस, फीस, स्टाम्प, रजिस्ट्री, कानून और न्याय, सार्वजनिक निर्माण, शिक्षा इत्यादि। लेकिन इन साधनों से प्राप्त होनेवाली आय बहुत कम थी और उससे प्रान्तीय सरकारों की आवश्यकताएं पूरी नहीं होती थीं। इसलिये केन्द्रीय-सरकार अपनी प्रधान आय अर्थात् भूमि-कर में से कुछ अंश प्रान्तों को देती थी और इसके सिवा कुछ नकद रकमें भी देती थी।

सन् १९०४ में केन्द्रों और प्रान्तों के बीच इस प्रकार के आर्थिक प्रबन्ध स्थायी कर दिये गये और तय हो गया, कि जब तक अत्यन्त आवश्यक न हो जाय, तब तक उनमें कोई परिवर्त्तन न होगा।

सन् १९१९ के शासन कानून में वित्त के सम्बन्ध में केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के क्षेत्र अलग-अलग निर्धारित कर दिये गये। आय के कुछ साधन पूर्णरूप से केन्द्र को दे दिये गये और कुछ पूर्णरूप से प्रान्तों को। आय का कोई साधन ऐसा नहीं रखा गया, जिसमें केन्द्र और प्रान्त दोनों का भाग हो। यह प्रबन्ध इसलिये किया गया था, कि सन् १९१९ के शासन कानून में प्रान्तों को एक हद तक स्वायत्त-शासन दिया था और ऐसा सोचा जाता था, कि अर्थ के लिये प्रान्तों को केन्द्र पर निर्भर नहीं रहना चाहिये। केन्द्र को आय के निम्नलिखित

साधन दिये गये थे—आयात-निर्यात कर, आयकर, अफीम, नमक, रेलें, डाक और तार, तथा सेना के सम्बन्ध में प्राप्त द्रव्य। प्रान्तों को आय के निम्नलिखित साधन प्राप्त थे—भूमि-कर या लगान, स्टाम्प, रजिस्ट्रेशन, आवकारी और जंगल। आय के इस वितरण से केन्द्रीय सरकार की आय में काफी कमी हो गई। इसलिये इस कमी को पूरा करने के लिये प्रान्तों की सरकार कई वर्षों तक अपनी आय में से कुछ अंश केन्द्रीय सरकार को देती रही। प्रान्तों द्वारा केन्द्रीय-सरकार को दी जानेवाली रकमों का निर्धारण 'मेस्टन योजना' के आधार पर हुआ था ; लेकिन इस प्रबन्ध या समझौते से प्रान्त बहुत असन्तुष्ट थे। वे समझते थे, कि उनके ऊपर वह एक भारी बोझ था। सन् १९२५ से प्रान्तों की रकमों में कुछ कमी की जाने लगी और सन् १९२९ में वे इससे मुक्त कर दिये गये।

केन्द्र और प्रान्तों के बीच में जो आर्थिक निर्धारण किया गया था, उसमें सन् १९३५ के शासन कानून ने कोई परिवर्त्तन नहीं किया। उसमें केवल इतना ही कहा गया, कि आय-कर में से एक निश्चित भाग प्रान्तों को दिया जायगा और जूट निर्यात कर में से एक निश्चित अंश जूट उत्पादक प्रान्तों को मिलेगा। इस केन्द्र की आय के दो साधनों का बंटवारा हो गया। फिर उस कानून ने केन्द्रीय विधानमंडल को यह अधिकार भी दिया, कि वह संघ में शामिल होनेवाले प्रान्तों और राज्यों को संघ द्वारा लगाये हुए और प्राप्त आवकारी और निर्यात करों में से कुछ अंश दे सकता था। फिर उस कानून में यह भी कहा गया, कि छोटे-छोटे राज्यों को सहायता के रूप में केन्द्र कुछ निर्धारित रकमें दे सकता था। ये सब उपबन्ध प्रान्तों की आर्थिक स्थिति दृढ़ करने के लिये बनाये गये थे। यद्यपि प्रान्तों को शिक्षा, स्वास्थ्य, दवा इत्यादि राष्ट्रीय महत्त्व के विभागों का भार संभालना पड़ता था ; परन्तु सन् १९१९ के शासन-कानून के अन्तर्गत उन्हें आय के लोचदार साधन नहीं दिये गये थे ; अर्थात् उनके पास ऐसे साधन नहीं थे, जिनसे होनेवाली आय बढ़ाई जा सके। सन् १९३५ के कानून में इस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न किया गया और प्रान्तों को आय-कर और निर्यात कर में से कुछ अंश दिये गये तथा ऊपर लिखे अन्य उपबन्ध बनाये गये। इस सम्बन्ध में सर ओटो नीमियर ने एक रिपोर्ट तैयार की और उसके आधार पर एक

आदेश (Order-in-Council) द्वारा प्रान्तों को आय-कर तथा जूट-निर्यात कर और अनुदान की व्यवस्था की गई। नीमियर फैसले के आधार पर प्रान्तों के लिये जो उपबन्ध बनाये गये, उनमें युद्धकाल में कुछ परिवर्त्तन किया गया; परन्तु देश के स्वतन्त्र होने तक उनमें कोई वास्तविक परिवर्त्तन नहीं हुआ।

नीमियर फैसले के अनुसार प्रान्तों के लिये निम्नलिखित सहायता निर्धारित की गई—उत्तर-प्रदेश, पांच वर्ष तक २५ लाख रुपया। आसाम ३० लाख रुपया। उड़ीसा १ वर्ष के लिये ४७ लाख रुपया, १ वर्ष और उसके बाद ४ वर्षों तक ४३ लाख रुपया और उसके बाद ४० लाख रुपया वार्षिक। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त १०० लाख रुपया और सिन्ध १०५ लाख रुपया।

आय कर के सम्बन्ध में नीमियर-समझौता में यह कहा गया कि केन्द्र को आय-कर के रूप में जो रकम प्राप्त होगी, उसमें से आधी प्रान्तों को दी जायगी। लेकिन यह कार्य तुरन्त नहीं किया जा सकता था। इसके लिये १० वर्ष का समय दिया गया था। इस बीच में प्रान्तों से होनेवाली तथा रेलों से होनेवाली सब आय केन्द्र के हाथ में रहेगी, जिससे केन्द्र के हाथ में १३ रुपये की एक निधि रह सके और उसका विभाजन हो सके। इसमें से प्रान्तों का हिस्सा इस प्रकार निर्धारित किया था—बम्बई और बंगाल में से प्रत्येक को २० प्रतिशत, मद्रास और उत्तर-प्रदेश में से प्रत्येक को १५ प्रतिशत, पंजाब ८ प्रतिशत, बिहार १० प्रतिशत, सी० पी० और बरार ५ प्रतिशत, आसाम, उड़ीसा और सिन्ध में से प्रत्येक को २ प्रतिशत और सीमाप्रान्त को १ प्रतिशत।

जूट-निर्यात कर के सम्बन्ध में नीमियर-फैसला में यह कहा गया कि जूट निर्यात कर में से ६२½ प्रतिशत जूट-उत्पादक प्रान्तों को मिलना चाहिये।

संविधान के उपबन्ध (The Provisions of the New-Constitutions)—संविधान में दिये गये उपबन्ध लगभग वही हैं, जो सन् १९३५ के शासन कानून में थे। आय के साधन केन्द्र और स्वायत्तपूर्ण राज्यों में बांट दिये गये हैं। इन राज्यों के क्षेत्राधिकार में जो साधन आते हैं, उनकी पूरी आय इन्हीं के हाथ में रहेगी। लेकिन केन्द्र के क्षेत्राधिकार में आय के जो साधन रखे गये हैं, उन्हें अंशरूप में या पूर्णरूप में राज्यों को दिया जा सकता है।

केन्द्र की आय के प्रधान साधन निम्नलिखित हैं—आय-कर, सीमान्त कर (Customs) तम्बाखू तथा भारत में उत्पादित होनेवाले सब सामानों पर उत्पादन-कर ; इनमें शराब, गांजा, अफीम इत्यादि नशीली वस्तुएं शामिल नहीं हैं। निगम-कर, कम्पनियों की पूंजी पर कर; रेल और डाक विभाग से आय; मुद्रा और शासन से आय। कुछ ऐसे भी कर हैं, जिन्हें केन्द्र लगावेगा, परन्तु उनसे प्राप्त आय स्वायत्त-पूर्ण राज्यों को मिलेगी। स्वायत्तपूर्ण राज्यों के आय के प्रधान साधन निम्नलिखित हैं—भूमि से प्राप्त लगान ; कृषि आय पर कर; कृषि-भूमि के उत्तराधिकार पर कर ; भूमि और इमारतों पर कर ; खनिज अधिकारों पर कर ; अफीम, गांजा, शराब तथा अन्य नशीली वस्तुओं पर कर ; वस्तुओं पर स्थानीय कर या चुंगी ; बिजली की बिक्री और उपयोग पर कर ; समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर बिक्री कर ; समाचार-पत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों को छोड़कर अन्य प्रकार के विज्ञापनों पर कर; स्थल और जल-पथों द्वारा आने-जानेवाले माल और यात्रियों पर कर ; सवारियों पर कर ; पेशों और रोजगारों पर कर, आमोद-प्रमोद, सट्टा, जुआ इत्यादि पर कर, स्टाम्प महसूल, केन्द्र से प्राप्त आय-कर के अंश तथा अन्य प्रकार की सहायता।

आय के कुछ मद, जो केन्द्र की विधायिनी सीमा के अन्दर आते हैं, अंशरूप में या पूर्णरूप में स्वायत्तपूर्ण राज्यों को दिये जा सकते हैं। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) निम्नलिखित कर संघ द्वारा लगाये जायँगे, लेकिन उन्हें स्वायत्तपूर्ण राज्य इकट्ठा करेंगे और वही उनका उपयोग भी करेंगे।

(क) विनिमय हुंडियों, चेकों, प्राभिसरी नोटों, वहन-पत्रों, साख-पत्रों, बीमा पालिसियों, शेयरों के तबादलों, ऋण-पत्रों, एवज़ियों रसीदों के बारे में स्टाम्प महसूल।

(ख) औषधि और विलास की उन वस्तुओं पर उत्पादन कर, जिनमें किसी भी प्रकार की नशीली वस्तु का प्रयोग किया जाता है।

(२) निम्नलिखित कर संघ द्वारा लगाये जायँगे, और संघ द्वारा वसूल किये जायँगे, परन्तु जिन प्रान्तों में वे वसूल किये जायँगे, उन्हीं को संसद के कानून के अनुसार दे भी दिये जायँगे—

(क) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर ;

(ख) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर कर ;

(ग) रेल, समुद्र तथा हवा द्वारा आने-जानेवाले माल और यात्रियों पर कर ;

(घ) रेलवे किराया और महसूल पर कर ;

(ङ) शेयर और वादा बाज़ार में लगनेवाले स्टाम्प कर को छोड़कर अन्य कर ;

(च) समाचार-पत्रों की खरीद और बिक्री पर तथा समाचार-पत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों पर कर।

(३) निम्नलिखित कर संघ द्वारा लगाये जायँगे तथा संघ द्वारा वसूल किये जायँगे, पर राष्ट्रपति के बनाये हुए नियमों के अनुसार संघ और स्वायत्तपूर्ण राज्यों में बांटे जायँगे—कृषि-आय को छोड़कर अन्य आय पर कर।

यह ध्यान रखना चाहिये कि आय-कर से जो रकम प्राप्त होगी, तथा जिसका भाग स्वायत्तपूर्ण राज्यों को प्राप्त होगा, उसमें केन्द्रीय शासित क्षेत्रों का भाग तथा संघ द्वारा वितरित वेतनों पर कर शामिल नहीं होंगे।

जब वित्त आयोग की स्थापना हो जायगी, तब आय-कर के वितरण के सिद्धान्त निर्धारित करने में राष्ट्रपति वित्त आयोग की सिफारिशों का भी ध्यान रखेगा।

(४) निम्नलिखित कर संघ द्वारा लगाये जायँगे तथा वसूल भी किये जायँगे; और यदि संसद कानून द्वारा निर्धारित कर दे तो जिन स्वायत्तपूर्ण राज्यों में वे वसूल किये जायँगे, उनको उस कानून के अनुसार पूर्ण या अंशरूप में वे मिल सकते हैं—औषधि और विलास की वस्तुओं पर लगनेवाले जिन करों की ऊपर चर्चा कर चुके हैं, उनको छोड़कर संघ द्वारा लगाये हुए अन्य उत्पादन कर। ऊपर नं० १ में औषधियों और विलास की वस्तुओं पर जिन उत्पादन करों का वर्णन किया जा चुका है, वे सब स्वायत्तपूर्ण राज्यों द्वारा लगाये जावेंगे और उन्हीं के द्वारा वसूल भी किये जावेंगे।

कुछ राज्यों को संघ द्वारा अनुदान (Grants from the Union to Certain States)—अनुच्छेद २७५ द्वारा संसद को यह अधिकार दिया

गया है कि कानून द्वारा वह केन्द्र की आय में से उन स्वायत्तपूर्ण राज्यों को सहायक अनुदान (Grants-in-Aid) दे सकती है, जिन्हें उसकी राय में ऐसी सहायता की आवश्यकता है।

इस अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि यदि किसी स्वायत्तपूर्ण राज्य में कोई ऐसी योजना आरम्भ की जाय, जिसका उद्देश्य अनुसूचित आदिमजातियों का कल्याण करना है अथवा जिसका उद्देश्य अनुसूचित क्षेत्रों का शासन शेप क्षेत्रों की सतह के वरावर उठाना है और यदि उस योजना को केन्द्रीय सरकार ने अपनी अनुमति दे दी है, तो उस योजना का खर्च केन्द्रीय सरकार ही देगी। अर्थात् इस सम्बन्ध में केन्द्र राज्यों को आवश्यक आर्थिक सहायता देगा।

आसाम को भी इस प्रकार की आर्थिक सहायता मिलेगी। जिससे वहां के स्वायत्तपूर्ण जिलों के शासन को सतह राज्य के शेप क्षेत्रों की सतह के वरावर लाई जा सके (देखो अध्याय २७) आसाम के सम्बन्ध में एक विशेप उपबन्ध वनाया गया है। संविधान प्रारम्भ होने के पहिले दो वर्षों में उस राज्य में स्वायत्तपूर्ण जिलों के शासन में आय से अधिक जो व्यय होता था, उसके वरावर रकम केन्द्र आसाम को सहायक अनुदान के रूप में आर्थिक सहायता देगा।

जूट पर निर्यात कर के वदले में अनुदान (Grants in liew of Export Duty on Jute)—अनुच्छेद २७३ के अनुसार पश्चिम वंगाल, विहार, आसाम और उड़ीसा को जूट निर्यात कर में से वे निर्धारित रकमें मिलेंगी ; ये रकमें राष्ट्रपति निर्धारित करेगा।

इन राज्यों को ये रकमें तव तक मिलती रहेंगी, जव तक जूट निर्यात कर लगता रहेगा। लेकिन संविधान आरम्भ होने के १० वर्प से अधिक ये रकमें नहीं मिलेंगी। इन दोनों शर्तों में से जो पहले पूरी हो, वही मान्य होगी।

वित्त आयोग स्थापित होने के वाद ये रकमें निर्धारित करने में राष्ट्रपति आयोग की सलाह लेगा।

पेशों और धन्धों पर कर (Taxes on Professions, Trades and Callings)--अनुच्छेद २७६ में कहा गया है कि यदि कोई राज्य अपने

लाभ के लिये कानून द्वारा, अथवा यदि कोई नगरपालिका अथवा कोई अन्य स्थानीय प्राधिकारी पेशों और व्यवसायों पर कर लगावे, तो वह इस कारण अमान्य नहीं समझा जायगा कि वह आय पर कर है। किसी व्यक्ति को ऐसे कर के रूप में राज्य को अथवा किसी स्थानीय प्राधिकारी को जो रकम देनी होगी, वह प्रति वर्ष २५० रुपये से अधिक नहीं होगी।

वित्त के सम्बन्ध में प्रथम अनुसूची के भाग (ख) के राज्यों के साथ समझौते (Agreements With States in Part 'B' of the First Schedule in Respect of Some Financial Matters)—वित्त के सम्बन्ध में ऊपर जो उपबन्ध दिये गये हैं। उनके सिवा भारत सरकार प्रथम अनुसूची के भाग (ख) के राज्यों के साथ निम्नलिखित बातों पर वित्त सम्बन्धी समझौते कर सकती है—

(१) ऐसे राज्य में भारत-सरकार द्वारा लगाया हुआ कोई कर या महसूल। उसकी वसूली और वितरण।

(२) यदि आय का कोई मद पहले ऐसे किसी राज्य के सीमाधिकार में था और अब वह केन्द्र के क्षेत्राधिकार में आ गया है और इस कारण राज्य की आय में कमी हुई है, तो केन्द्र उस राज्य को वित्तीय सहायता दे सकता है।

(३) राजाओं को जो वृत्ति (Privy Purse) मिलेगी, उसके सम्बन्ध में ऐसा कोई राज्य केन्द्र को जो रकम देगा।

केन्द्र और किसी राज्य के बीच में यदि ऐसा कोई समझौता होगा, तो वह संविधान प्रारम्भ होने के १० वर्ष से अधिक नहीं चलेगा। लेकिन वित्त-आयोग की रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रपति यदि उचित समझे तो वह ऐसे किसी समझौते को बदल सकता सकता है अथवा समाप्त कर सकता है।

वित्त आयोग (The Finance Commission)—अनुच्छेद २८० में कहा गया है कि एक वित्त आयोग की स्थापना होगी। संविधान आरम्भ होने के २ वर्ष के अन्दर एक वित्त आयोग की स्थापना होगी और उसके बाद प्रति पांचवें वर्ष अथवा इस अवधि के पहले एक नया आयोग बनेगा। आयोग में एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य होंगे। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति

द्वारा होगी, लेकिन संसद कानून द्वारा यह निर्धारित करेगी कि कौन व्यक्ति इस आयोग के सदस्य नियुक्त होंगे और उनकी नियुक्ति किस प्रकार होगी।

वित्त आयोग निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति के पास सिफारिशें भेजेगा।—(१) जिन करों का केन्द्र और स्वायत्तपूर्ण राज्यों के बीच में वंटवारा होगा, उस वंटवारे की रकमों के सम्बन्ध में; (२) केन्द्र द्वारा राज्यों को सहायक अनुदान के सिद्धान्तों और नियमों के सम्बन्ध में; (३) प्रथम अनुसूची के भाग (ख) के साथ वित्तीय समझौते कायम रखना अथवा उनमें परिवर्तन करना; (४) अन्य कोई बात जो संसद आयोग के पास भेजे।

आयोग को सिफारिशें तथा उसके कार्यों पर एक स्मृतिपत्र संसद में पेश किया जायगा।

विविध वित्तीय उपवन्ध (Miscellaneous Financial Provisions)—विधान में कुछ महत्वपूर्ण उपवन्ध वनाये गये हैं, जिनके अनुसार संघ तथा राज्यों की सम्पत्तियां करों से मुक्त होंगी, कुछ उपवन्धों का सम्बन्ध राजाओं की थैलियों (Privy Purses) तथा माल के क्रय और विक्रय पर करों से होगा।

अनुच्छेद २८५ के अनुसार, संसद के नियमों का पालन करते हुए अथवा संसद यदि अन्य कोई शक्ति न रखे तो संघ की सम्पत्ति पर कोई स्वायत्तपूर्ण राज्य द्वारा अथवा किसी ऐसे राज्य के प्राधिकारी द्वारा कोई कर नहीं लगाया जा सकता।

इसी प्रकार किसी स्वायत्तपूर्ण राज्य की सम्पत्ति और आमदनी पर संघ कोई कर लगा नहीं सकता।

लेकिन संघ किसी स्वायत्तपूर्ण राज्य में होनेवाले व्यवसाय या रोजगार पर कर लगा सकता है; इससे केवल वही रोजगार और व्यवसाय उन्मुक्त रहेंगे, जिन्हें संसद कानून द्वारा शासन के लिये आवश्यक घोषित करे।

अनुच्छेद २८६ में कहा गया है, कि कोई भी स्वायत्तपूर्ण राज्य माल की खरीद या बिक्री पर कर नहीं लगावेगा, यदि सौदा—(क) राज्य की सीमा के बाहर होता है, अथवा (ख) जो माल भारत में आयात और भारत की सीमा के बाहर निर्यात किया जाता है।

इसी अनुच्छेद में कहा गया है, कि संसद् के बनाये हुए कानूनों का पालन करते हुए, उस माल की खरीद और बिक्री पर कोई राज्य कर नहीं लगावेगा, जिसके द्वारा राज्यों के बीच में व्यवसाय होता है।

इस अनुच्छेद के खंड (३) में कहा गया है, कि जिस माल को संसद कानून द्वारा समाज के जीवन के लिये आवश्यक घोषित कर दे, उस पर किसी राज्य के कानून द्वारा लगाया हुआ क्रय-विक्रय कर तब तक मान्य न होगा, जब तक कि वह कानून राष्ट्रपति के विचाराधीन न जावे और राष्ट्रपति उसे अपनी अनुमति न दे देवे।

राजाओं की वृत्तियां या थैलियां (Privy Purses of Rulers)— यदि भारत की किसी रियासत के राजा का भारत सरकार से यह समझौता हो गया है, कि उसकी थैली या भत्ता पर कर नहीं लगेगा, तो उसे करमुक्त रकम भारत को संचित निधि से मिलेगी। यदि ऐसी किसी रियासत की स्थिति किसी स्वायत्तपूर्ण राज्य में है, तो वह राज्य उस थैली की रकम देगा और उतने समय तक देगा, जितने समय के लिये राष्ट्रपति निर्धारित कर दे।

इक्कीसवां अध्याय

संविधान का संशोधन

(Amendment of the Constitution)

संविधान में उसके संशोधन के लिये जो प्रक्रिया निर्धारित हो गई है, वह इंग्लैंड की तरह बहुत सरल नहीं है और अमेरिका की तरह बहुत कठिन नहीं है। इंग्लैंड में पार्लियामेंट का एक साधारण कानून संविधान में संशोधन कर सकता है। अमेरिका में प्रत्येक संशोधन का प्रस्ताव कांग्रेस के प्रत्येक सदन के दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत द्वारा होना चाहिये अथवा दो-तिहाई राज्यों के विधान-मंडलों की मांग पर कांग्रेस को एक विशेष अधिवेशन करना चाहिये।

भारत के संविधान में एक ऐसा तरीका ग्रहण किया गया है, जो न अधिक लचीला है न अधिक कड़ा। संशोधन के लिये साधारण उपबन्ध यह है कि संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। यदि यह प्रस्ताव प्रत्येक सदन में कुल सदस्यों की संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा पास हो जाता है। और उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाती है, तो संविधान उस प्रस्ताव के अनुसार संशोधित समझा जायेगा (अनु० ३६८)।

लेकिन यदि प्रस्ताव निम्नलिखित में से किसी बात अथवा बातों में संशोधन करना चाहता है, तो राष्ट्रपति की अनुमति के लिये जाने के पहिले उसे प्रथम अनुसूची के भाग 'क' और 'ख' राज्यों के कम-से-कम आधे विधानमंडलों का समर्थन प्राप्त होना चाहिये—

(१) राष्ट्रपति के निर्वाचन से सम्बन्ध रखनेवाला अनुच्छेद ५४।

(२) राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया से सम्बन्ध रखनेवाला अनुच्छेद ५५।

(३) अनुच्छेद ७३ जिसमें संघ की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों का वर्णन है।

(४) अनुच्छेद १६२ जिसमें प्रथम अनुसूची के भाग (क) के राज्यों की कार्यपालिका शक्तियों का वर्णन है।

(५) अनुच्छेद २४१ जिसमें प्रथम अनुसूची के भाग (ग) के राज्यों के उच्च न्यायालयों का वर्णन है।

(६) संविधान के भाग ५ का अध्याय ४ जिसमें संघ की न्यायपालिका का वर्णन है।

(७) संविधान के भाग ६ का अध्याय ५ जिसमें भाग (क) के राज्यों के उच्च न्यायालयों का वर्णन है।

(८) संविधान के भाग ११ का अध्याय १ जिसमें वैधानिक सम्बन्धों का वर्णन है।

(९) विधायिनी सूचियां (The Legislative Lists)

(१०) स्वयं अनुच्छेद ३६८ जिसमें संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन है।

इस प्रकार हम देखते हैं, संविधान के संशोधन की प्रक्रिया संघ शासन के सिद्धान्तों के अनुकूल है। संविधान में विधायिनी शक्तियों का जो वितरण किया गया है, उसे बदलने का अधिकार केन्द्रीय विधानमंडल को नहीं दिया गया है। यदि वैधानिक और कार्यपालिका सम्बन्धी क्षेत्राधिकारों की सीमाओं में केन्द्रीय विधानमंडल परिवर्तन करना चाहे, तो भी उसे स्वायत्तपूर्ण राज्यों के कम-से-कम आधे विधानमंडलों की स्वीकृति लेनी पड़ेगी। संविधान में विधायिनी शक्तियों का जो वितरण किया गया है, उसमें परिवर्तन करने का अधिकार यदि केन्द्र को दे दिया गया होता तो भारत का संविधान संघीय न होता। तब संघ को राज्यों की स्वतन्त्रता नष्ट करने की शक्ति मिल गई होती।

लेकिन यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि राज्यों के विधानमंडलों को भी अपना विधान वदलने का अधिकार नहीं है। कनाडा तथा आस्ट्रेलिया के संघों में प्रान्त तथा राज्य क्रमशः संघ प्रणाली का पालन करते हुए अपना विधान बदल सकते हैं। इस अन्तर का कारण विभिन्न देशों की राजनैतिक प्रगति है।

बाईसवां अध्याय

उच्च न्यायालय और अधीन न्यायालय

(The High Courts and the Subordinate Courts)

संविधान के अनुसार प्रथम अनुसूची के भाग (क) और (ख) के राज्यों में से प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा। संविधान प्रारम्भ होने के ठीक पहले जिस राज्य में जो उच्च न्यायालय रहा हो, वह उस राज्य का न्यायालय समझा जायगा। दोनों भागों के राज्यों में उच्च न्यायालयों के अधिकार और कार्य लगभग समान ही होंगे। इनका वर्णन नीचे दिया गया है। प्रथम अनुसूची के भाग (ग) के राज्यों में से प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय स्थापित करने का संसद को अधिकार दिया गया है। स्वायत्तपूर्ण राज्यों के उच्च न्यायालयों में जो उपबन्ध लागू हों, वे केन्द्र द्वारा शासित राज्यों में भी लागू होंगे, लेकिन उनमें इन राज्यों के लिये संसद कानून द्वारा कुछ परिवर्तन कर सकती है।

प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख का न्यायालय (A Court of Record) होगा, और तदनुसार उसके अधिकार होंगे। उनमें उसे अपने अवमान (Contempt) के लिये दंड देने का अधिकार शामिल होगा। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीश होंगे। उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी, उनकी अधिकतम संख्या राष्ट्रपति समय-समय पर निर्धारित करेगा। प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति में राष्ट्रपति भारत के प्रधान न्यायाधिपति तथा उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख की सलाह लेगा और मुख्य न्यायाधीश को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में वह उस राज्य के मुख्य न्यायाधीश को भी सलाह लेगा। किसी व्यक्ति को किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने के लिये भारत का नागरिक होना चाहिये तथा (१) भारत के क्षेत्र में किसी न्याय के पद पर कम से कम १० वर्ष तक रह चुका हो, अथवा (२) प्रथम अनुसूची के किसी राज्य में अथवा कम-से-कम दो राज्यों में लगातार

कम से कम १० वर्ष तक वकालत कर चुका हो। न्यायाधीशों की अपने पद से अवकाश ग्रहण करने की आयु ६० वर्ष की निर्धारित की गई है। कोई न्यायाधीश उसी तरह अपना पदत्याग कर सकता है अथवा उसी प्रकार अपने पद से हटाया जा सकता है, जिस प्रकार कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश। अर्थात् जब संसद का प्रत्येक सदन एक ही अधिवेशन में अयोग्यता या दुर्व्यवहार का आरोप करके राष्ट्रपति से उसे पदच्युत करने की मांग करे, तब राष्ट्रपति के आदेश द्वारा उसे पदच्युत किया जा सकता है। उस मांग या प्रस्ताव को सदन के कुल सदस्यों की संख्या का बहुमत तथा उपस्थित और मत देनेवाले कुल सदस्यों की दो-तिहाई संख्या का समर्थन प्राप्त होना चाहिये। संविधान प्रारम्भ होने के बाद जो सदस्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर रह चुका है, वह फिर भारत के किसी न्यायालय में अथवा अन्य किसी अधिकारी के सामने वकालत नहीं कर सकता। प्रथम अनुसूची के भाग (क) के राज्यों में मुख्य न्यायाधीश का वेतन ४,००० रु० मासिक होगा तथा अन्य न्यायाधीशों का वेतन ३५०० रु० मासिक होगा। प्रथम अनुसूची के भाग (ख) के राज्यों में न्यायाधीशों का वेतन राष्ट्रपति राजप्रमुख की सलाह से निर्धारित करेगा।

उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार वही रहेगा, जो संविधान प्रारम्भ होने के पहले था। अर्थात् राज्यों में उच्च न्यायालय दंड तथा व्यवहार के मामलों में सबसे ऊंची अदालतें होंगी। कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में उच्च न्यायालयों में पहले की तरह प्रारम्भिक तथा अपीली दोनों प्रकार का क्षेत्राधिकार होगा। अभी तक उच्च न्यायालयों का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में माल सम्बन्धी शर्तें या सीमाएं लागू होती थीं। माल के मामले लगान वसूली वगैरह में जहां तक प्रथा और चालू कानून के आधार पर होते थे, उस हद तक यह क्षेत्राधिकार सीमित था। लेकिन नये संविधान में उच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार पर से ये सब बन्धन हटा दिये गये हैं।

अपने क्षेत्राधिकार में आनेवाले सब न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर उच्च न्यायालय देख-रेख रखेंगे। मूल अधिकारों की रक्षा के लिये अथवा अन्य किसी सम्बन्ध में उच्च न्यायालयों को किसी व्यक्ति, अधिकारी अथवा सरकार के

विरुद्ध आदेश या निर्देश जारी करने का अधिकार होगा। इन आज्ञापत्रों में बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेक्षण लेख इत्यादि बातें शामिल हैं।

यदि कोई उच्च न्यायालय यह सोचता है कि उसके अधीन किसी न्यायालय में कोई ऐसा मुकदमा चल रहा है, जिसमें संविधान पर टिप्पणी या टीका करनेवाले किसी कानून का सम्बन्ध है, तो उसे वह मुकदमा वहां से उठाकर अपने हाथ में ले लेना चाहिये। उसके बाद या तो वह उस मुकदमे को स्वयं कर सकता है अथवा उस कानून के सम्बन्ध में अपनी राय निश्चित करके उस मुकदमें को फिर से उस न्यायालय को फैसला करने के लिये सौंप सकता है। जिस राज्य में उच्च न्यायालय का प्रधान कार्यालय स्थापित है, उसके सिवा भी संसद उसका क्षेत्राधिकार अन्य किसी राज्य तक बढ़ा सकती है, अथवा यदि अन्य किसी राज्य तक है, तो उसे समाप्त कर सकती है।

अधीन न्यायालय (The Subordinate Courts)—राज्य में जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और स्थानान्तर राज्यपाल अथवा राजप्रमुख द्वारा उच्च न्यायालय की सलाह के अनुसार की जायेगी। जो लोग संघ अथवा राज्य की नौकरी में नहीं हैं, वे जिला न्यायाधीश के पद पर तभी नियुक्त हो सकते हैं, जब कि कम-से-कम ७ वर्ष तक एडवोकेट या प्लीडर रह चुके हों, और उच्च न्यायालय ने उनकी इस नियुक्ति के लिये सिफारिश की हो। ज़िला न्यायाधीश पद में निम्नलिखित न्याय-सम्बन्धी पद शामिल हैं—सिटी सिविल कोर्ट के न्यायाधीश, एडीशनल या अतिरिक्त ज़िला न्यायाधीश, ज्वॉइन्ट या सहकारी ज़िला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, छोटी अदालत या स्माल काज़ कोर्ट का मुख्य न्यायाधीश, चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, अतिरिक्त चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, सेशन्स जज, एडीशनल सेशन्स जज और सहायक सेशन्स जज।

न्यायपालिका की नौकरियों में जिला न्यायाधीशों को छोड़कर अन्य अधिकारियों की नियुक्ति राज्यपाल या राजप्रमुख अपने बनाये हुए नियमों के अनुसार करेगा। ये नियम वह लोक-सेवा-आयोग (Public Service

Commission) तथा उच्च न्यायालय की सलाह से बनावेगा। "न्याय-पालिका की नौकरियों" का अर्थ उन नौकरियों से है, जिसमें जिला न्यायाधीश का पद तथा उसके अधीन अन्य व्यवहार न्यायाधिकारियों के पद शामिल हैं।

जिला न्यायालय तथा उसके अधीन न्यायालय उच्च न्यायालयों के अधीन रहेंगे। नियंत्रण में जिला न्यायाधीश से नीचे के अधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति तथा छुट्टी देनी भी शामिल हैं।

राज्यपाल अथवा राजप्रमुख एक विज्ञप्ति द्वारा यह आदेश दे सकता है कि ऊपर दिये हुए उपबन्ध उसके द्वारा किये गये परिवर्तनों के अनुसार राज्य के सब अधीन न्यायालयों तथा किसी भी वर्ग के अथवा वर्गों न्यायाधिकारियों के लिये लागू होंगे।

तेईसवां अध्याय

निर्वाचन

(Elections)

वयस्क मताधिकार (Adult Suffrage)—जैसा कि कहा जा चुका है संविधान में यह निर्धारित किया गया है कि लोक-सभा तथा राज्य की विधान सभाओं के निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे। हमारे संविधान की यह बहुत ही महत्वपूर्ण धारा है। इसके द्वारा संविधान ने साम्प्रदायिक निर्वाचनों की उस हानिकारक नीति को खतम कर दिया, जिसे ब्रिटिश शासन ने देश में फूट डालने की नीयत से स्थापित किया था। उसके द्वारा सम्पत्ति के आधार पर मताधिकार भी खतम कर दिया गया। इस प्रकार जहां तक संसद और राज्यों के निम्न सदनों का सम्बन्ध है, 'एक व्यक्ति, एक मत' के सिद्धान्त का पालन किया जायगा। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि ब्रिटेन में भी 'एक व्यक्ति

एक मत' का सिद्धान्त कुछ वर्षों पूर्व ही स्थापित किया गया है। वहां अपने रहने के निर्वाचन क्षेत्र को यदि किसी अन्य निर्वाचन क्षेत्र में या क्षेत्रों में कोई सम्पत्ति होती थी, तो वह व्यक्ति उन क्षेत्रों में भी मतदान कर सकता था। लेकिन सन् १९४८ के मताधिकार या प्रतिनिधित्व कानून ने इंग्लैंड में वहुमताधिकार (Plural Voting) की प्रणाली खतम कर दी और यह निर्धारित कर दिया कि एक व्यक्ति एक से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों में मत नहीं दे सकता।

निर्वाचन आयोग (The Election Commission)—संविधान में कहा गया है कि एक निर्वाचन आयोग होगा। इस आयोग को संसद, राज्यों के विधानमंडलों तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचनों की देख-रेख करना होगा; वह इन निर्वाचनों को करावेगा तथा इनके लिये निर्वाचन-सूची तैयार करावेगा तथा और भी तैयारियां करावेगा। आयोग निर्वाचन अधिकरणों (Election Tribunals) की नियुक्ति करेगा। आयोग में एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त (Chief Election Commissioner) तथा अन्य सदस्य रहेंगे और इनकी नियुक्ति संसद के वनाये हुए नियमों के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा होगी। राज्य के विधानमंडलों के निर्वाचनों में आयोग की सहायता करने के लिये राष्ट्रपति को क्षेत्रीय आयुक्त (Regional Commissioners) नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है।

यद्यपि निर्वाचन आयुक्तों की नौकरियों की शर्तें राष्ट्रपति निर्धारित करेगा, लेकिन यह निश्चित कर दिया गया है, मुख्य निर्वाचन आयुक्त उन्हीं कारणों से और उन्हीं तरीकों पर पदच्युत किया जा सकता है, जिन कारणों और जिन तरीकों से उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश। और अन्य निर्वाचन आयुक्त मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के विना पदच्युत नहीं किये जा सकते।

केवल एक निर्वाचन-सूची (Only one Electoral Roll)—एक निर्वाचन क्षेत्र के लिये केवल एक निर्वाचन-सूची रहेगी और धर्म, मूलवंश, जाति, योनि के आधार पर किसी व्यक्ति का नाम सूची से अलग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार कोई व्यक्ति एक विशेष निर्वाचन-सूची में अपना नाम रखने का दावा नहीं कर सकता।

निर्वाचन सम्बन्धी उपबन्ध (Provisions with Respect to Electoral Matters)—संविधान ने संसद को यह अधिकार दिया है, कि वह निर्वाचन सम्बन्धी सब उपबन्ध बनावेगी। इनमें मतदाता सूची तैयार करना और केन्द्र तथा राज्यों के लिये निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमाएं निर्धारित करना इत्यादि कार्य शामिल हैं। राज्यों के विधानमंडलों को अपने निर्वाचनों के सम्बन्ध में ऐसे उपबन्ध बनाने का अधिकार है, जो संसद के बनाये हुए कानूनों द्वारा नहीं बन सके हैं। अनुच्छेद ३२९ के अनुसार संसद अथवा कोई राज्य विधानमंडल निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा के सम्बन्ध में अथवा निर्वाचन क्षेत्रों में स्थान-वितरण (Allotment of Seats) के सम्बन्ध में जो कानून बनावें, उन पर किसी न्यायालय में कार्यवाही नहीं हो सकती। उसी अनुच्छेद के अनुसार किसी निर्वाचन पर आपत्ति केवल एक लिखित प्रार्थना द्वारा ऐसे प्राधिकारी के सामने ऐसे तरीके से किया जा सकता है, जिसे उपयुक्त विधानमंडल निर्धारित कर दे।

चौबीसवाँ अध्याय

कुछ वर्गों के लिये विशेष उपबन्ध

(Special Provisions Relating to Certain Classes)

यद्यपि संविधान में साम्प्रदायिक निर्वाचनों को समाप्त कर दिया गया है, फिर भी कुछ वर्गों के लिये कुछ विशेष उपबन्ध बनाये गये हैं। ये विशेष उपबन्ध प्रधानतः शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए कुछ वर्गों के लिये बनाये गये हैं और अधिकतर एक सीमित समय के लिये अर्थात् केवल १० वर्ष के लिये बनाये गये हैं। एंग्लो-इंडियन जाति को भी कुछ विशेष सुविधाएं दी गई हैं। लेकिन उनके लिये भी संविधान प्रारम्भ होने के १० वर्ष के बाद ये सब सुविधाएं समाप्त हो जायँगी।

विधानमंडलों में स्थान सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में उपवन्ध (Provisions Relating to Reservation of Seats in the Legislatures)—अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों के लिये लोक-सभा तथा राज्यों की विधान-सभाओं में स्थान सुरक्षित रखने के लिये उपवन्ध वनाये गये हैं। संसद तथा राज्यों को विधानमंडलों सम्बन्धी अध्यायों में इन उपवन्धों का वर्णन हो चुका है। संविधान प्रारम्भ होने के १० वर्ष वाद ये सव उपवन्ध समाप्त हो जायँगे। इसी प्रकार एंग्लो-इंडियन जाति के लिये संसद तथा राज्यों की विधान-सभाओं में नामनिर्देशन सम्बन्धी जो उपवन्ध वनाये गये हैं, वे भी संविधान प्रारम्भ होने के १० वर्ष वाद समाप्त हो जायँगे।

नौकरियों के सम्बन्ध में विशेष उपवन्ध (Special Provisions Relating to Services)—संविधान के अनुच्छेद ३३५ में कहा गया है, कि संघ तथा राज्यों की नौकरियों में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों को उपयुक्त संख्या में नौकरियां देने का ध्यान रखा जायगा।

एंग्लो-इंडियन जाति के लिये भी एक विशेष उपवन्ध वनाया गया है। संविधान में यह भी कहा गया था, कि एंग्लो-इंडियन जाति को संविधान प्रारम्भ होने से २ वर्ष तक रेलवे, डाक और चुँगी विभाग में वही सुविधाएं मिलती रहेंगी, जो १५ अगस्त सन् १९४७ के पहले उन्हें प्राप्त थीं। प्रति २ वर्ष के वाद इस जाति के लिये सुरक्षित नौकरियों में १० प्रतिशत कमी कर दी जायगी। संविधान के प्रारम्भ से १० वर्ष वाद ये सव संरक्षण समाप्त हो जायँगे।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के लिये नौकरियों में वास्तविक संरक्षण (Actual Reservation in Services for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes)—संविधान के अनुच्छेद १६ (देखो अध्याय ८) के अनुसार राज्य को नागरिकों के पिछड़े हुए वर्गों के लिये नौकरियों में सुरक्षित स्थान दे रखने का अधिकार प्राप्त है और जैसा कि अभी कह चुके हैं, अनुच्छेद ३३५ में यह आदेश दिया गया है, कि सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के हकों का विशेषरूप से ध्यान रखा जायगा। सितम्वर, सन्

१९५० में, तथा सन् १९५१ में की गई जन-गणना के पहिले केन्द्रीय सरकार ने अपनी नौकरियों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों का अनुपात निर्धारित कर दिया था। अखिल भारतीय आधार पर खुली प्रतियोगिता द्वारा प्रत्यक्षरूप से जो नौकरियां दी जाती हैं, उनमें अनुसूचित जातियों के लिये १२½ प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं और खुली प्रतियोगिता के सिवा अन्य तरीकों द्वारा अखिल भारतीय आधार पर जो नौकरियां दी जाती हैं, उनमें १६⅔ प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं। अनुसूचित आदिम जातियों के लिये प्रत्यक्षरूप से (Direct Recruitment) चाहे वह खुली प्रतियोगिता द्वारा हो, अथवा अन्यथा, ५ प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखे गये हैं। इन संरक्षणों के साथ में यह शर्त अवश्य पालन होनी चाहिये, कि उम्मीदवारों में निर्धारित शिक्षा सम्बन्धी गुण हों और वे उस प्रकार के पदों के योग्य हों। लेकिन जब पदोन्नति (Promotion) द्वारा नौकरी दी जायगी, तब ये सब संरक्षण लागू नहीं होंगे।

एंग्लो इंडियन जाति के लिये शिक्षा सम्बन्धी आर्थिक सहायता के लिये विशेष उपबन्ध (Special Provisions Relating to the Educational Grants for the Anglo-Indian Community)—एंग्लो-इंडियन जाति को संघ अथवा स्वायत्तपूर्ण राज्य मार्च सन् १९४८ में समाप्त होनेवाली आर्थिक वर्ष के पहले जो आर्थिक सहायता शिक्षा के लिये देते थे, वह संविधान प्रारम्भ होने के बाद पहले ३ आर्थिक वर्षों में जारी रहेगी। उसके बाद आगे के प्रति ३ वर्षों में यह सहायता १० प्रतिशत घटाई जा सकती है और संविधान प्रारम्भ होने के १० वर्ष बाद यह विशेष सहायता बन्द हो जायगी। एक शर्त यह भी रखी गई है, कि यदि इन १० वर्षों के बीच में ये शिक्षा संस्थाएं कम-से-कम ४० प्रतिशत स्थान एंग्लो-इंडियन जाति के सिवा अन्य जाति के लड़कों को न दें, तो उनको यह विशेष आर्थिक सहायता नहीं दी जायगी।

अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों के लिये एक विशेष प्राधिकारी (A Special Officer for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes etc.)—राष्ट्रपति एक विशेष प्राधिकारी नियुक्त करेगा। वह प्राधिकारी इस बात की देख-भाल करेगा, कि

अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों तथा एंग्लो-इंडियन जाति को संविधान द्वारा जो संरक्षण मिले हैं, उन पर कहां तक अमल हो रहा है और कैसा हो रहा है। इन सब बातों की पूरी-पूरी रिपोर्ट वह राष्ट्रपति को देगा। यदि राष्ट्रपति आदेश दे, तो वह प्राधिकारी अन्य पिछड़े हुए वर्गों के सम्बन्ध में यही काम कर सकता है।

अनुसूचित क्षेत्रों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के सम्बन्ध में संघ का अनुशासन (Control of the Union in Matters Relating to the Scheduled Areas and the Scheduled Tribes)—संविधान प्रारम्भ होने के १० वर्ष बाद राष्ट्रपति एक आयोग नियुक्त करेगा और वह आयोग स्वायत्तपूर्ण राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शासन के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट तैयार करेगा। अपनी कार्यपालिका शक्ति के आधार पर केन्द्र ऐसे किसी राज्यों को अनुसूचित आदिम जातियों के कल्यान के लिये कोई विशिष्ट योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने के लिये आदेश दे सकता है।

पिछड़े हुए वर्गों का आयोग (Commission for Backward Classes)—राष्ट्रपति को एक आयोग नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है, जो सामाजिक और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों की हालत पर एक रिपोर्ट तैयार करेगा। वह बतलावेगा कि उन वर्गों की क्या-क्या कठिनाइयां हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है।

अनुसूचित जातियां और अनुसूचित आदिमजातियां (Scheduled Castes and the Scheduled Tribes)—राष्ट्रपति को यह अधिकार है, कि किसी राज्य के राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की सलाह से वह निर्धारित कर सकता है, कि उस राज्य में कौन-कौन से वर्ग अथवा जातियां अथवा मूलवंश अनुसूचित जातियां गिनी जायँगी। जो सूची राष्ट्रपति तैयार करेगा, उसमें केवल संसद परिवर्त्तन कर सकती है और उसमें कुछ वर्गों, जातियों इत्यादि के नाम जोड़ सकती है अथवा उसमें से निकाल सकती है। १५ अगस्त सन् १९५० को एक आदेश प्रकाशित कर राष्ट्रपति ने विभिन्न राज्यों में अनुसूचित

जातियों की एक सूची तैयार कर दी (नीचे देखो) उस आदेश में यह स्पष्ट कर दिया गया है, कि जो व्यक्ति हिन्दू-धर्म को छोड़कर अन्य धर्म मानता है, वह किसी अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं हो सकता। परन्तु सिख जाति के रामदासी, कबीरपन्थी, मज़हबी और सिकलीगर सम्प्रदायों के लोग अनुसूचित जाति के माने जायँगे, चाहे वे हिन्दू धर्म मानें अथवा सिख धर्म।

ठीक इसी तरह राष्ट्रपति एक सार्वजनिक विज्ञप्ति द्वारा किसी राज्य की अनुसूचित आदिमजातियों की सूची प्रकाशित कर सकता है। इस सूची में परिवर्त्तन करने का अधिकार केवल संसद को है।

अनुसूचित जातियां

(अनुच्छेद ३४१ के अनुसार १० अगस्त, १६५० को राष्ट्रपति के आदेश द्वारा निर्धारित)

आसाम

पूरे राज्य में—

१. बंसफोड़, २. भुईंमाली या माली, ३. वितियल बानिया या बानिया, ४. धूपी या धोती, ५. डुगला या धोली, ६. हीरा, ७. झालो या मालो, ८. कैवरता या जलिया, ९. लालबेगी, १०. महार, ११. मेहतर या भंगी, १२. मोची, १३. नाम सूद्र, १४. पाटनी, १५. सूनधर।

बिहार

(क) पूरे राज्य में—

१. बौरी, २. वंतर, ३. भोगटा, ४. चमार, ५. कपाल, ६. धोबी, ७. डोम, ८. दुसाध जिनमें धारी या धरही भी शामिल हैं, ९. घासी, १०. हलखोर, ११. हरी जिनमें मेहतर भी शामिल हैं, १२. कंजर, १३. कुरारियर, १४. लालबेगी, १५. मोची, १६ मुसहर, १७. नट, १८. पन, १९ पासी, २०. रजवार, २१. तूरी।

(ख) पटना और तिरहुत डिवीज़न में मुंगेर, भागलपुर, पुरनिया और पालामऊ के जिलों में—

भूमिज।

(ग) पटना, शाहाबाद, गया और पालामऊ जिलों में—

भूइया।

(घ) शाहाबाद जिले में—

डावगर।

बम्बई

(क) पूरे राज्य में—

१. अगेर, २. असौदी, ३. बकाद, ४. भांबी, ५. भंगी, ६. चक्रवयदसार, ७. चलवाड़ी, ८. चमार या मोचीगर या सामागर, ९. चैनादसारू, १०. चुहार या चूरा, ११. डाकालेरू, १२. धेगूमेगू, १३. ढोर, १४. गरौदा, १५. हलीर, १६. हलसर या हसलर या हुलसवार, १७. होलाया या गारौद, १८. कोलचा या कोलघा, १९ लिंगाडेर, २०. मोचीगर, २१ माडिक या मेंग, २२. महार, २३. महियावंशी, २४. मंगरूदी, २५. मेघवल, या मेंघवर, २६. मिनी माडिक, २७. मुकरी, २८. नांदिया, २९. रोहित, ३०. शैनवा या सिंधाया, :३१. सिंगदव या सिंगाडिया, ३२. सोची, ३३. तिमाली, ३४ तूरी, ३५. वनकर, ३६. विवेलिया।

(ख) गुजरात डिवीजन को छोड़कर पूरे राज्य में—

मोची

(ग) उत्तर कनारा जिले में—

कोटगर

मध्य-प्रदेश

(क) पूरे राज्य में—

१. बसोर या बुरूध, २. बहना या बहाना, ३. बलाही या बलाई, ४. चमार, ५. डोम, ६. मेंग, ७. मेहतर या भंगी, ८. मोची, ९. सतनामी, १०. उधेलिया—बिलासपुर जिले में, ११. बेदर—अकोला. अमरावती और

बुलढाना जिलों में, १२. चड़ार—भंडारा और सागर जिलों में, १३. दहैत या दहायत—सागर जिले की दमोह सबडिवीज़न में, १४. देवार—बिलासपुर, दुर्ग रायपुर, बस्तर, सरगुजा और रायगढ़ जिलों में, १५. धानुक—दमोह सबडिवीज़न को छोड़कर सागर जिले में—१६. दोहोर—अकोला, अमरावती, बुलढाना, यवत महल, बालाघाट, भंडारा, चांदा, नागपुर और वर्धा जिलों में, १७. घासी या घसिया—अकोला, अमरावती, बुलढाना, यवत महल, बालाघाट, भंडारा, बिलासपुर, चांदा, दुर्ग, वर्धा, नागपुर, रायपुर, सरगुजा, बस्तर और रायगढ़ जिलों में, १८. होलिया—बालाघाट और भंडारा जिलों में, १९. कैकदी—अकोला, अमरावती, बुलढाना, यवत महल, भंडारा, चांदा, नागपुर और वर्धा जिलों में २०. कटिया—अकोला, अमरावती, बुलढाना, यवत महल, बालाघाट, बैतूल, भंडारा, बिलासपुर, चांदा, दुर्ग, नागपुर, रायपुर, वर्धा, बस्तर, सरगुजा और रायगढ़ जिलों में, हुशंगाबाद जिले की हुशंगाबाद और सिवनी, मालवा तहसीलों में और सिवनी सबडिवीज़न को छोड़ कर छिंदवाड़ा जिले में तथा दमोह सबडिविज़न को छोड़कर सागर जिले में, २१. खंगार-भंडारा, बुलढाना, और सागर जिलों में और हुशंगाबाद जिले की हुशंगाबाद और सिवनी मालवा तहसीलों में, २२. कोरी-अमरावती, बालाघाट, बैतूल, भंडारा, बुलढाना, छिंदवाड़ा, जबलपुर मंडला, निमाड़, रायपुर, सागर, दुर्ग, बस्तर, सरगुजा और रायगढ़ जिलों में और हरदा तथा सुहागपुर तहसीलों को छोड़ कर हुशंगाबाद जिले में, २३. मादगी—अकोला, अमरावती, बुलढाना, यवत महल, बालाघाट, भंडारा चांदा, नागपुर और वर्धा जिलों में, २४. महार या मेहरा—हुशंगाबाद जिले की हरदा और सुहागपुर तहसीलों को छोड़कर पूरे राज्य में, २५. रुज्झर—हुशंगाबाद जिले की सुहागपुर तहसील में।

मद्रास

पूरे राज्य में—

१. आदि आंध्र, २. आदि द्रविड़, ३. आदि कर्नाटक, ४. अजीला, ५. अरुन्थथैयर, ६. बैरा, ७. बकुडा, ८. बंडी, ९. बरीकी, १०. बावूरी, ११. बेलारा, १२. ब्यागारी, १३. चचाटी, १४. चक्कीलियान, १५. चलवाड़ी, १६. चमार, १७. चंडाल,

१८. चेरुमन, १९. डंडासी, २०. देवेद्रकुलाथन, २१. डोम या डोमवारा, पेंडी, पानो, २२. घासी या हड्डी, रैली, साचडी, २३. गोडागली, २४. गोडारी, २५ गोड्डा, २६. गोसंगी, २७. हासला, २८. होलया, २९ जग्गाली, ३०. जम्बूवूलू, ३१. कदान, ३२. कल्लाडी, ३३. कनक्कन, ३४. करिंमपालन, ३५. कुडालो, ३६. कूसा, ३७. कोरागा, ३८. कुडूवी, ३९. कुडंवन, ४०. कुरावन, ४१. कुरीचन, ४२. मदारी, ४३. मडीगा, ४४. मेला, ४५. माला, (जिसमें एजेंसी माला जाति भी शामिल है,) ४६. मालादासु, ४७. मालासर, ४८. मतंगी, ४९. मविलन, ५०. मोगर, ५१. मोची, ५२. मुंडाला, ५३. नलकेयव, ५४. नायडी, ५५. पगादयी, ५६. पेंडा, ५७. पाकी, ५८. पालन, ५९. पंवाडा, ६०. पामिर्दी, ६१. पानन, ६२. पंचम, ६३. पन्नियंदी, ६४. परैयन, ६५. परावन, ६६. पुलायन, ६७. पुथिरइवन्नन, ६८. रनपर, ६९. समागर, ७०. संवन, ७१. सपारी, ७२. सेम्मन, ७३. थोटी, ७४. थिरुवलुवर, ७५. वल्लुवन, ७६. वालमीकि, ७७. वेत्तुवन ।

उड़ीसा

१. आदि आंध्र, २. अमंत या अमत, ३. उधेलिया, ४. वदैक, ५. वघैती, ६. वाजीकर, ७. वारी, ८. वारीकी, ९. वसोर या वरुड, १०. वाटी, ११. वावूरी, १२. वेदिया या वैजिया, १३. वेलदार, १४. भाटा, १५. भूमजी, १६. चचाटी १७. चमार, १८. चंडाल, १९. चेरुआ या छेलिया, २०. डंडसी, २१. देसुआभूमिज, २२. देवर, २३. धनवर, २४. धारुआ, २५. धोवा या धोवी, २६. डोम या डोम्वो, २७. दोसाध, २८. गंडा, २९. घनतरघड्डा या घन्तरा, ३०. घासी या घसिया, ३१. घोगिया, ३२. घुसुरिया, ३३. गोडागाली, ३४. गोडारी, ३५. गोडरा, ३६. गोरवा, ३७. गंजू या गुंजू, ३८. हड्डी या हडी या हरी, ३९. इरीका, ४०. जग्गली, ४१. कंदरा या कंदारा, ४२. करुआ, ४३. कटिया, ४४. केला, ४५. खडाला, ४६. डालो, ४७. कोरी, ४८. कुम्हार, ४९. कुरंगा, ५०. लवन, ५१. लाहेरी, ५२. मदारी, ५३. मडीगा, ५४ महुरिया, ५५. माला या झाला, ५६. मेंग, ५७. मंगन, ५८. मेहरा या महार, ५९. मेहतर या भंगी, ६०. मेंवर, ६१. मोची, ६२. मुंडपोत्ता, ६३. नगरची, ६४ पैडी, ६५. पेंढा, ६६.

पामिडी, ६७. पान या पानो, ६८. पंचम, ६९. पनिका, ७०. पंका, ७१. पंतंली, ७२. पाप, ७३. पासी, ७४. पतियल या पतिकर या पत्रतंती या पतुआ, ७५. प्रधान, ७६. रजना, ७७. रैली, ७८. सवकिया, ७९. समासी, ८०. सेनई ८१. सपारी, ८२. सतनामी, ८३. सिघरिया, ८४. सिंदुरिया, ८५. सियाल, ८६. सुकुली, ८७. तमदिया, ८८. तमुदिया, ८९. तियर या तुओर, ९०. तूरी, ९१. वालमीकि ।

पंजाब

पूरे राज्य में--

१. आदि धर्मी, २. बंगाली, ३. बरार, ४. बटवल, ५. वावरिया, ६. बाज़ीगर, ७. वालमीकि या चूरा, ८. भंजरा, ९. चमार, १०. चनल, ११. दागी, १२. धानक, १३. डुमना या महाशा, १४. गगरा, १५. गंधिला, १६. कवीरपंथी, १७. खटीक, १८. कोरी या कोली, १९. मरीजा या मरेचा, २०. मज़हबी, २१. मेघ, २२. नट, २३. ओद, २४. पासी, २५. परना, २६. फरेरा, २७. रामदासी या रविदासी, २८. सनहई, २९. सनहल, ३०. सांसी, ३१. संपेला, ३२. सरेरा, ३३. सिकलीगर, ३४. सिरकीबंद ।

उत्तर-प्रदेश

(क) पूरे राज्य में—

१. अगरिया, २. बादी ३. बधिक, ४. बहेलिया, ५. बैगा, ६. बैसवार, ७. बजनिया, ८. बजगी, ९. बलहर, १०. बालमीकि, ११. बंगाली, १२. बनमानुस, १३. बांसफोड़, १४. बरवर, १५. बसोर, १६. वावरिया, १७. बेलदार, १८. वेरिया, १९. भंटू, २०. भोकसा, २१. भुइया, २२. भुइयर, २३. बोरिया, २४. चमार, २५. चेरो, २६. दावगर, २७. धांगर, २८. धानुख, २९. धरकर, ३०. धोबी, ३१. धूसिया या झूसिया, ३२. डोम, ३३. डोगर, ३४. दुसाध, ३५. घरामी, ३६. घसिया, ३७. गुवाल, ३८. हबूरा, ३९. हरी, ४०. हेला, ४१. जाटव, ४२. कलाबाज़, ४३. कंजर, ४४. कपरिया, ४५. करवाल, ४६. खैराहा, ४७. खारोट, ४८.

खरवार (बेन वंसी को छोड़कर), ४९. कोल, ५०. कोरवा, ५१. लालबेगी, ५२. मझवर, ५३. नट, ५४. पंखा, ५५. परतिया, ५६. पासी, ५७. पतारी, ५८. रावत, ५९. सहरया, ६०. सनोरहिया, ६१. ससिया, ६२. शिल्पकर, ६३. तुरैहा।

(ख) बुंदेलखंड डिवीज़न और मिर्ज़ापुर जिले में कैमूर पहाड़ दक्षिण के भाग में--

गोंड़।

पश्चिम बंगाल

पूरे राज्य में—

१. बागडी, २. बहेलिया, ३. बैती, ४. बौरी, ५. बेदिया, ६. बेलदार, ७. भुईमाली, ८. भुइया, ९. भूमिज, १०. बिंड, ११. चमार, १२. धोबा, १३. दुआई, १४. डोम, १५. दुसाध, १६. घासी, १७. गोंरही, १८. हरी, १९. जलिया-कैबरता, २०. झालो मालो या मालो, २१. कायर, २२. कंदरा, २३. काओरा, २४. करेंगा, २५. कास्था, २६. कौर २७. खैरा, २८. खटीक, २९. कोच, ३०. कुनई, ३१. कोनवर, ३२. कोरा, ३३. कोतल, ३४. लालबेगी, ३५. लोधा, ३६. लुहार, ३७. महार, ३८. माहली, ३९. मल ४०, मल्लाह, ४१. मलपहरिया, ४२. मेहतर, ४३. मोची, ४४. मुसहर, ४५. नगेसिया, ४६. नाम सूद्र, ४७. नुनिया, ४८. पलिया, ४९. पन, ५०. पासी, ५१. पातनी, ५२. पोद, ५३. रामा, ५४ राजवशी, ५५ राजवर, ५६ सुनरी, ५७ तियर, ५८ तूरी।

हैदराबाद

पूरे राज्य में--

१. आनामुक, २. आर्य (माला), ३. अर्वा माला, ४. बेदा (बुडगा) जंगम, ५. बिंडला, ६. ब्यागरा, ७. चलवाड़ी, ८. चम्मार, ९. डक्कल (डक्कलवर), १०. ढोर, ११. एलामलवर, १२. होलया, १३. होलयादसारी, १४. कोलुपुलवंडलु, १५. मढीगा, १६. महार, १७. माला, १८. मालादसारी, १९. मात्राहन्नई, २०. माला जंगम, २१. माला मस्ती, २२. मालासाले (नेतकनी), २३. मालासंन्यासी, २४.

मेंग, २५. मेंगगारोदी, २६. मन्ने, २७. मस्ती, २८. मेहतर, २९. मिथाअय्यैलवर, ३०. मोची, ३१. समागर, ३२. सिंधोलू (चिंड़ोलू)।

मध्य भारत

पूरे राज्ज में—

१. बगरी या बगडी, २. बलई, ३. बराहर या बसोर, ४. बरगुंडा, ५. बेदिया, ६. भाम्बी, ७. भंगी या मेहतर, ८. चमार, ९. चियार, १०. धानुख, ११. कंजर १२. खटीक, १३. कोली, १४. महार, १५. मोची, १६. पारधी, १७. पासी, १८. सांसी।

मैसूर

पूरे राज्य में—

१. आदि द्रविड़, २. आदि कर्नाटक, ३. बंजारा या लंबानी, ४. मोवी, ५. कोरचा, ६. कोरमा।

पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य संघ

पूरे राज्य में—

१. आदि धर्मी, २. बंगाली, ३. बरार, ४. बटवल, ५. बावरिया, ६. बाजीगर, ७. वालमीकी या चूरा, ८. भांजरा, ९. चमार, १०. चनाल, ११. दागी, १२. धानक, १३. डुमना या महाशा, १४. गगरा, १५. गंधिला, १६. कबीरपंथी, १७. खटीक, १८. कोरी या कोली, १९. मरीजा या मरेचा, २०. मजहबी, २१. मेघ २२. नट, २३. ओद, २४. पासी, २५. परना, २६. फेरा, २७. रामदासी या रविदासी, २८. सनहई, २९. सनहल, ३०. सांसी, ३१. सपेला, ३२. सरेरा, ३३. सिकलीगर, ३४. सिकरीबंद।

राजस्थान

पूरे राज्य में—

१. आदि धर्मी, २. अहेरी, ३. बाजी, ४. बगरी, ५. बाजगर, ६. बासफोड़, ७. बारगी, ८. बावरिया, ९. भांड़, १०. भगी, ११. बिडकिया, १२. चमार,

चूरा, १४. दावगर, १५. धानकिया, १६. घेड़ा, १७. डोम, १८. गंडियां, १९. गरांचा, मेहतर, २०. गोधी, २१. जटिया, २२. कलवेलिया, २३. कापाडिया सांसी, २४. खंगार, २५. खटका, २६. कूचबंद, २७. कोरिया, २८. कंजर, २९. मदारी (वाजीगर), ३०. मम्कहवी, ३१. मेहार, ३२. मेहतर, ३३. मोची, ३४. नट, ३५. पासी, ३६. रायगर, ३७. रामदसिया, ३८. रावल, ३९. सरभंगी, ४०. सिंगीवाला, ४१. सांसी, ४२. थोरी, ४३. तिरगर, ४४. वालमीकि ।

सौराष्ट्र

पूरे राज्य में—

१. वावा (घेध), २. भंगी, ३. चमाडिया, ४. चमार, ५. दंगगनशिया, ६. गारोद, ७. गारमतंग, ८. हादी, ९. मेघवल, १०. सेनवा, ११. शेमलिया, १२. थोरी, १३. तूरी, १४. तूरी वारौत, १५. वनकर ।

त्रावनकोर कोचीन

पूरे राज्य में—

१. अय्यैनवर, २. भरतार, ३. चक्किलियन, ४. डॉवन, ५. इरावलन, ६. कक्कलन, ७. कन्नकन, ८. कवर, ९. कूटन (कूदन), १०. कुरावन, ११. मन्नन, १२. नयादि, १३. पदन्नन, १४. पल्लन, १५. पल्लुवन, १६. पनन, १७. परवन, १८. परयन, (संववर), १९. पथियन २०. परुमन्नन, २१. पुलयन, २२. थन्दन, २३. उल्लदन, २४. उरली, २५. वल्लन, २६. वल्लुवन, २७. वन्नन, २८. वेलन, २९. वेतन, ३०. वेत्तुवन ।

पच्चीसवां अध्याय

राज-भाषा

(Official Language)

संविधान में संघ तथा राज्यों की राजभाषा के सम्बन्ध में विस्तृत उपबन्ध दिये गये हैं। विधान निर्माताओं ने इस बात को महसूस किया कि अंग्रेज़ी भाषा का एकदम त्याग करना ठीक नहीं था। साथ ही कुछ कार्यों के लिये कुछ समय तक रखना आवश्यक भी था। इसीलिये राजभाषा सम्बन्धी उपबन्ध कुछ उलझे हुए मालूम होते हैं।

संघ की भाषा (Language of the Union)—संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय कार्यों के लिये प्रयोग होनेवाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा (अर्थात् 1, 2, 3, 4, इत्यादि।)

इन उपबन्धों के रहते हुए संविधान के प्रारम्भ से १५ वर्ष तक संघ के उन सब कामों के लिये अंग्रेज़ी भाषा का उपयोग होगा, जिनके लिये संविधान के प्रारम्भ के ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

लेकिन राष्ट्रपति इस अवधि में आदेश द्वारा, संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिये अंग्रेज़ी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग करने का अधिकार दे सकेगा।

इस अनुच्छेद के इन उपबन्धों के रहते हुए १५ वर्ष के बाद संसद कानून द्वारा अंग्रेज़ी भाषा का अथवा अंकों के देवनागरी रूप का विशिष्ट कार्यों के लिये उपयोग का अधिकार दे सकती है।

प्रादेशिक भाषाएं (Regional Languages)—किसी राज्य का विधानमंडल विशिष्ट कार्यों के लिये एक अथवा एक से अधिक भाषाओं को अथवा

हिन्दी को राज्य की राजभाषा मान सकता है। जब तक राज्य का विधानमंडल अन्यथा निर्धारित न करे, तब तक अंग्रेजी भाषा का उपयोग उन राजकीय कार्यों के लिये होता रहेगा, जिनके लिये उसका उपयोग संविधान प्रारम्भ होने के ठीक पहले होता था।

संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये जिस भाषा का फिलहाल उपयोग होता है, उसी का उपयोग राज्यों की पारस्परिक तथा संघ और राज्यों की पारस्परिक लिखा-पढ़ी के लिये होगा। लेकिन आपस में समझौता द्वारा दो या दो से अधिक राज्य पारस्परिक व्यवहार की भाषा हिन्दी भाषा बना सकते हैं।

किसी राज्य के अल्पसंख्यकों के लिये विशेष उपबन्ध बनाये गये हैं। यदि राज्य में ऐसे अल्पसंख्यकों की संख्या काफी है और यदि राष्ट्रपति इस बात से संतुष्ट है कि ये वर्ग अपनी भाषा को भी राजकीय भाषा पूरे राज्य में अथवा उसके एक भाग में बनाना चाहते हैं, तो राष्ट्रपति राज्य को इस आशय का आदेश दे सकता है। उसके बाद राज्य उन क्षेत्रों में आदेश में बतलाये हुए विषयों के लिये उस भाषा का प्रयोग स्वीकार करेगा।

उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों इत्यादि की राजभाषा (Official Language of the Supreme Court, High Courts etc.)—जब तक संसद कानून द्वारा अन्यथा निर्धारित न करे, तब तक उच्चतम न्यायालय तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय की सब कार्यवाहियाँ तथा केन्द्रीय और राज्य के विधानमंडलों के विधेयकों, कानूनों, आदेशों, नियमों का पाठ तथा अध्यादेशों का पाठ अंग्रेज़ी भाषा में होगा। किसी राज्य का राज्यपाल अथवा राज्यप्रमुख राष्ट्रपति की अनुमति से उच्च न्यायालय की कार्यवाही राज्य की राजभाषा में होने की अनुमति दे सकता है, लेकिन उच्च न्यायालय का फैसला, डिगरी या आदेश के सम्बन्ध में नहीं। यदि किसी राज्य का विधानमंडल विधेयकों, कानूनों, नियमों तथा आदेशों के लिये अंग्रेज़ी के बदले अन्य कोई भाषा निर्धारित करता है, तो उनका अंग्रेज़ी भाषा में राज्यपाल या राज्यप्रमुख द्वारा अधिकृत अनुवाद ही अधिकृत पाठ समझा जायगा।

ऊपर के पैराग्राफ में दिये गये प्रयोजनों के सम्बन्ध में कोई भी विधेयक या संशोधन संविधान प्रारम्भ होने के १५ वर्ष के भीतर राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना पेश नहीं किया जा सकता और राष्ट्रपति अपनी अनुमति भाषा आयोग तथा संसद द्वारा नियुक्त समिति की सिफारिशों पर विचार किये बिना नहीं देगा (आगे देखो)।

भाषा आयोग और संसदीय समिति (The Language Commission and the Parliamentary Committee)—संविधान प्रारम्भ होने के ५ वर्ष बाद और उसके बाद १० वर्ष बाद एक आयोग नियुक्त करेगा, जो निम्नलिखित विषयों पर सिफारिशें करेगा—(१) संघ के राजकीय कार्यों में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग; (२) संघ के कुछ अथवा सब कार्यों में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग कम करना; (३) उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय, विधानमंडलों इत्यादि में राजकीय भाषा; (४) संघ में कुछ अथवा विशिष्ट कार्यों के लिये प्रयोग किये जानेवाले अंकों का रूप; (५) संघ की भाषा; राज्यों के आपसी व्यवहार की भाषा अथवा संघ और राज्यों के पारस्परिक व्यवहार की भाषा के सम्बन्ध में राष्ट्रपति जो प्रश्न आयोग के सामने रखे। आयोग का एक सभापति तथा अन्य सदस्य रहेंगे। सदस्य निम्नलिखित भाषाओं के प्रतिनिधि होंगे—आसामी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, काश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तामिल, तेलेगू और उर्दू।

संसद के ३० सदस्यों की एक समिति बनेगी। इसमें से २० सदस्य लोक-सभा से होंगे और १० राज्य-परिषद् के। यह समिति भाषा आयोग की सिफारिशों पर राष्ट्रपति के सामने अपना मत रखेगी। इस मत पर विचार करके राष्ट्रपति आयोग की पूरी रिपोर्ट अथवा उसके कुछ अंश पर अपने आदेश देगा। संविधान में संघ की राजकीय भाषा के सम्बन्ध में जो आदेश दिये गये हैं, उन्हें राष्ट्रपति व्यवहार में परिवर्तित कर सकता है।

विशेष आदेश (Special Directives)—संविधान में यह आदेश दिया गया है कि संघ अथवा किसी भी राज्य में प्रयोग होनेवाली भाषा के सम्बन्ध में यदि किसी व्यक्ति को कोई शिकायत करनी है तो, वह संघ अथवा राज्य के उपयुक्त अधिकारी से कर सकता है।

संविधान में यह आदेश दिया गया है कि संघ को हिन्दी की उन्नति और विकास का प्रयत्न करना चाहिये, जिससे संघ के सब भागों के लोग उसका प्रयोग कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हिन्दी में हिन्दुस्तानी तथा निम्नलिखित भारतीय भाषाओं के शब्दों का समावेश करके उसका शब्द-भंडार बढ़ाया जायगा —आसामी, बंगाली, गुजराती, पंजाबी, संस्कृत, तामिल, तेलेगू और उर्दू। हिन्दी का शब्द-भंडार प्रथम तो संस्कृत और दूसरे ऊपर कही हुई अन्य भाषाओं से बढ़ाया जायगा।

———

छब्बीसवां अध्याय

लोक-सेवा-आयोग

(Public Service Commission)

लोक-सेवा-आयोग प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली के आवश्यक अंश होते हैं। न्याय-पालिका और लेखा-परीक्षा (Audit) की तरह लोक-सेवा-आयोग भी शासन की कार्यक्षमता तथा शुद्धता बनाये रखने में सहायक होते हैं।

संविधान के अनुसार संघ के लिये और प्रत्येक स्वायत्तपूर्ण राज्य के लिये एक-एक लोक-सेवा-आयोग होगा। दो अथवा दो से अधिक राज्य आपस में समझौता करके एक संयुक्त लोक-सेवा-आयोग रख सकते हैं, और यदि उनके विधानमंडल इस आशय का प्रस्ताव पास करें तो संसद इस प्रकार का संयुक्त लोक-सेवा-आयोग बनने की इजाजत दे सकती है। संघ के लोक-सेवा-आयोग तथा संयुक्त लोक-सेवा-आयोग के सदस्यों की संख्या राष्ट्रपति निर्धारित करेगा। राज्यों के लोक-सेवा-आयोग के सदस्यों की संख्या राज्यपाल अथवा राजप्रमुख निश्चित करेंगे। जहां तक सम्भव हो, वहां तक प्रत्येक लोक-सेवा-आयोग के कम-से-कम आधे सदस्य ऐसे होंगे, जो अपनी नियुक्ति के समय कम-से-कम १० वर्ष तक संघ-सरकार अथवा किसी राज्य-सरकार के अन्तर्गत नौकरी कर चुके हों।

लोक-सेवा-आयोग के किसी सदस्य का कार्यकाल ६ वर्ष होगा अथवा संघ के लोक-सेवा-आयोग का सदस्य ६५ वर्ष की आयु तक और राज्य तथा संयुक्त आयोग का सदस्य ६० वर्ष की आयु तक अपने पद पर रहेगा। इन दोनों प्रकार की शर्तों में से जो भी पहले पूरी हो जायगी, वही मान्य होगी।

लोक-सेवा-आयोग का कोई भी सदस्य अपने पद से स्तीफा दे सकता है। दुराचार के आधार पर राष्ट्रपति उसे पदच्युत कर सकता है। लेकिन ऐसा तभी हो सकता है, जब राष्ट्रपति पहले उच्चतम न्यायालय में उसके विरुद्ध शिकायत करे और उच्चतम न्यायालय जांच करके उसके पदच्युत किये जाने की सिफारिश करे। लेकिन लोक-सेवा-आयोग का कोई सदस्य—(१) यदि दिवालिया हो जाता है, या (२) उस पद पर रहते हुए कोई अन्य वेतनभोगी कार्य करता है, अथवा (३) यदि राष्ट्रपति की राय में वृद्धावस्था अथवा शरीर या दिमाग़ की कमज़ोरी के कारण उस पद पर रहने के अयोग्य है, तो राष्ट्रपति उसे पदच्युत कर सकता है।

अपने पद की अवधि समाप्त होने पर लोक-सेवा-आयोग का कोई सदस्य फिर से उस पद पर नियुक्त नहीं हो सकता। संघ-लोक-सेवा-आयोग का सभापति अपना कार्यकाल समाप्त होने पर केन्द्रीय अथवा राज्य शासन में फिर किसी पद पर नहीं रह सकता। संघ आयोग के अन्य सदस्य तथा राज्यों के आयोगों के सदस्य और सभापति अपना कार्यकाल समाप्त होने पर केवल लोक-सेवा-आयोगों के सदस्य और सभापति नियुक्त हो सकते हैं, किसी अन्य सरकारी पद पर नियुक्त नहीं हो सकते। यह निर्धारित कर दिया गया है, कि अपना कार्यकाल समाप्त करने पर संघ आयोग का कोई सदस्य (सभापति के सिवा)—(१) केवल संघ आयोग अथवा राज्य आयोग का सभापति हो सकता है ; (२) राज्य आयोग के सभापति को छोड़कर अन्य कोई सदस्य केवल संघ आयोग का सभापति अथवा सदस्य हो सकता है, अथवा अपने या अन्य किसी राज्य के आयोग का सभापति हो सकता है ; (३) किसी राज्य के आयोग का सभापति केवल संघ के आयोग का सभापति या सदस्य हो सकता है, अथवा किसी अन्य राज्य के आयोग का सभापति हो सकता है। संघ तथा राज्यों के आयोगों का प्रधान कार्य संघ और राज्यों की सरकारी नौकरियों के लिये परीक्षाएं कराना होगा। व्यवहार नौकरियों

(Civil Services) और पदों के सम्बन्ध में संघ तथा राज्यों के आयोगों की राय निम्नलिखित बातों में अवश्य ली जायगी--नियुक्ति के तरीके, नियुक्ति, पदोन्नति और स्थानान्तर के सिद्धान्त, आचरण सम्बन्धी बातें, अंगहानि अथवा न्यायालय में पैरवी करने के सम्बन्ध में उचित मुआवजा और अधिकार। अन्य नौकरियों के सम्बन्ध में जिनमें अखिल भारतीय नौकरियां भी शामिल हैं, राष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा राजप्रमुख अपने-अपने क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में नियम बना सकते हैं, कि अमुक बातों में अथवा अमुक प्रकार की नौकरियों के सम्बन्ध में लोक-सेवा-आयोग की राय लेनी आवश्यक नहीं है। ये सब नियम संसद या राज्य के विधानमंडलों के सामने रखे जायँगे और वे उनमें परिवर्त्तन कर सकते हैं अथवा उन्हें रद्द कर सकते हैं।

संघ, राज्य तथा संयुक्त आयोग अपने कार्यों का वार्षिक विवरण राष्ट्रपति, राज्यपाल या राजप्रमुख के सामने रखेंगे। यदि कुछ बातों में इन आयोगों की सिफारिशें स्वीकृत नहीं हुई हैं, तो अस्वीकृति का कारण बतलाते हुए ये विवरण उपयुक्त विधानमंडलों के सामने पेश किये जा सकते हैं।

———

सत्ताईसवाँ अध्याय

स्वायत्तपूर्ण राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों का शासन और नियंत्रण

(The Administration and Control of the Scheduled Areas and the Scheduled Tribes in the Autonomous States)

संविधान की पांचवी अनुसूची में स्वायत्त्वपूर्ण राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के शासन सम्बन्धी उपबन्ध दिये गये हैं। लेकिन ये उपबन्ध आसाम के जनजाति क्षेत्रों में लागू नहीं होंगे। इन क्षेत्रों के लिये छठवीं अनुसूची में विशेष उपबन्ध दिये गये हैं।

अनुसूचित जनजातियां और अनुसूचित क्षेत्र (The Scheduled Tribes and the Scheduled Areas)—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, :वे जातियां जनजातियां कही जावेंगी, जिन्हें राष्ट्रपति किसी राज्य की जनजातियां घोषित करेगा।

इसी प्रकार राष्ट्रपति एक आदेश द्वारा अनुसूचित क्षेत्र घोषित करेगा। केवल राष्ट्रपति इस प्रकार के आदेश में परिवर्तन कर सकता है और परिवर्तन सम्बन्धी उसकी शक्तियां निम्नलिखित बातों तक सीमित होंगी—(१) वह यह घोषणा कर सकता है कि अमुक अनुसूचित क्षेत्र अब अनुसूचित क्षेत्र नहीं रहेगा। (२) वह किसी अनुसूचित क्षेत्र की सीमाएं दुरुस्त कर सकता है। (३) यदि संघ में कोई नया राज्य शामिल होता है, अथवा यदि किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन होता है, तो उस राज्य में जो नये क्षेत्र शामिल होंगे, उनको या उनके कुछ भागों को वह अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर सकता है।

अनुशासित क्षेत्रों का शासन राज्य की कार्यपालिका के हाथों में रखा गया है और इस सम्बन्ध में वह संघ की कार्यपालिका के नियंत्रण में रहेगी। राज्यपाल

अथवा राजप्रमुख को अनुसूचित क्षेत्रों के सुशासन और सुरक्षा के लिये नियम बनाने का अधिकार प्राप्त है और इसके लिये वह इन क्षेत्रों में लागू होनेवाले संघ या राज्य के कानूनों में परिवर्तन कर सकता है। लेकिन इन नियमों को जब तक राष्ट्रपति की अनुमति नहीं मिल जायगी तब तक वे मान्य नहीं समझे जायँगे। अनुसूचित क्षेत्रों के शासन के सम्बन्ध में संघ की कार्यपालिका को राज्यों को आदेश देने का अधिकार भी है। अनुसूचित क्षेत्रों के लिये शासन सम्बन्धी नियम बनाने के पहिले गवर्नर के लिये जनजाति सलाहकार समिति (Tribes Advisory Council) की सलाह लेनी आवश्यक है। अनुसूचित क्षेत्रों के शासन के सम्बन्ध में राज्यपाल अथवा राजप्रमुख को प्रति वर्ष एक रिपोर्ट राष्ट्रपति के पास अथवा राष्ट्रपति द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति के पास भेजनी पड़ती है।

इस बात को स्पष्टरूप से ध्यान में रखना चाहिये कि अनुसूचित क्षेत्रों का शासन करने में साधारणतः राज्यपाल को स्वेच्छापूर्वक नहीं, बल्कि मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करना पड़ेगा।

जनजाति सलाहकार समिति (The Tribes Advisory Council)—जिन राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र रहेंगे, उनमें से प्रत्येक में एक जनजाति सलाहकार समिति स्थापित की जायगी। साथ ही यदि राष्ट्रपति आदेश दे तो उन राज्यों में भी ऐसी समितियां स्थापित की जायँगी, जिनमें अनुसूचित क्षेत्र तो नहीं हैं, पर अनुसूचित जातियां हैं। समिति में २० से अधिक सदस्य न होंगे और उनमें से यथासम्भव लगभग तीन-चौथाई सदस्य राज्य की विधान-सभा में अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधि होंगे। यदि विधान-सभा में जनजातियों के प्रतिनिधियों की संख्या उतनी नहीं है, जितने स्थान हैं तो बाकी स्थान उन्हीं जनजातियों के प्रतिनिधियों द्वारा भरे जायँगे। इस समिति का काम राज्यपाल अथवा राजप्रमुख को जनजातियों के लिये उन कल्याणकारी कार्यों के सम्बन्ध में सलाह देना होगा, जो उसके पास राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा भेजे जायँ।

इस समिति के सदस्यों की संख्या राज्यपाल निश्चित करेगा। वही सदस्यों की तथा सभापति की नियुक्ति सम्बन्धी नियम बनावेगा और कार्यप्रणाली के नियम भी वही बनावेगा।

संशोधन (Amendment)—ऊपर के सब उपबन्धों में संशोधन करने का अधिकार संसद को है। इन उपबन्धों के संशोधन के लिये संविधान संशोधन सम्बन्धी अनुच्छेद ३६८ में दिये गये उपबन्धों और प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अर्थात् ये उपबन्ध संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधित किये जा सकते हैं।

जनजातियों के लिये विशेष उपबन्ध (Special Provisions For the Tribal People)—पाठकों की सुविधा के लिये यहां उन सब उपबन्धों का सिंहावलोकन किया जाता है, जो संविधान में भारत की जनजातियों के सम्बन्ध में दिये गये हैं।

संविधान ने राष्ट्रपति को अनुसूचित क्षेत्र और अनुसूचित जनजातियां घोषित करने का अधिकार दिया है। इन क्षेत्रों और इन जातियों के सुशासन, उन्नति तथा शान्ति और सुरक्षा के लिये संविधान में बहुत से विशेष उपबन्ध बनाये गये हैं। अनुसूचित क्षेत्रों के शासन के सम्बन्ध में जो उपबन्ध बनाये गये हैं, उनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। आसाम की जनजातियों के क्षेत्रों के शासन के सम्बन्ध में जो उपबन्ध बनाये गये हैं, उनका वर्णन आगे दिया गया है। इनके सिवा संविधान में अनुसूचित क्षेत्रों तथा अनुसूचित जनजातियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित विशेष उपबन्ध दिये गये हैं—

एक तो संविधान में आसाम की अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधियों के लिये लोक-सभा में स्थान सुरक्षित रखे गये हैं। इनमें उन क्षेत्रों की अनुसूचित जनजातियां शामिल नहीं हैं, जो स्वायत्तपूर्ण जिलों में शामिल नहीं है। फिर स्वायत्तपूर्ण राज्यों की विधान-सभाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिये स्थान सुरक्षित रखे गये हैं। इसमें आसाम के वे अनुसूचित क्षेत्र-शामिल नहीं हैं, जो स्वायत्तपूर्ण जिलों के बाहर हैं। अनुसूचित जातियों के लिये स्थान सुरक्षित रखने के ये उपबन्ध संविधान प्रारम्भ होने से १० वर्ष बाद समाप्त हो जायँगे।

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति स्वायत्तपूर्ण राज्यों को अनुसूचित जनजातियों के लिये कल्याणकारी योजनाएं कार्यान्वित करने के आदेश दे सकता है। इन जातियों के लिये केन्द्र जिन कल्याणकारी योजनाओं को स्वीकार करे, उनके

कार्यान्वित होने के लिये वह स्वायत्तपूर्ण राज्यों को सहायक अनुदान भी देगा। राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों के शासन की सतह को अन्य क्षेत्रों के शासन की सतह के बराबर उठाने के लिये केन्द्र द्वारा जो योजनाएं स्वीकृत होंगी, उनमें भी केन्द्र अनुदान देगा। आसाम के स्वायत्तपूर्ण जिलों को भी केन्द्र सहायक अनुदान देगा, जिसमें उन जिलों के शासन की सतह शेष जिलों के शासन की सतह के बराबर उठ सके। फिर संविधान प्रारम्भ होने के ठीक २ वर्ष पहले आसाम में आय से अधिक जो खर्च स्वायत्तपूर्ण जिलों के शासन पर होता था। उसके बराबर रकम भी केन्द्र आसाम को देगा।

संविधान में कहा गया है कि बिहार, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा में से प्रत्येक राज्य में एक मंत्री केवल जनजातियों के कल्याण-कार्य के लिये रहेगा।

राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी समय एक आयोग नियुक्त कर सकता है, जो स्वायत्तपूर्ण राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों तथा अनुसूचित जनजातियों के शासन के सम्बन्ध में रिपोर्ट तैयार करेगा। राष्ट्रपति एक विशेष अधिकारी की भी नियुक्ति करेगा, जो इस बात की जांच करेगा कि अनुसूचित जनजातियों (तथा अनुसूचित जातियों) को संविधान में जो संरक्षण दिये गये हैं, उन पर किस प्रकार अमल हो रहा है।

आसाम के जनजाति क्षेत्रों का शासन (Administration of the Tribal Areas in Assam) – संविधान की छठवीं अनुसूची में आसाम की जनजातियों के क्षेत्रों के शासन के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध दिये गये हैं। आसाम की जनजातियों तथा शेष देश की अन्य जनजातियों में जो भेद किया गया है, उसका कारण यह है कि संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से आसाम की जनजातियां देश की अन्य जनजातियों से बिलकुल भिन्न हैं। देश के अन्य भागों में जो जनजातियां हैं, वे संस्कृति इत्यादि की दृष्टि से लगभग हिन्दू ही हैं। लेकिन आसाम की जनजातियां ऐसी नहीं हैं। उनकी अपनी संस्कृति है। आसाम के जनजाति क्षेत्र दो भागों में बांटे गये हैं—पहला (क) और दूसरा (ख) भाग।

भाग (क) में निम्नलिखित जनजाति क्षेत्र शामिल हैं—(१) संयुक्त खासी-जयन्तिया पहाड़ी जिला, (२) गारो पहाड़ी जिला, (३) लुसाई पहाड़ी जिला,

(४) नागा पहाड़ी जिला, (५) उत्तरी कछार पहाड़ियां, (६) मिकिर पहाड़ियां। ये स्वायत्तपूर्ण जिले कहलावेंगे। आन्तरिक मामलों में इन्हें काफी स्वतन्त्रता दी गई है। इन जिलों में राज्यपाल इन क्षेत्रों की सीमाएं निर्धारित करेगा। वह किसी क्षेत्र को घटा या बढ़ा सकता है तथा नया स्वायत्तपूर्ण जिला बना सकता है। यदि किसी जिले में कई अनुसूचित जनजातियां हैं, तो राज्यपाल उन क्षेत्रों को कई स्वायत्तपूर्ण क्षेत्रों में बांट सकता है। प्रत्येक स्वायत्तपूर्ण जिले में एक जिला-समिति (District Council) होगी। इस समिति में २४ से अधिक सदस्य नहीं होंगे और उनमें से कम से कम तीन चौथाई वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होंगे। इसी प्रकार क्षेत्रीय समितियां (Regional Council) होंगी और उन्हें स्थानीय समितियां (Local Council or Boards) स्थापित करने का अधिकार होगा। जिला और क्षेत्रीय समितियों को कानून बनाने के विस्तृत अधिकार दिये गये हैं। अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत ये समितियां निम्नलिखित विषयों पर कानून बना सकती हैं—भूमि का उपयोग और स्वामित्व, अरक्षित जंगलों का प्रबन्ध, ग्रामों और कस्बों का शासन, इसमें पुलिस सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफाई शामिल होगी। कृषि के लिये नहरों का उपयोग ; चल कृषि का नियंत्रण ; ग्राम-पंचायतों और कस्बा समितियों की स्थापना और उनके अधिकार ; प्रधानों (Chiefs) की नियुक्ति और उत्तराधिकार ; सम्पत्ति का उत्तराधिकार ; विवाह और सामाजिक प्रथाएं। लेकिन ये सब कानून राज्यपाल की अनुमति के लिये भेजे जायँगे और जब तक वह उन्हें अनुमति न दे दे, तब तक वे मान्य न होंगे। अन्य बातों के सम्बन्ध में राज्यपाल को यह अधिकार होगा कि वह केन्द्र अथवा राज्य के बनाये हुए कानूनों में परिवर्तन कर सकेगा, जिससे वे स्वायत्तपूर्ण जिलों और प्रदेशों या क्षेत्रों (Regions) में लागू हो सकें।

जिला तथा क्षेत्रीय समितियों को कर लगाने का अधिकार भी होगा। अपने-अपने क्षेत्राधिकार में जिला तथा क्षेत्रीय समितियां भूमि-कर या लगान, मकानों पर कर तथा व्यक्तियों पर कर लगा सकती हैं और उन्हें वसूल कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त जिला-समितियों को जिले में निम्नलिखित कर लगाने और वसूल

करने के भी अधिकार होंगे—पेशों, व्यवसाय और सेवाओं पर; सवारियों और नौकाओं पर, वाज़ार में आनेवाले माल पर; नौका यातायात पर; शिक्षालय, अस्पताल और सड़कों के लिये कर।

स्वायत्तपूर्ण जिलों में न्याय-शासन के सम्वन्ध में राज्यपाल जिला-समितियों या क्षेत्रीय समितियों को अथवा इन संस्थाओं द्वारा स्थापित अन्य संस्थाओं को सन् १९०८ की व्यवहार संहिता और सन् १८९८ की दंड संहिता के अन्तर्गत मुकदमा करने और दंड देने के अधिकार दे सकता है। जिला समितियां तथा क्षेत्रीय समितियां, ग्राम पंचायतें या ग्राम अदालतें स्थापित कर सकती हैं और इनके फैसलों के विरुद्ध अपील हो सकेगी।

भाग (ख) इसमें आदिम जातियों के निम्नलिखित सीमान्त-क्षेत्र शामिल हैं—(१) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त इलाका, जिसमें वालपारा सीमान्त इलाका, तिराप सीमान्त इलाका, अवोर पहाड़ी जिला, और मिसिम पहाड़ी जिला भी शामिल हैं और (२) नगा आदिम जाति क्षेत्र।

ये सव ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें अभी तक प्रायः स्थायी शासन नहीं है। इनमें कुछ भाग तो ऐसे हैं, जहां अभी तक कोई सरकारी अधिकारी नहीं पहुंचा है। नगा आदिम जाति क्षेत्रों में अभी तक नरमेध होता है। इसीलिये इन क्षेत्रों को कुछ समय तक केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत रखना उचित समझा गया है। संविधान में कहा गया है, कि इन क्षेत्रों का शासन राष्ट्रपति आसाम के राज्यपाल के जरिये करेगा; राज्यपाल उसका एजेंट होगा। राष्ट्रपति के एजेंट की हैसियत से राज्यपाल इन क्षेत्रों का शासन स्वेच्छापूर्वक करेगा। अर्थात् उसे मंत्रि-परिषद् की सलाह लेने की आवश्यकता नहीं है। राज्यपाल जव उचित समझे, तव वह राष्ट्रपति की सम्मति से इन क्षेत्रों में स्वायत्तपूर्ण जिलों में लागू होनेवाले कोई भी उपवन्ध लागू कर सकता है।

अट्ठाईसवां अध्याय

संक्रमणकालीन उपबन्ध तथा केन्द्र और राज्यों में वर्त्तमान सरकारें

(Transitional Provisions and the Present Government at the Centre and the States)

अनुच्छेद ३६९ से ३९२ में अस्थायी और संक्रमणकालीन उपबन्धों का वर्णन है। उनका उद्देश्य यह है, कि देश में निर्वाचनों तक केन्द्र तथा राज्यों में वही सरकारें रहेंगी, जो संविधान प्रारम्भ होने के पहले थीं। १५ अगस्त सन् १९४७ से अर्थात् जिस दिन भारत स्वतन्त्र हुआ, २६ जनवरी सन् १९५० तक, अर्थात् जिस दिन नया विधान प्रारम्भ हुआ, भारत का शासन सन् १९३५ के शासन-कानून के परिवर्तित रूप के आधार पर होता था।

केन्द्रीय सरकार—केन्द्र में एक राष्ट्रपति है, जो विधान-सभा (Constituent Assembly) द्वारा अनुच्छेद ३८० के अन्तर्गत चुना गया था। केन्द्र में एक विधामंडल है, जो अस्थायी संसद है। संसद और विधान-सभा एक ही संस्था थी। इसके सदस्य पहले राज्यों के विधानमंडलों के भी सदस्य थे। उनकी जगह नये सदस्य चुने गये (अनु० ३७९)। मंत्रि-परिषद् वही रही, जो संविधान प्रारम्भ होने के पहले थी (अनु० ३८१)। संघ न्यायालय उच्चतम न्यायालय हो गया। लेकिन केन्द्र की वर्त्तमान सरकार नये विधान के उपबन्धों के अनुसार काम कर रही है।

राज्यों की सरकारें—प्रथम अनुसूची के भाग (क) के राज्यों में कार्यपालिका के प्रधान राज्यपाल होंगे। ये वही प्रधान हैं, जो संविधान प्रारम्भ होने के पहले इन राज्यों में इस पद पर थे। मंत्रि-परिषदें भी वही रहीं। विधानमंडल भी वही रहे, जो संविधान प्रारम्भ होने के पहले बने थे। बिहार, बम्बई, मद्रास और उत्तर-प्रदेश में विधानमंडलों में दो सदन हैं; अन्य राज्यों में केवल एक सदन के

राज्य	के लिये स्थान		
	मुसलमान	एंग्लो इंडियन	भारतीय ईसाई
१	१६	१७	१८
आसाम	...	....	...
विहार	१	...	...
वम्वई	१	...	...
मध्य-प्रदेश	...	...	...
मद्रास	१	...	१
उड़ीसा	..	...	...
पंजाव	..	...	...
उत्तर-प्रदेश	२	...	...
पश्चिम वंगाल	१	१	...

विधानमंडल हैं। लेकिन ये सब संस्थाएं और प्राधिकारी नये संविधान के अनुसार कार्य कर रहे हैं।

प्रथम अनुसूची के भाग (ख) के प्रत्येक राज्य में (विन्ध्य-प्रदेश को छोड़कर) एक राजप्रमुख है। उसकी स्थिति, कर्त्तव्य और अधिकार वही हैं, जो प्रथम अनुसूची के भाग (क) के राज्यों में राज्यपालों के हैं।

हैदराबाद में निज़ाम तथा मैसूर और काश्मीर में उन रियासतों के राजा ही राजप्रमुख हैं। इनमें से कुछ में विधानमंडल हैं तथा सबमें मंत्रि-परिषदें हैं। संविधान प्रारम्भ होने के कुछ दिन पहले विन्ध्य-प्रदेश केन्द्र द्वारा शासित राज्य बना दिया गया। इन राज्यों की सरकारें भी इस समय नये संविधान के अनुसार कार्य कर रही हैं।

प्रथम अनुसूची के भाग (ग) के राज्यों का शासन केन्द्र द्वारा होता है।

संविधान के अन्तर्गत पहिले के उच्च न्यायालय तथा अधीन न्यायालय भी काम कर रहे हैं। राज्यों में उच्च न्यायालयों के सिवा दंड और व्यवहार के अधीन न्यायालय भी हैं। प्रत्येक जिले में एक व्यवहार न्यायालय है, जिला न्यायाधीश उसका प्रधान होता है; उसके अतिरिक्त सहायक और अधीन न्यायाधीश भी होते हैं। उनको प्रारम्भिक तथा अपील दोनों प्रकार के अधिकार होते हैं। वे मुंसिफों द्वारा किये गये मुकदमों की अपील सुनते हैं। प्रत्येक सबडिवीज़न में तथा कुछ चौकियों में मुंसिफ की अदालत है। दंड के लिये प्रायः प्रत्येक जिले में एक सेशन न्यायालय है। सेशन अदालत कोई भी दंड दे सकती है, लेकिन जब वह मृत्यु दंड देती है, तो उसकी स्वीकृति या अनुमोदन उच्च न्यायालय द्वारा भी होना चाहिये। सेशन अदालत के न्यायाधिकारी सेशन जज और अतिरिक्त सेशन जज होते हैं। दंड सम्बन्धी महत्वपूर्ण मुकदमों में जूरी और असेसर न्यायाधिकारियों की सहायता करते हैं। सेशन अदालत के अधीन कई प्रकार के न्यायाधिकारियों की अदालतें होती हैं।

राज्यों की विधान-परिषदों में स्थानों की सूची (संक्रमणकालीन)

Table of Seats—State Legislative Councils (Transitional)

राज्य	स्थानों की कुल संख्या	साधारण स्थान	मुसलमानों के लिये स्थान	भारतीय ईसाइयों के लिये स्थान	विधान-सभा द्वारा भरे जानेवाले स्थान	राज्यपाल द्वारा भरेजानेवाले स्थान
१	२	३	४	५	६	७
बिहार	२८ से कम नहीं २९ से अधिक नहीं	९	४	...	१२	८ से कम नहीं १० से अधिक नहीं
बम्बई	२८ से कम नहीं २९ से अधिक नहीं	२०	५	...	...	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं
मद्रास	५३ से कम नहीं ५५ से अधिक नहीं	३५	७	३	...	८ से कम नहीं १० से अधिक नहीं
उत्तर-प्रदेश	५७ से कम नहीं ५९ से अधिक नहीं	३४	१७	...	...	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं

उन्तीसवाँ अध्याय

उपसंहार में कुछ विचार

(A Few Concluding Observations)

यद्यपि भारत के संविधान का रूप संघ-प्रणाली का है, परन्तु उसमें स्थानीय स्वायत्त की अपेक्षा केन्द्रीयकरण पर अधिक ज़ोर दिया गया है। संविधान निर्माताओं का विचार यह रहा होगा कि देश में एक मज़बूत और शक्तिशाली केन्द्रीय शासन रहना-चाहिये और राज्यों का स्वायत्त काफी सीमित रहना चाहिये, जिससे वह केन्द्रीय शासन के साथ संघर्ष न कर सके। यही कारण है कि हमारे संविधान में एकात्मक शासन के बहुत से ऐसे चिह्न हैं, जो वास्तव में संघ-शासन के सिद्धान्तों के साथ मेल नहीं खाते। संघ-शासन में जो विशेषताएं होनी चाहिये, उनमें से प्रधान मानी गई हैं— दो प्रकार के शासनों का एक ही साथ अस्तित्व, एक स्थानीय और दूसरी केन्द्रीय, इनकी नागरिकता भी दोहरी अर्थात् अलग होती है। दूसरे न्याय-प्रणाली भी दोहरी होती है। तीसरे संविधान बेलोचदार होता है, अर्थात् वह लिखित होता है और उसमें संशोधन करना आसान नहीं होता है। संशोधन की रीति कठिन होती है। भारत का संविधान कठोरतापूर्वक इन सिद्धान्तों का पालन नहीं करता। केन्द्रीय शासन राज्यों के बहुत से कार्य कर सकता है। भारतीय संविधान की जो एकात्मक विशेषताएं हैं, वे पाठकों की जानकारी के लिये नीचे दी जाती हैं।

संविधान की एकात्मक विशेषताएं (The Unitary Features of the Constitution)—(१) आपात या संकट के समय में राष्ट्रपति विशेष अधिकार ग्रहण कर सकता है, जिनसे राज्यों का स्वायत्त स्थगित हो जायगा और सम्पूर्ण राज्य एकात्मक हो जायगा।

(२) राष्ट्रपति किसी राज्य का शासन इस कारण अपने हाथ में ले सकता है कि उस राज्य में संविधान सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं हो रहा था।

(३) संविधान में सम्पूर्ण भारत के लिये एक ही नागरिकता है। अमेरिका की तरह राज्यों में अलग नागरिकता नहीं है।

(४) संविधान में केवल एक ही प्रकार की न्याय-प्रणाली है। राज्यों के लिये अलग न्याय-प्रणाली नहीं है। अमेरिका में प्रत्येक राज्य की अपनी स्वतन्त्र न्याय-प्रणाली है। वहां राज्य के न्यायालयों को अपने क्षेत्रों में पूर्ण अधिकार प्राप्त रहते हैं। संघ के न्यायालय उस क्षेत्र में दखल नहीं दे सकते। इस प्रकार अमेरिका में संघ और राज्य के न्यायालय समानान्तर और बराबरी से चलते हैं। परन्तु भारत में न्याय-प्रणाली नीचे से ऊपर की तरफ चलती है। सबसे ऊपर उच्चतम न्यायालय है। अन्य न्यायालय उसके अधीन होते चलते हैं।

(५) संविधान में केवल एक निर्वाचन आयोग का उपबन्ध है और उसके सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होंगे। एक यही निर्वाचन आयोग केन्द्र और राज्यों के विधानमंडलों के निर्वाचनों का प्रबन्ध और देख-रेख करेगा।

(६) महालेखा परीक्षक राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जायगा और वह केन्द्र तथा राज्यों की अर्थःव्यवस्था की देख-रेख करेगा।

(७) अखिल भारतीय नौकरियों के प्राधिकारियों की नियुक्ति संघ लोक-सेवा-आयोग द्वारा होगी, लेकिन वे संघ और राज्य सरकारों दोनों के अन्तर्गत काम करेंगे।

(८) कुछ विशिष्ट बातों को छोड़कर संसद अकेली संविधान में संशोधन कर सकती है। अर्थात् उसे राज्यों के विधानमंडलों की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। इसलिये संविधान उतना बेलोचदार (Rigid) नहीं है, जितना कि संघ प्रणाली के सिद्धान्तों के अनुसार होना चाहिये।

(९) वित्तीय आपातकाल की घोषणा करके राष्ट्रपति राज्यों के कर्मचारियों के वेतन और भत्ते कम कर सकता है।

(१०) संविधान के अनुसार राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा।

तीसवाँ अध्याय

भारत और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल

(India And The Commonwealth)

भारत ब्रिटिश-राष्ट्रमंडल का एक सदस्य है। यद्यपि संविधान के अनुसार भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य है, फिर भी अप्रैल सन् १९४९ में राष्ट्रमंडल के प्रधान मंत्रियों की जो सभा हुई थी, उसमें सर्वमत से यह निर्णय हुआ था कि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य रह सकता है। २९ अप्रैल सन् १९४९ को राष्ट्रमंडल के प्रधान मंत्रियों ने एक वक्तव्य दिया, जिसमें अपने निर्णय के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहा था—

"भारत सरकार ने राष्ट्रमंडल की अन्य सरकारों को यह सूचना दी है कि भारत में जो नया संविधान बनाया जा रहा है, उसके अन्तर्गत: भारत के लोगों की इच्छा देश को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पूर्ण लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने की है। लेकिन साथ ही भारत सरकार ने यह इच्छा प्रकट की है, वह राष्ट्रमंडल की पूर्ण सदस्य रहना चाहती है। राष्ट्रमंडल स्वतन्त्र देशों का स्वेच्छापूर्वक बनाया हुआ संघ है और राजा उसका प्रधान होता है। भारत राजा की इस स्थिति को स्वीकार करता है। राष्ट्रमंडल के अन्य देश जिनकी स्थिति में इससे कोई परिवर्तन नहीं होता है, भारत की इस घोषणा के अनुसार उसकी सदस्यता को स्वीकार करते हैं और मान्यता देते हैं।

"इस आधार पर ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अफ्रिका, भारत, पाकिस्तान और सीलोन यह घोषणा करते हैं कि वे राष्ट्रमंडल के स्वतन्त्र और समान सदस्य हैं और वे शान्ति, स्वतन्त्रता और उन्नति के लिये सहयोगपूर्वक काम करेंगे।"

राष्ट्रमंडल की सदस्यता के सम्बन्ध में लंदन में जो यह समझौता हुआ था, उसे भारत की संविधान सभा ने १७ मई सन् १९४९ को अपनी स्वीकृति दी।

राष्ट्रमंडल की सदस्यता का एक अर्थ और है। ब्रिटेन में रहनेवाले भारतीय नागरिकों की कानूनी, स्थिति और सुविधाएं वही रहेंगी, जो उन्हें पहले ब्रिटेन की प्रजा होने के नाते प्राप्त थीं। ब्रिटिश पार्लियामेंट इसके लिये एक कानून (India [Consiquential Provision] Act) भी बनाया है, जिससे ये अधिकार और सुविधाएं बनी रहें। इसी प्रकार भारत में रहनेवाले ब्रिटिश नागरिकों को भी इसी तरह की सुविधाएं मिलेंगी और भारत की संसद इसके लिये उपयुक्त उपबन्ध करेगी। इसी तरह राष्ट्रमंडल के अन्य देशों में भी, पारस्परिकता के आधार पर भारत के नागरिकों को कुछ सुविधाएं मिल सकती हैं, यद्यपि वे वास्तविक की अपेक्षा काल्पनिक ही अधिक हैं।

राष्ट्रमंडल की सदस्यता से भारत को कुछ वास्तविक राजनैतिक और आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकते हैं। उदाहरण के लिये राष्ट्रमंडल के सदस्य एक दूसरे को व्यावसायिक सुविधाएं और सैनिक सहायता दे सकते हैं। लेकिन इस समय इनके सम्बन्ध में कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

परिशिष्ट

राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक-गण (Electoral College) द्वारा होगा। इस गण के सदस्य संसद के दोनों सदनों के सदस्य तथा राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्य होंगे। संविधान में दी हुई राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली काफी उलझी हुई भी है। इस प्रणाली का उद्देश्य यह है, कि इस सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व एक-सा रहे। साथ ही संघ और राज्यों के बीच में भी समानता या संतुलन रहे। इस प्रणाली के अनुसार किसी राज्य की विधान-सभा के एक सदस्य द्वारा दिये जाने-वाले मतों की संख्या इस प्रकार निश्चित होगी। राज्य की जनसंख्या में विधान-सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या का भाग दिया जायगा। फिर भागफल या लब्धि (Quotient) में १,००० का भाग दिया जायगा। अब जितना भागफल आयेगा, उतने ही मत प्रत्येक सदस्य दे सकेगा। एक उदाहरण ले लिया जाय, मान लो, उत्तर-प्रदेश की जनसंख्या ६,१६,२०,००० है। उत्तर-प्रदेश में विधान-सभा के सदस्यों की संख्या ४३० है। अब यदि जनसंख्या में ४३० का भाग दिया जाय, तो भागफल १,४३,३०२ आता है। इस संख्या में १,००० का भाग देने से भागफल १४३$\frac{३०२}{१०००}$ आता है। इसलिये उत्तर-प्रदेश की विधान-सभा का प्रत्येक सदस्य १४३ मत देगा। यदि शेष $\frac{१}{२}$ या उससे अधिक हो तो एक मत और बढ़ जायगा।

अब राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्यों की जो कुल मतसंख्या होगी, उसमें संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या का भाग दिया जायगा। जितना भागफल आयेगा, उतने मत संसद का एक सदस्य दे सकता है। (यदि शेष आधे से अधिक है, तो एक मत बढ़ जायगा और यदि आधे से कम है,

तो उसे छोड़ दिया जायगा)। अब यह स्पष्ट हो जाता है, कि विधान-सभाओं के सदस्यों द्वारा दिये जानेवाले मतों की संख्या संसद के दोनों सदनों द्वारा दिये जानेवाले मतों की संख्या के बराबर होगी।

राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) द्वारा होगा। इसलिये निर्वाचन-गण का प्रत्येक सदस्य जो मत देगा, वह ऊपर दी हुई प्रक्रिया द्वारा प्राप्त संख्या के बराबर होगा।

समाप्त